ISSN 2321-4945
UGC CARE Research Journal

# द्विभाषी राष्ट्रसेवक

वर्ष : 72 ● अंक : 4 ● जुलाई : 2022

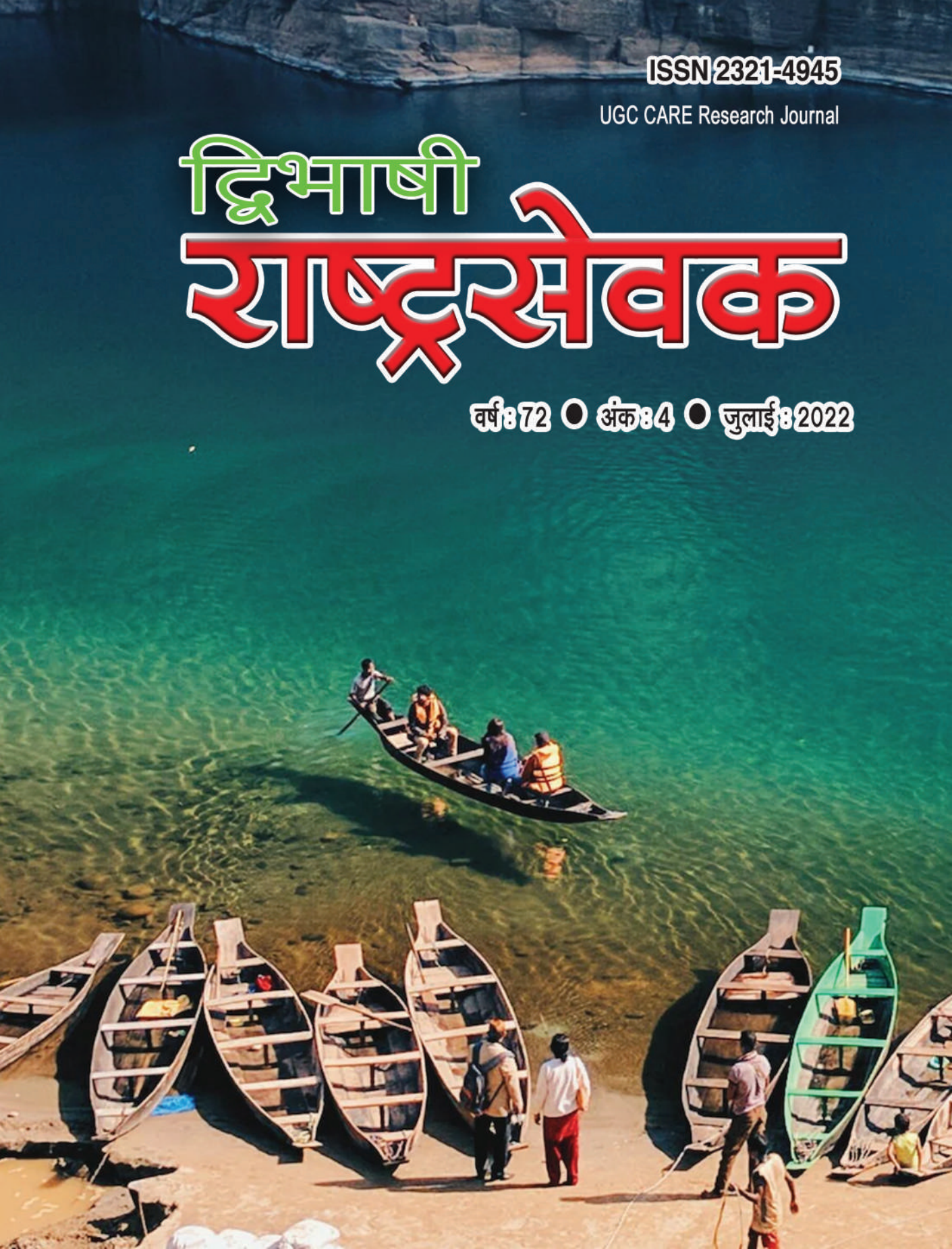

RNI NO. ASSBIL/2009/31008 ISSN : 2321-4945

एक हृदय हो भारत जननी

# द्विभाषी राष्ट्रसेवक

भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक शोध-पत्रिका

UGC CARE Research Journal

वर्ष : 72 अंक : 04 जुलाई-2022

*परामर्श मंडल*

**श्री भारतभूषण महंत**
कार्याध्यक्ष, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
गुवाहाटी (असम)

**प्रो. आर.एस. सर्राजु**
सम कुलपति, हैदराबाद विश्वविद्यालय
तेलंगाना-500046

**प्रो. प्रदीप के शर्मा**
कुलसचिव, उच्च शिक्षा शोध संस्थान
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा
टी. नगर, चेन्नई (तमिलनाडु)

**प्रो. दीपक प्रकाश त्यागी**
हिंदी विभाग
दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)

**प्रो. दिलीप कुमार मेधि**
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

**डॉ. अमूल्य चंद्र बर्मन**
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

**डॉ. अच्युत शर्मा**
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

*प्रधान संपादक*

**डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया**
मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

*संपादक*

**प्रो. मोहन**
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-1

*कार्यकारी संपादक*

**रामनाथ प्रसाद**
प्रभारी साहित्य सचिव
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

**असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी**

**DWIBHASHI RASTRASEWAK :** A Bilingual (Hindi & Assamese) Monthly Research Journal, Focused on Language, Literature, Society, Art and Culture, Partially funded by Central Hindi Directorate, Govt. of India and Published by Asom Rastrabhasha Prachar Samiti, Rupnagar, Guwahati-781032.

*प्रकाशक :*
**असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति**
गुवाहाटी-32

*संपादकीय कार्यालय :*
प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-32
फोन : 9101541395, 9101541380
ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

*सदस्यता शुल्क :*
प्रति अंक : रु.50/- (व्यक्तिगत)
प्रति अंक : रु.100/- (संस्थागत)

अलंकरण : रतिकांत कलिता

आवरण पृष्ठ : मेघालय के डाउकी नामक जगह पर अवस्थित काँच की तरह पारदर्शी नदी उमंगोट का दृश्य

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की ओर से मंत्री डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया द्वारा ग्राफिक्स, गुवाहाटी-781003 में मुद्रित, प्रकाशित एवं प्रसारित।

सर्वाधिकार : **असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी-32**

'द्विभाषी राष्ट्रसेवक' में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। सभी कानूनी विवादों का निपटारा गुवाहाटी न्यायालय के अधीनस्थ होगा।

# अनुक्रम

## हिंदी विभाग


| | | |
|---|---|---|
| • संपादकीय | | 4 |
| • भाषाशास्त्र के सूत्रधार | ✍ प्रो. मोहन | 6 |
| • रीतिकालीन साहित्य का पुनर्मूल्यांकन | ✍ डॉ. कुसुम कुंज मालाकार | 10 |
| • 'जीवनर बाटत' उपन्यास में असमिया अंचल-जीवन की यथार्थ प्रस्तुति | ✍ डॉ. बिद्या दास | 18 |
| • देशी रियासतों के प्रति प्रशासनिक नीति एवं अभ्युदय पत्र | ✍ डॉ. आशा यादव | 23 |
| • खेराई : पूर्वोत्तर भारत का बोड़ो लोकोत्सव | ✍ तैयबुन नेशा | 31 |
| • सुरेंद्र वर्मा के उपन्यास 'मुझे चाँद चाहिए' में सहानुभूति की अभिव्यक्ति | ✍ उर्मिला भगत | 37 |
| • शानी के उपन्यास 'काला जल' में अभिव्यक्त जीवन मूल्य | ✍ पंकज कुमार सहनी<br>✍ डॉ. अंजु लता | 41 |
| • भारत में महात्मा गाँधी का विद्याध्ययन : एक प्रामाणिक प्रस्तुति | ✍ सूर्य प्रकाश | 46 |
| • 'जंग लगी तलवार' उपन्यास में अभिव्यक्त भारतीय मजदूरों का जीवन संघर्ष : एक अध्ययन | ✍ दिनेश कुमार साह | 52 |
| • पालि 'धम्मपद अट्ठकथा' में बौद्धकालीन लोक जीवन | ✍ कृष्ण कुमार साह | 59 |
| • हिंदी एवं मराठी काव्य में चित्रित राष्ट्रीय चेतना का तुलनात्मक अध्ययन : दिनकर एवं कुसुमाग्रज के विशेष संदर्भ में | ✍ डॉ. संदीप रणभिकर | 66 |
| • गुरदयाल सिंह के उपन्यास 'परसा' में सामाजिक यथार्थ का विश्लेषण | ✍ श्याम सुन्दर<br>✍ डॉ. राजेन्द्र कुमार सेन | 73 |
| • सद्गति | ✍ प्रेमचंद | 81 |


## অসমীয়া বিভাগ


| | | |
|---|---|---|
| • অসমৰ ভাষিক পৰিস্থিতি ঃ এক বিশ্লেষণ | ✍ ড° সেউজী শর্মা | 86 |
| • লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ গল্পত নাৰী চৰিত্ৰ ঃ ভদৰী আৰু ললিতী কাকতী গল্পৰ বিশেষ উল্লিখনেৰে | ✍ ড° স্বপ্নালী দাস | 90 |
| • ৰানচু সমাজত প্ৰচলিত সাংস্কৃতিক উপাদান ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন | ✍ অসীমা দাস | 95 |
| • কবি জীৱনানন্দ দাস আৰু নীলমণি ফুকনৰ কবিতাত চিত্ৰকল্প ব্যৱহাৰৰ এটি তুলনামূলক অধ্যয়ন | ✍ অজিত কুমাৰ সিংহ | 103 |
| • অসমৰ জনজাতিসমূহৰ মাজত প্ৰচলিত জগন্নাথ পৰম্পৰা ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন | ✍ স্মিতা ডেকা<br>✍ ড° প্ৰফুল্ল কুমাৰ নাথ | 107 |

संपादकीय

# प्रेमचंद एवं उनका साहित्य

यह महीना प्रेमचंद की जन्म-जयंती का है। प्रेमचंद हिंदी समय और हिंदी भूमि के बड़े रचनाकार हैं। उम्र, अनुभव और संवेदना की आँखों से जिस तरह प्रेमचंद ने अपने युग को देखा, उसके सरोकारों को समझा, संघर्षों को जिया, उसके परास्त-पराधीन वर्तमान से जुड़े अतीतवर्ती कारणों की पड़ताल की। साथ ही उन्होंने जिन भविष्यत संकेतों को समझकर और पहचानकर सामाजिक प्रतिबद्धता और गहरी रचनात्मक जिम्मेदारी के साथ लिखा, वे प्रेमचंद के लेखन को एक विशिष्ट पहचान देते हैं। विविध सामग्री के विपुल साहित्यिक अवदान के साथ प्रेमचंद का लेखन स्वयं प्रेमचंद से कहीं अधिक हिंदी की पहचान बनकर उभरता है। पाठ और पुनर्पाठ से जुड़ी बहसों और विवादों के बीच पठनीयता के मामले में वे आज भी सबसे ज्यादा लोकप्रिय और स्वीकृत हैं। उनकी स्वीकार्यता उनके समकालीन और बाद के रचनाकारों से कहीं व्यापक है। समूची बीसवीं सदी का भारतीय साहित्य जिस प्रकार सत्ता-भाषा और प्रतिरोधी संस्कृति के द्वंद्वों के बीच आकार लेता है, हिंदी में वे उसकी सबसे समर्थ और प्रामाणिक अभिव्यक्ति बनकर उभरते हैं।

प्रेमचंद ने अपने जीवन को 'मैदान' कहा था - ''एक ऐसा सपाट समतल मैदान, जिसमें गड्ढे तो हैं, पर टीलों, पर्वतों, घने जंगलों, गहरी घाटियों और खंडहरों का स्थान नहीं है।'' प्रेमचंद के जीवन-संघर्ष में इस बयान की सुनिश्चित प्रतिबद्धता और निर्वाह दोनों को देखा जा सकता है। सन् 1880 से 1936 तक कुल 56 वर्ष का जीवन प्रेमचंद ने जिया। प्रेमचंद ने आजीवन उग्र होते हुए जन संघर्षों और मुक्ति-आंदोलनों में भी भाग लिया और साथ भी दिया। स्वराज की इच्छा और सुराज की चिंता ने लगातार उनके मन को माँजा। यही कारण है कि उनके लेखन में भारत के गाँव और किसानों के सबसे प्रामाणिक और मर्मस्पर्शी चित्र मिलते हैं। किसान-जीवन की अनिश्चितता और विपन्नता की तरह उन्होंने मिल-मजदूरों और तमाम छोटे कामगारों की पीड़ा और विवशता को भी निकट से देखा और महसूस किया था। औद्योगिक नवजागरण के साये तले रूढ़ संस्कृति और आधुनिक सभ्यता की टकराहट और खनखनाहट की तमाम विविधताएँ और विसंगतियाँ अपने पूरे खरेपन के साथ उनके यहाँ मौजूद हैं। इस खरेपन की कसौटी के बारे में प्रेमचंद ने लिखा है - ''हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चइयों का प्रकाश हो - जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं क्योंकि अब और सोना मृत्यु का लक्षण है।''

महात्मा गाँधी की ही तरह प्रेमचंद ने भी भारत की ताकतवर आत्मा को पहचाना था। आत्महीनता और पराधीनता के विरुद्ध संघर्ष करते इस विस्तृत देश के जीवंत कथानक में से चुनकर उन्होंने साधारण से विशेष होते वर्ग-चरित्रों की रचना की। साधारण जनता और उसकी आवाज, उसकी भाषा के पक्ष में गाँधी जी के विचारों के महत्व और उनके दूरगामी परिणामों को पहचानते हुए प्रेमचंद ने उसे अपने लेखन द्वारा बोलियों और शैलियों की श्रेणी में बँटी हिंदी पट्टी को एक जागृत सामूहिक जन-चेतना में बदलने की भरसक कोशिश की।

हिंदी-उर्दू के साथ-साथ प्रेमचंद ब्रिटिश राजकाज की भाषा अंग्रेजी के भी अच्छे जानकार थे। नए शोधों ने यह खुलासा किया है कि अपने तमाम उपन्यासों और अन्य कहानियों की रूपरेखा उन्होंने पहले अंग्रेजी में बनाई और उसके बाद उसे हिंदी-उर्दू में विस्तार से रचा। रचनाकार के तौर पर यह तथ्य उनके भाषा-बोध, प्रयोगशीलता और लेखन के कुछ नये आयाम खोलने में मदद कर सकता है।

स्वराज के संघर्ष की भाषाओं, विशेषकर हिंदी-उर्दू के समन्वय को लेकर गाँधी जी ने जो सपना देखा था, राष्ट्र-निर्माण में उसकी भविष्योन्मुखी भूमिका को पहचानकर प्रेमचंद ने उसे अपनी कहानियों, उपन्यासों, निबंधों आदि के जरिए एक सुनिश्चित आकार दिया। यहाँ पुराने लेखकों की तरह एक भाषा के विरुद्ध दूसरी भाषा का प्रतिक्रियावाद नहीं था। इसलिए उनकी भाषा, उनके प्रयोग, उनके विन्यास, उनकी कथन-भंगिमाएँ साधारण से असाधारण होकर उभरती हैं। भाषा-प्रयोग के मामले में प्रेमचंद की धारणा बिल्कुल साफ थी। महात्मा गाँधी की प्रेरणा से भारतीय भाषा और सत्ता की राजनीति के इस दोआब में प्रेमचंद हिंदी-उर्दू के रक्त-रंग की सच्चाई और महत्व को अच्छी तरह से जानते और समझते थे। वे स्पष्टत: जानते थे कि इस मिली-जुली हिंदुस्तानी में ही देश की मिट्टी की गंध है। इसलिए अपने लेखन की विकास-यात्रा के साथ-साथ वे इस भाषा-साधना के सहज सिद्ध साधक हो गए। एक नए, मुक्त और जागृत स्वराज की दिशा में यह गाँधी जी का बताया हुआ रास्ता था। भारत के साधारण जन के लिए यह उसकी अपनी हिंदुस्तानी भाषा का मुक्त द्वार था।

अपनी कथाकारी के बहाने प्रेमचंद भारत की सामूहिक चेतना का उपयोग पराई सत्ता के विरुद्ध मुक्तिकामी शक्ति-विमर्श में करते हैं। जीवन-मूल्यों की भारतीय समझ के साथ प्रेमचंद अपने कथा-पात्रों की रचना कर रहे थे। यह भारतीय मूल्यबोध की विकसित चेतना का उदात्त इतिहास है।

प्रेमचंद ने अपने कथा-पात्रों की रचना के साथ पूरब और पश्चिम के द्वंद्व को यथासंभव पक्षपातहीन रहकर देखने और विश्लेषण करने की कोशिश की। उनका साहित्य यथार्थ को देखता-परखता-लिखता अवश्य है पर इस लिखावट में 'आईनागीरी' के मुकाबिले 'तसवीरकारी' पर जोर अधिक है। संभवत: यही कारण है कि यथार्थ को रूपायित करते हुए भी अंतत: उनकी दृष्टि करुणा, उदात्त और आदर्श की दिशा में जाती है। प्रेमचंद हिंदी के सुलहकुल की साझी परंपरा और उसकी अद्यतन प्रासंगिकता के प्रमाण हैं। प्रेमचंद-साहित्य और उनकी रचना-दृष्टि के जरिए हम अपनी जीवंत भाषा-परंपरा को जान और समझ सकते हैं। औपनिवेशिक दौर में जिन मुद्दों पर वर्चस्वकामी शक्तियों के विरुद्ध जनसाधारण और उसकी भाषा के अधिकार की लड़ाई उन्होंने लड़ी, उसका अहसास हमें इस उत्तर औपनिवेशिक वर्तमान की चिंताओं, चुनौतियों और खतरों को समझने और उससे यथासंभव लड़ने की हिम्मत देगा।

अंत में लेखकीय सहयोग के लिए इस अंक के लेखकों को धन्यवाद। ❑

प्रो. मोहन

# भाषाशास्त्र के सूत्रधार

**प्रो. मोहन**

प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय
संपर्क :
फ्लैट नंबर-214
ब्लॉक सी एंड डी
पॉकेट-1, शालीमार बाग
दिल्ली-110088
मो. : 9871115500

लम्बे समय तक मानव अपनी विकास-यात्रा में अपने भीतर और बाहर के जगत को जोड़ने के लिए केवल प्रकृति प्रदत्त इंद्रियों पर आश्रित रहा। ये इंद्रियाँ मानव को उसके वर्तमान और मूर्त जीवन से जोड़कर रखती थीं। धीरे-धीरे मानव के इस संबंध में सबसे अधिक विस्तार भाषा के माध्यम से हुआ। वस्तु, विचार और अवधारणा को संकेत प्रणाली में बदल सकने की क्षमता के माध्यम से मानव वर्तमान के अतिरिक्त अतीत तथा भविष्य से भी जुड़ा और समय के बंधन से मुक्त होकर, अमूर्त और अपरिचित को भी मूर्त बना दिया। यह सफलता भाषा के माध्यम से ही विकसित हुई, जिसने मानव के बौद्धिक और भावनात्मक क्षमता को बहुत अधिक विस्तार दिया। मनन और अभिव्यक्ति के रूप में भाषा का दोहरा प्रकार्य मानव को एक ऐसे संकेत जगत में ले जाता है जहाँ वह किसी भी सीमा में बंधा हुआ नहीं है। मानव ज्ञात और ज्ञेय में भेदक-लक्षण को लगातार संकेत, संकेतक और अवधारणा में संरक्षित करता जाता है। उसकी समस्त गैर-जैविक क्रियाएँ (सामाजिक-सांस्कृतिक) इसी प्रतीकात्मक क्षमता से युक्त होती हैं। इसी कारण एडवर्ड सपीर ने जोर दिया कि सभी भाषाओं में एक ही सूत्र मौजूद है - अनुभव का सहजबोधनीय विज्ञान।

भाषा का अध्ययन भाषाविज्ञान का विषय है, जो मूलत: अर्थ की खोज का विज्ञान है। भाषा-घटना के वृहद् स्तर से न्यून स्तर तक का अध्ययन अर्थ की निर्मिति की पड़ताल है। अपने न्यूनतम स्तर पर ध्वनि के रूप में भाषा का यह स्तर अर्थहीन है, किंतु स्वनिम विज्ञान ने ध्वनियों के वातावरण में ही अर्थ की भेदात्मक योग्यता ध्वनि में ही खोज निकाली है। आगे बढ़कर रूप, पद, पदबंध और वाक्य इसी न्यून योजना से अर्थ प्राप्त करते हैं। आधुनिक समय में समाज भाषाविज्ञान और संज्ञानात्मक भाषाविज्ञान ने अर्थ के सामाजिक संदर्भ और संज्ञान को विशेष महत्व देना आरंभ किया है, जिससे पिछले कुछ दशकों में भाषा की अर्थ प्रणाली में नए विचार उभर रहे हैं। भाषाविज्ञान में चिंतन जितना आगे बढ़ रहा है, उतना ही वह पिछले चिंतन को अधिक संवर्धित रूप से पुनर्प्राप्त करता जा रहा है। आगे बढ़ते हुए अपनी ज्ञानमीमांसा

को पुनर्परिभाषित करना ज्ञेय को प्राप्त करने का सबसे सशक्त माध्यम होता है।

पाँच सर्वाधिक प्रभावशाली भाषा-चिंतक हैं। प्रारंभिक दो भाषा-चिंतक पाणिनि और भर्तृहरि प्राचीन भारतीय भाषा-परंपरा में सबसे अग्रणी पायदान पर आते हैं। उनका महत्व इस बात में भी निहित है कि मुक्तकंठ से उनका प्रभाव आधुनिक भाषाविज्ञान ने स्वीकार किया है। आज भी पाणिनि का व्याकरण-चिंतन और भर्तृहरि का अर्थ-चिंतन भाषावैज्ञानिक चेतना में शामिल है। आगे आधुनिक भाषाविज्ञान के जन्मदाता सस्यूर उनके पश्चात् अमेरिकी संरचनात्मक भाषावैज्ञानिक ब्लूमफील्ड और रूपांतरण प्रजनक व्याकरण के जन्मदाता चोमस्की को शामिल किया जाता है। आधुनिक भाषा-चिंतन को तीनों ही भाषावैज्ञानिकों ने पारिभाषिक शब्दों, अवधारणाओं और संक्रियात्मक प्रणालियों से विकसित किया है।

पाणिनि की अष्टाध्यायी विश्व के उपलब्ध व्याकरणों में प्राचीनतम है। उनके पूर्ववर्ती आचार्यों में एकमात्र यास्क के निरुक्त का नाम लिया जा सकता है, जो वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति (विवर्त) का अध्ययन है। पाणिनि की अष्टाध्यायी वैदिक, लौकिक और संस्कृत भाषा-भेद तीनों रूपों का ही विश्लेषण करती है। इस सर्वांग अध्ययन-विश्लेषण का प्रभाव यह हुआ कि उनके पूर्व की सभी चिंतन धाराएँ प्राय: लुप्त हो गईं। पाणिनि ने प्रत्याहारसूत्रों द्वारा जहाँ संस्कृत ध्वनियों को प्रयत्न और स्थान के वर्गीकरण में प्रस्तुत किया, वहीं शब्द स्तर पर धातुओं से शब्द-निर्वचन की विधियों को विश्लेषित और वर्गीकृत किया तथा पद के केवल दो भेद सुवन्त-तिङंत ही स्वीकार किए। साथ ही कारक अध्ययन के माध्यम से वाक्य-विश्लेषण तक की पूरी भाषा-योजना को प्रस्तुत किया। इस तरह पाणिनि की अष्टाध्यायी की सूत्र-शैली में भाषा उपांग के सभी पक्ष मौजूद हैं, जिसे आधुनिक संरचनावादी भाषावैज्ञानिक ब्लूमफील्ड ने 'मानवमेधा का सर्वोच्च स्मारक' कहा है। अष्टाध्यायी के 3995 सूत्र मिलकर सीमित संख्या में एक ऐसा व्याकरणिक संकलन तैयार करते हैं, जिससे असीमित शुद्ध वाक्यों का निर्माण किया जा सकता है। वे सूत्र न केवल तुलनात्मक और न ही ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के प्राचीन आधार हैं बल्कि ये स्पष्ट रूप से वर्णनात्मक भाषाविज्ञान के प्रतिनिधि सूत्र कहे जा सकते हैं। इस अभूतपूर्व प्रदेय के बाद भी संस्कृत व्याकरण के प्रमुख स्तंभ पाणिनि ने व्याकरण के संदर्भ में कहा कि व्याकरण भाषा का कंकाल है उसकी आत्मा नहीं।

जिस तरह पाणिनि को व्याकरण-शास्त्र से जोड़ कर देखा जाता है, वैसे ही भर्तृहरि को भाषाशास्त्र के दार्शनिक पक्ष से जोड़ कर देखा जाता रहा है। भाषाशास्त्र के क्षेत्र में उनकी कृति वाक्यपदीय में विवेचित शब्द-अर्थ संबंध का विशेष महत्व है। कृति में तीन कांड हैं, जिसमें वाक्, वाक्य और पद का विश्लेषण मौजूद है। भर्तृहरि ने 'स्फोट' द्वारा संबंध को प्रस्तुत किया है, जहाँ स्फोट अनादि अनंत अक्षर है, जिसका विवर्त अर्थात् अतात्विक ज्ञान (भ्रम) अर्थ है। ध्वनि से स्फोट की अभिव्यक्ति के पश्चात् स्फोट से अर्थ का ज्ञान होता है। इस तरह भर्तृहरि का शब्दार्थ-संबंध सकारात्मक या नित्य है फिर भी द्वितीय और तृतीय कांड में शब्द से संदिग्ध या विकल्पात्मक ज्ञान की बात कही गयी है। वाक्य के स्तर पर भर्तृहरि 'सत्ता' से अर्थ के परिप्रेक्ष्य को स्पष्ट करते हैं। शब्द मूलत: किसी नियत अर्थ का बोध नहीं कराता बल्कि वासना और अनुभव के अनुरूप ही उसका स्वरूप निर्धारित करता है।

भारतीय भाषा दर्शन में भर्तृहरि के स्फोट-विचार का प्रमुख प्रदेय यह है कि उन्होंने शब्द और अर्थ के बीच एक संबंध का निर्वचन किया। आधुनिक भाषाविज्ञान के संकेतात्मक विचारों की पूर्वपीठिका को भर्तृहरि में खोजा जा सकता है। आधुनिक विचार-संकेतत और संकेतित, सस्यूर द्वारा बहुत बाद में निश्चित किए गए, जो आधुनिक भाषाचिंतन के प्रमुख आधार बने। भर्तृहरि सहित मीमांसक, नैसर्गिक और नैयायिक भारतीय चिंतन में शब्द-अर्थ-संबंध को सकारात्मक दृष्टिकोण से प्रस्तुत कर रहे थे, जबकि भारत में ही बौद्ध इसे सकारात्मक प्रवृत्ति में विवेचित कर अर्थ को विभेदात्मक बता रहे थे। उन्होंने शब्द और अर्थ के संबंध में कोई प्रत्यक्ष संबंध स्वीकार नहीं किया है, अपितु शब्द को परिकल्पनात्मक बिंब माना। बौद्ध चिंतक दिंगनाग ने कहा कि शब्द गाय से आशय गाय नहीं बल्कि उन सब वस्तुओं का नकार

है जो गाय नहीं है अर्थात् गाय का होना 'अ-गाय' का न होना है।

बौद्ध चिंतक नागार्जुन ने क्षणवाद के द्वारा सत्ता और असत्ता को एक-दूसरे पर निर्भर बताया और शून्यवाद के द्वारा स्पष्ट किया कि सत्ता और असत्ता का प्रश्न ही नहीं बल्कि भूत और भविष्य तो शून्य है। नागार्जुन का शून्यवाद उत्तर-संरचनावादी देरिदा के विचार का पूर्वगामी लक्षित होता है, जहाँ अर्थ की अनुपस्थिति ही लगातार कार्य करती है। उपस्थित के प्रति अनुपस्थित की समानांतर रेखा अर्थ को अन्य की अनिवार्यता में व्यवस्थित करती है, यह विचार ही आधुनिक चिंतन को बौद्ध चिंतन का प्रदेय है।

आधुनिक पाश्चात्य भाषाविज्ञान में सस्यूर, ब्लूमफील्ड और चॉम्स्की के विशेषीकृत विचारों से भाषा चिंतन का क्षेत्र उर्वर हुआ है। पृथक होते हुए भी आधुनिक भाषाविज्ञान के ठोस विचार इन्हीं विचारों के वैचारिक संघर्ष में निर्मित हुए हैं। सस्यूर ने जहाँ भाषा को संकेतविज्ञान के प्रकाश में समझने की कोशिश की, वहीं चॉम्स्की ने भाषा के सार्वभौमिक लक्षणों को प्राप्त करने का लक्ष्य स्वीकार किया। इसके विपरीत ब्लूमफील्ड ने भाषा की आभ्यंतर व्यवस्था को अपना लक्ष्य बनाया। भाषा का मूल विचार एक ओर स्वयं भाषा के 'होने' से जुड़ा है तो दूसरी ओर वह 'अवधारणा' है, जिसे भाषा का 'होना' व्यक्त कर रहा है, इसलिए भाषा को एक खिड़की के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जो स्वयं भी दिखती है और अन्य को देखने का माध्यम भी होती है। यही कारण है कि पिछले कुछ दशकों में भाषा की ठोस व्यवस्था-रूप से इतर उसके प्रकार्य-रूप पर अधिक जोर दिया जाने लगा है।

20वीं शताब्दी के आरंभ के साथ ही भाषाविज्ञान तुलनात्मकता के स्थान पर भाषा की मूल अवधारणा को समझने की कोशिश करने लगा। सर्वप्रथम सस्यूर ने भाषा को मनोविज्ञान और समाजविज्ञान की भूमि पर समझने का प्रयास किया और भाषा को संकेतविज्ञान के एक उपांग के रूप में विश्लेषित किया। सस्यूर ने संकेत को संकेतक और संकेतित के रूप में व्यक्त किया और इसे समाज में मौजूद 'कलेक्टिव नॉर्म' की प्रवृत्ति से स्पष्ट किया। इस कारण भाषा का संकेत एक ध्वनि-बिम्ब और विचार का संपूर्ण ज्ञानराशियों को दिया गया महत्वपूर्ण विचार यह था कि हम संकेतों की व्यवस्था को वस्तुत: संकेतों की 'भेदक' व्यवस्था में देखते हैं, जहाँ हम पूर्वनिर्धारित संकल्पना का सकारात्मक पता नहीं लगाते बल्कि व्यवस्था से उत्पन्न 'मूल्यों से परिचित होते हैं। इस तरह पहचान ऋणात्मक संबंधों से निर्मित होती है यानि वह जो है वो दूसरे नहीं हैं। सस्यूर के इसी विचार से संरचनावाद की नींव पड़ी।

यह बहुत रोचक लक्ष्य है कि इस प्रभावशाली विचार को देने वाले भाषावैज्ञानिक सस्यूर ने अपने जीवन में एक भी पुस्तक नहीं लिखी बल्कि उन्होंने संस्कृत और इंडो-यूरोपियन भाषा परिवार के अध्यापन के साथ-साथ सामान्य भाषाविज्ञान को भी एक-एक वर्ष के अंतराल पर 1907, 1909 और 1911 में पढ़ाया। उनके क्लास नोट्स को ही सी. बेली और ए. सेचेहाय ने पुस्तक के रूप में सम्पादित किया। इस तरह हम दोहरे सस्यूर से परिचित होते हैं, जो वे लेक्चर से क्लास-नोट्स में और क्लास-नोट्स से सम्पादित पुस्तक में प्रस्तुत हुए। कुछ भी हो इस पुस्तक के अंग्रेजी संस्करण के साथ ही भाषाविज्ञान के क्षेत्र में संरचनावादी क्रांति आ गयी। सस्यूर से ही प्रभावित कई स्कूल जैसे- अमरीकी, प्राग और कोपनहेगन आदि अस्तित्व में आये, जिन्होंने भाषा के अलग-अलग पक्ष को सस्यूर के मूल विचार के प्रकाश में विश्लेषित किया।

आधुनिक भाषाविज्ञान में सर्वप्रथम अमेरिकी संरचनात्मक भाषावैज्ञानिक एल. ब्लूमफील्ड ने भाषा के विश्लेषण के लिए एक वितरणमूलक व्यवस्थित अध्ययन पद्धति का निर्माण किया, जिसमें ध्वनि, शब्द-पद और वाक्य तीनों ही स्तर पर सैद्धांतिक विश्लेषण की व्यवस्था की। ब्लूमफील्ड ने भी भाषाविज्ञान के अध्ययन की शुरुआत ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के परिवेश में ही की, लेकिन जल्द ही उनके ऊपर अनुभववाद और आगमनात्मक पद्धति का प्रभाव बढ़ता गया और अंतत: उन्होंने भाषा के शुद्ध वैज्ञानिक अध्ययन के लिए मानसिक पक्ष या अर्थ पक्ष को विश्लेषण से बाहर कर दिया। उनके विश्लेषण में व्यवहारवाद के प्रभाव के कारण

भाषा का मौलिक व्यवहार ही उद्दीपन-प्रतिक्रिया के रूप में स्वीकार हुआ। ब्लूमफील्ड ने स्वनिम से रूपिम और रूपिम से भाषा की सार्थक व्यवस्था वाक्य (व्याकरण) तक क्रमबद्ध विश्लेषण प्रस्तुत किया। ब्लूमफील्ड ने केवल आंतरिक पक्षों पर ही ध्यान केंद्रित नहीं किया अपितु 'भाषाई समाज' की संकल्पना को प्रस्तुत किया जो आगे चलकर समाज भाषाविज्ञान का आधार बना।

ब्लूमफील्ड के पश्चात् अमेरिका में संरचनावादी अध्ययन की बाढ़-सी आ गई। अर्थ की अनुपस्थिति ने भाषावैज्ञानिकों को भाषा की आंतरिक व्यवस्था की समानता और विषमता के आधार पर वितरण संबंधी अध्ययन की विस्तृत छूट प्रदान की और यहीं कारण रहा कि उन्होंने भाषा के प्रति कई नए और प्रभावशाली विचार भी प्रस्तुत किये, किंतु इस धारा के साथ ही साथ अमेरिका में ही एक नए क्रांतिकारी विचार के साथ सुप्रसिद्ध नोम चॉमस्की का आगमन भी हुआ। उन्होंने सार्वभौमिक व्याकरण, भाषा-दक्षता और भाषा-व्यवहार तथा रूपांतरण प्रजनक व्याकरण के माध्यम से भाषाचिंतन को बहुत दूर तक प्रभावित किया। उनके विचारों का प्रमुख आधार भाषा को मानव की सृजनात्मक शक्ति मानना है।

चॉमस्की ने अपने शुरुआती अध्ययन का केंद्र वाक्य-विन्यास को रखा जो बहुत बाद में अर्थ को भी शामिल करता है। यह बात जल्द ही साफ हो गई कि वाक्य प्रजनन के लिए अर्थपक्ष ही कारण का कार्य करता है। इस तरह अर्थपक्ष का अध्ययन वाक्य-विन्यास का अध्ययन भी है और उसके भीतर अर्थ निर्माण की योजना रूप, पदबंध आदि योजना को प्रकाशित करती हुई चलती है। चॉमस्की द्वारा प्रस्तुत भाषा-चिंतन अभी भी लगातार विकसित हो रहा है। भाषा और भाषेतर संदर्भों से इसे अलग-अलग भाषावैज्ञानिक संबर्धित कर रहे हैं। इस चिंतन-प्रारूप में अभी बहुत कुछ आना बाकी है।

भाषा-चिंतन की इस पश्चिमी धारा में सस्यूर, ब्लूमफील्ड और चोमस्की के विचारों ने न केवल अपने दौर में भाषा के अध्ययन को क्रांतिकारी प्रारूप प्रदान किया अपितु अभी भी उनके बाद के स्कूल से जुड़े भाषावैज्ञानिक और गैर-भाषावैज्ञानिक भी इस ओर अध्ययन में लगे हुए हैं। जैसे, फ्रांस के प्रमुख संरचनावादी चिंतक रोलां बार्थ ने ''एलिमेंट्स ऑफ सीमियोलोजी'' में सस्यूर के इस विचार को बदल दिया कि भाषाविज्ञान संकेतविज्ञान का एक उपांग है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि मानव-जीवन का कोई भी ज्ञानपक्ष भाषाविज्ञान के नियमों से मुक्त नहीं है। अत: संकेतविज्ञान भाषाविज्ञान का उपांग है। इसी तरह दार्शनिक जाक देरिदा ने भी सस्यूर द्वारा प्रस्तुत संकेतक-संकेतार्थ संबंध में क्रम को स्वीकार किया। उन्होंने कहा कि अर्थ कहीं भी नहीं ठहरता बल्कि प्रत्येक बार संकेतार्थ के स्थान पर अन्य संकेतक आ जाते हैं, अत: अर्थ कहीं भी नहीं है। सस्यूर के चिंतन से संवाद करते हुए ही इन विचारकों ने उत्तर-संरचनावाद और उत्तर-आधुनिकता की नीव रखी। इस तरह भाषाविज्ञान अंतरानुशासनिक प्रवृत्ति से न केवल मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र, समाजविज्ञान और मानव विज्ञान आदि से प्रभावित होता है बल्कि उन्हें प्रभावित भी करता है। भाषाविज्ञान की विकास-यात्रा में इन प्रमुख भाषा-चिंतकों के चिंतन ने भाषाविज्ञान के साथ-साथ ज्ञान के अन्य क्षेत्रों को भी प्रभावित किया है। ❑

**सहायक ग्रंथ**


1. भाषाशास्त्र के सूत्रधार : प्रधान संपादक - डॉ नगेन्द्र, प्रकाशक-मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, प्रथम संस्करण 2002
2. आधुनिक भाषाविज्ञान : डॉ. भोलानाथ तिवारी, प्रकाशक-लिपि प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1993
3. हिंदीभाषा : संरचना के विविध आयाम-रवींद्रनाथ श्रीवास्तव, प्रकाशक-राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति : 1999
4. हिंदी का सामाजिक संदर्भ - सं. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव, रमानाथ सहाय, प्रकाशक : केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, प्रथम संस्करण - 1976
5. भाषा और समाज - रामविलास शर्मा, प्रकाशक - राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण-1977

# रीतिकालीन साहित्य का पुनर्मूल्यांकन

डॉ. कुसुम कुंज मालाकार

अध्यक्ष, हिंदी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय
गुवाहाटी (असम)
मो. 9864023568

हिंदी साहित्य के विस्तृत इतिहास में रीतिकाल का अपना एक विशेष महत्व रहा है। रीतिकाल भी भक्तिकाल की भाँति भले ही उच्च कोटि के साहित्य निर्माण के लिए प्रसिद्ध न रहा हो, फिर भी यह काल अपने साथ हिंदी साहित्य के लिए एक अमूल्य सौगात लेकर आया था। इसी समय से हिंदी साहित्य में भारतीय काव्यशास्त्र का पाठ पढ़ाने का काम शुरू होता है। समाज के लोगों के विषय और रुचि के विपरीत दरबारी साहित्य की प्रधानता के कारण साहित्य में भाव पक्ष की अपेक्षा कला पक्ष को अधिक महत्व दिया जाने लगा था। इतना होने पर भी हिंदी साहित्य को विकसित करने का काम इस समय बड़े पैमाने पर न होने के कारण इस काल को हिंदी साहित्य में उपेक्षित नजर से देखा जाता रहा है।

**रीति शब्द का महत्व :**

'रीति' शब्द रीङ् धातु से निष्पन्न हुआ है। भोज ने अपने ग्रंथ 'सरस्वती कण्ठाभरण' में इसे इस प्रकार स्पष्ट किया है-

*'रीङ् गताविति धातोः सा व्युत्पत्या रीतिरुच्यते"*

इस प्रकार इसका व्युत्पत्तिपरक अर्थ है- गति, गमन, मार्ग या वीथि। किंतु काव्य में यह पद्धति, विधि, परंपरा आदि अर्थों में रूढ़ है। काव्यशास्त्र में रीति शब्द का प्रयोग कवि के विशिष्ट रचना-प्रकार के लिए किया जाता है। वामन ने 'रीति' शब्द से विवेचन की तो पूर्ववर्ती आचार्यों ने मार्ग का प्रयोग किया। कोई इसे संघटनास्वरूप मानता है तो कोई प्रवृत्तियों से अभिन्न। इस प्रकार इस काव्य सिद्धांत के लिए काव्यशास्त्रीय परंपरा में अनेक शब्द प्रयुक्त हुए हैं, लेकिन रीति शब्द ही अधिक प्रचलित रहा है। यद्यपि रीतियों का संक्षिप्त विवेचन मार्ग नाम से भामह और दण्डी ने भी किया है। दण्डी का विवेचन अत्यंत व्यापक एवं व्यवस्थित भी है, किंतु न उन्होंने उसकी परिभाषा दी है और न ही महत्व का उद्घाटन किया है। वामन ने 'रीति' शब्द का प्रयोग करते हुए उसकी परिभाषा दी है और उसे काव्य की आत्मा कहा है। इसलिए वामन को ही रीति-सिद्धांत का प्रवर्तक माना जाता है। वामन ने रीति की परिभाषा इस प्रकार दी है:-

*'विशिष्टपदरचनारीति'*[2]

अर्थात् विशिष्ट पद रचना को रीति कहते हैं। विशिष्ट की व्याख्या उन्होंने स्वयं इन शब्दों में की है- *'विशेषो गुणात्मा'* अर्थात् जो गुणों से संपन्न हो। जिस समय आचार्य वामन ने 'काव्यालंकार सूत्र' का उद्घोष किया, उस समय तक काव्य में अलंकार ही सौंदर्य तत्व माने जाते थे। वामन द्वारा प्रतिपादित रीति सिद्धांत स्व सिद्धांत न रहकर रस की अभिव्यक्ति का भी साधन बन गया।

चिंतामणि ने इसी अर्थ में 'रीति' शब्द का प्रयोग किया है। मतिराम, देव, सुरति मिश्र, सोमनाथ और दास ने बहुधा 'रीति' शब्द का ही प्रयोग किया है। डॉ. भगीरथ मिश्र ने रीतिकालीन संदर्भ में रीति शब्द के अर्थ विकास को स्पष्ट किया है। अत: रीतिशास्त्र का तात्पर्य उन लक्षण देने वाले या सिद्धांत चर्चा करने वाले ग्रंथों से है, जिनमें अलंकार, रस, रीति, वक्रोक्ति ध्वनि आदि के स्वरूप, भेद, अवयव आदि के लक्षण दिए गए हों। ऐसे ही रीतिकाव्य उस काव्य को कहेंगे, जिसमें अलंकार, रस, रीति, वक्रोक्ति आदि के उदाहरण के रूप में या इनका ध्यान रखकर काव्य लिखा गया हो, इनके लक्षण चाहे न भी दिए गए हों।

इस कालखंड का नामकरण भी इसी रीति शब्द के आधार पर किया गया (एक प्रकार से रीति शब्द प्रस्तुत संदर्भ में शास्त्रीय एवं परिपाटी विहित काव्य विधान का सूचक है)। इस काल का कवि एक विहित पद्धति से बँधकर चलता था। इस कालखंड में कवि आश्रित थे, जो अपने आश्रयदाताओं की कृपा प्राप्त करने हेतु उनके अपेक्षाकृत रचनाएँ करते रहे। रीति ग्रंथों का निर्माण इस काल की प्रमुख विशेषता है। रीति ग्रंथ का मतलब उन लक्षण ग्रंथों से है, जिसमें काव्यांगों का लक्षण देकर उदाहरणस्वरूप स्वनिर्मित पद दिए जाते थे। उन्होंने परवर्ती संस्कृत आचार्यों के बोधगम्य शैली में लिखे गए लोकप्रिय ग्रंथों का ही आधार लिया, किंतु संस्कृत आचार्यों के समान इन्हें सफलता नहीं मिली। मिश्रबंधु विनोद में वे लिखते हैं कि *'उत्तरलंकृत काल में भाषा भूषणों से लद गई, शृंगार-कविता खूब बनी, आचार्यत्व बढ़ी, कथा-प्रासंगिक प्रथा ने धर्म से संबंध करके बल पाया, साधारण कथा-प्रासंगिक ग्रंथ भी रचे गए और खड़ी बोली ने गद्य में भी जड़ पकड़ी। परमोत्कृष्ट कवियों का इस समय अभाव-सा रहा, परंतु उत्कृष्ट कवियों की मात्रा अन्य सभी समयों से विशेष रही, भाषा-माधुर्य के सम्मुख भाव-संकुचन हुआ एवं महाराजाओं में काव्य-प्रेम स्थिर रहा।'*[3]

**कालखंड, नामाकरण एवं परिस्थितियां :**

हिंदी साहित्य में रीतिकाल का आरंभ उस युग में हुआ, जब राजनैतिक दृष्टि से मुगल सत्ता भारत की केंद्रीय सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित थी। छोटे राज्यों-रजवाड़ों पर नियंत्रण होने के कारण युद्ध प्राय: नहीं हो रहे थे। सत्ता का चरित्र आदिकाल की ही तरह शोषण पर आधारित था। अंतर यह था कि आदिकाल में केंद्रीय सत्ता के अभाव में युद्ध लगातार होते रहते थे, जबकि इस काल में युद्ध नहीं के बराबर हो रहे थे। दरबारी परिवेश में मूलत: दो भावों की कविता संभव है वीरता और शृंगार। आदिकाल में युद्ध हो रहे थे इसलिये दोनों प्रवृत्तियाँ साहित्य में थीं। इसके विपरीत, रीतिकाल में युद्ध नहीं थे। अत: शृंगार ही कविता के केंद्र में है। कविता जैसे आदिकाल में दरबार में थी, वैसे ही रीतिकाल में भी रही।

सामाजिक रूप से यह काल भी सामंतवादी स्थितियों का ही काल है। सामंतवाद में एक वर्ग भूमि का मालिक होता है तथा किसान भूमि पर अनाज उपजाता है, जिसका कोई मालिकाना हक नहीं होता। इस प्रकार एक वर्ग बेहद परिश्रम करके भी शोषित रहता है, जबकि दूसरा वर्ग बिना परिश्रम किए बहुत अमीर हो जाता है। इस अमीर किंतु श्रमहीन वर्ग में रुचियों का विकास होता है। रीतिकाल में एक ऐसी ही रुचि विकसित हुई और राजा व सामंत चाहने लगे कि वे शास्त्रीय ज्ञान से युक्त हों। ऐसी स्थिति में एक विकल्प तो यह था कि ये स्वत: शास्त्रों का अध्ययन करें, किंतु इस काम के लिए अपेक्षित धैर्य, विवेक और संयम उनमें नहीं था। ऐसी स्थिति में रीतिकाल के कवियों के एक वर्ग ने यह दायित्व संभाला। उन्होंने संस्कृत के काव्यशास्त्रों तथा अन्य शास्त्रों में दिए गए लक्षणों का ब्रजभाषा में अनुवाद किया तथा फिर उस सिद्धांत या लक्षण को राजा को समझाने के लिए उसके उदाहरण के रूप में कविताएँ

रचीं। यह परपरा 'लक्षण-ग्रंथ-परंपरा' कहलाती है तथा इस धारा में शामिल कवियों को कभी-कभी 'आचार्य कवि' भी कह दिया जाता है। सामान्य रूप से यह धारा 'रीतिकाव्य' या 'रीतिबद्ध काव्य' कहलाती है।

हिंदी साहित्य का यह कालखंड शृंगार व अलंकार प्रधान रहा। इसलिए इस कालखंड को मिश्र बंधुओं ने अलंकृत काल तथा आचार्य विश्वनाथ ने शृंगार काल कहा। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने संवत् 1700 से संवत् 1900 तक के काल को रीतिकाल माना है, जिसे इसके प्रवृत्ति की दृष्टि से इससे बेहतर नाम की कल्पना नहीं की जा सकती। इस नाम का संकेत करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल कहते हैं-*'वास्तव में शृंगार और वीर इन्हीं दो रसों की कविता इस काल में हुई। प्रधानता शृंगार की ही रही। इससे इस काल को रस के विचार से कोई शृंगार काल कहे तो कह सकता है।'*[4]

हिंदी साहित्य का उत्तर मध्यकाल ही रीतिकाल के नाम से जाना जाता है । भक्तिकाल के बाद का यह युग अपेक्षाकृत शांत था। मुगल साम्राज्य की जड़ें जमने के बाद एक व्यवस्थित दरबारी संस्कृति का उदय हुआ, जिसमें कविता सुनाने के लिए कवियों आमंत्रित किया जाता था। मुगल दरबार की देखा-देखी अन्य छोटे-मोटे राजाओं ने भी दरबार सजाने और कवियों को उसमें आमंत्रित करने की प्रथा का निर्वाह किया। बाद में मुगल शासन की शक्तिहीनता, बाहरी आक्रमणों, प्रादेशिक शासकों के पारस्परिक युद्धों, मराठों एवं सिखों के आक्रमणों एवं कंपनी शासन की राज्य-विस्तार की महत्वाकांक्षा के कारण इस युग में अशांति और अव्यवस्था का वातावरण बना, फिर भी दरबार और दरबारी संस्कृति कायम रही। इस पूरी स्थिति का अध्ययन हम आगे विवेचित परिस्थितियों में विस्तार से करेंगे । यहाँ केवल यह स्पष्ट करना उद्देश्य है कि हिंदी साहित्य का यह कालखंड बहुत से आक्षेपों आरोपों का युग रहा है।

इस काल के अधिकांश कवियों ने आचार्यत्व का निर्वाह करते हुए लक्षण ग्रंथों की परिपाटी पर रीति ग्रंथों की रचना की, जिनमें अलंकार, रस, नायिका भेद आदि काव्यांगों का विस्तृत विवेचन किया गया। अपनी काव्य प्रतिभा दिखाने के लिए इन कवियों के लिए लक्षण ग्रंथ लिखना अनिवार्य था। काव्यांग चर्चा में ये गौरव का अनुभव करते थे तथा इस युग में इस बात पर विवाद होते थे कि इस पंक्ति में कौन-सा अलंकार, शब्द-शक्ति, रस या ध्वनि है। काव्यागों के लक्षण एवं स्वरचित उदाहरण प्रस्तुत करने वाले रीति ग्रंथों की प्रचुरता के कारण ही इस काल में रीति तत्व की प्रधानता परिलक्षित होती है और इसी कारण इस काल का नाम रीतिकाल रखा गया है ।

**समस्त रीति साहित्य में रतिभाव, काम भाव तथा वासना एवं भोगवादी दृष्टिकोण ही प्रधान है। जिस प्रेम की पीर तथा अलौकिक प्रेम की भावना भक्ति काल में देखी गई, उसके विपरीत रीतिकाल में लौकिक प्रेम एवं शृंगार भाव मुख्य रहा। भक्ति के माधुर्य भाव ने तो जैसे नग्न अलंकारिता की प्रवृत्ति को खुली छूट ही दे दी थी।**

**काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण :**

रीतिकालीन साहित्य में भक्ति जैसी प्रमुख प्रवृत्ति का स्थान शृंगार ले लेता है और उस शृंगारिक वर्णन पर अनेक आरोप-आक्षेप लगाकर उसे अश्लील या घोर शृंगारी भी कहा जाता है । परंतु ऐसा क्यों ? रीतिकालीन कवि या साहित्यकार घोर शृंगारी क्यों हुआ ? उसने ऐसी कविता लिखने की प्रेरणा कहाँ से और क्यों पाई ? उसके शृंगारी काव्य सृजन को प्रोत्साहन किसने दिया ? ऐसे कितने ही प्रश्नों के उत्तर तात्कालिक परिस्थितियों और परिवेश में निहित हैं। रीतिकाल में केवल शृंगारी काव्य का ही सृजन नहीं हुआ।

संस्कृत में आचार्य कर्म और कवि कर्म दो पृथक कर्म थे, जिन्हें निभाने वाले संस्कृत में दो भिन्न श्रेणियों के व्यक्ति रहे हैं। किंतु रीतिकाल में इन दोनों कर्मों को एक ही व्यक्ति के द्वारा निभाने का प्रयत्न किया गया है। इससे काव्य में सूक्ष्म विवेचन और विश्लेषण पर गहरा

प्रभाव पड़ा, क्योंकि रीतिकालीन विद्वानों में उस प्रौढ़ और संतुलित विवेचन शक्ति का अभाव था, जो एक आचार्य के लिए आवश्यक होता है। इसलिए इन्हें आचार्य की कोटि में रखने पर आपत्ति की गई है। वस्तुत: ये विद्वान केवल कवि थे, किंतु राजदरबार में आदर-सम्मान और इनाम पाने के लिए इन्हें लक्षण ग्रंथ लिखने पड़े, जबकि काव्यशास्त्र में इनका अपना ज्ञान भी पूरा नहीं था। देखा जाए तो ये आचार्य थे ही नहीं और न ही

इनका उद्देश्य आचार्यत्व कर्म को गंभीरता से करने का था। ये तो केवल कवियों और रसिकों को काव्यशास्त्र के विषय से परिचित कराना चाहते थे। ये राजा-महाराजा और सामंत ऐसे विलासी रईस थे, जिनमें तर्क की सूक्ष्मता को समझने की न शक्ति थी और न ही अवकाश। इस काल के कवियों ने इनके छिछोरे मनोरंजन की आवश्यकता की पूर्ति की। ये कवि आचार्य सहृदय और कुशल कवि थे। इनका मूल उद्देश्य कविता करना था, काव्यांगों का शास्त्रीय निरूपण नहीं। फिर भी इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि इन कवियों ने आचार्य बनने की धुन में अपनी रचनाओं के द्वारा रस, अलंकार, छंद आदि के अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किए हैं।

हिंदी में काव्यशास्त्रीय चिंतन का प्रारंभ रीतिकाल से होता है । रीति ग्रंथों में काव्य के स्वरूप पर बहुत प्रकाश डाला गया है,किंतु इनमें मौलिकता के दर्शन प्राय: नहीं होते। शृंगार प्रधान काव्य तथा नायक-नायिका भेद, नख-शिख वर्णन एवं विविध क्रीड़ाओं का रसमयी शैली में विवेचन इस युग में किया गया। इस युग का अधिकांश काव्य विभिन्न परिस्थितियों से चालित एवं प्रेरित होता रहा। इसीलिए उन्होंने कुछ कवियों की एक श्रेणी बना दी- 'रीति ग्रंथकार कवि' और शेष कवियों को 'अन्य कवि' के खाते में डाल दिया। बिहारी को रीति ग्रंथकार कवियों के वर्ग में रखा, जबकि बिहारी ने कोई रीति ग्रंथ नहीं लिखा है। बिहारी को इस वर्ग में रखने का औचित्य बताते हुए वे लिखते हैं- *'जैसा कि कहा जा चुका है, दोहों को बनाते समय बिहारी का ध्यान लक्षणों पर अवश्य था। इसलिए हमने बिहारी को रीतिकाल के फुटकर कवियों में न रखकर उक्त काल के प्रतिनिधि कवियों में ही रखा है।'* [5]

**साहित्यिक प्रवृत्तियाँ :**

रीतिकालीन हिंदी साहित्य की रचना जिन सामंतीय परिस्थितियों में हुई, उस साहित्य को साधारण लोगों के जीवन से तो संबद्ध नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह साहित्य तो मूलत: दरबारी या शाही साहित्य था। आश्रित

कवियों तथा आचार्यों ने जिस साहित्य की सृष्टि की, उसमें तत्कालीन राजाओं या सामंतों की शृंगार वासना को उत्तेजित करने के लिए सुरा, सुंदरी, सुराही आदि के वर्णन के अतिरिक्त कवितारूपी कामिनी के अलंकरण एवं नायक-नायिका के नख-शिख वर्णन पर ही जोर दिया गया। समस्त रीतिकालीन काव्य धाराओं की विशेषताएँ इस प्रकार रही हैं।

**अलंकरण की प्रवृत्ति :**

रीतिकालीन साहित्यकारों ने काव्य के क्षेत्र में आलंकारिकता प्रदर्शन तथा चमत्कारपूर्ण उक्तियों को अपने काव्य का प्रतिपाद्य बनाया। उन्होंने अलंकारों को कविता रूपी कामिनी के लिए अनिवार्य घोषित किया । इसीलिए केशव ने तो यहाँ तक लिख दिया है-

*'जदपि सुजाति सुलच्छिनी, सुबरन सरस सुबत्त। भूषन बिनुन बिराजई कविता बनिता मित्त'।*[6]

अर्थात कविता तथा बनिता चाहे कितनी ही उच्च जाति की, अच्छे लक्षणों वाली सुवर्ण, रसीली क्यों न हो, जब तक ये भूषण (अलंकार) धारण नहीं करती तब तक शोभा नहीं पा सकती। इसी कारण रीतिकाल के अधिकांश साहित्यकारों ने अलंकारों के सहारे ही अपनी रचनाएँ रचीं। अलंकार शास्त्र ही उस समय का साहित्यशास्त्र माना जाता था ।

**शृंगार भावों की प्रधानता :**

समस्त रीति साहित्य में रतिभाव, कामभाव तथा वासना एवं भोगवादी दृष्टिकोण ही प्रधान है। जिस प्रेम की पीर तथा अलौकिक प्रेम की भावना भक्ति काल में देखी गई, उसके विपरीत रीतिकाल में लौकिक प्रेम एवं शृंगार भाव मुख्य रहा। भक्ति के माधुर्य भाव ने तो जैसे नग्न अलंकारिता की प्रवृत्ति को खुली छूट ही दे दी थी। जीवन की सामान्य घटनाओं को भी नायक-नायिका के माध्यम से बड़े ही रसीले ढंग से प्रस्तुत किया जाता था । इसी बात को 'हिंदी आलोचना का विकास' में नंद किशोर नवलजी ने स्पष्ट करते हुए लिखा है - *''शृंगार रस के काव्यों में परकीय आदि का प्रसंग कुरुचि का उत्पादक होने से नितांत निदंनीय कहा जाता है, यह किसी अंश में ठीक भी हो सकता है, पर ऐसे वर्णनों से कवि का अभिप्राय समाज को नीतिभ्रष्ट और कुरुचि संपन्न बनाना नहीं होता। ऐसे प्रसंग पढ़कर धूर्त विटों की गूढ़ लीलाओं के दावघात से परिचय प्राप्त करके सभ्य समाज अपनी रक्षा कर सके- इस विषय में सतर्क रहे - यही ऐसे प्रसंग वर्णन का प्रयोजन है।''*[7]

**भक्ति एवं लोक-जीवन का चित्रण :**

रीतिकालीन रचनाकारों का मुख्य प्रतिपाद्य शृंगार रस ही रहा, परंतु उनकी रचनाओं में माधुर्य, भक्ति तथा लोक जीवन की नीति संबंधी भी कुछ रचनाएँ मिलती हैं। लेकिन उनकी संख्या है बहुत कम। राधा और कृष्ण को माध्यम बनाकर कुछ शृंगारपरक भक्ति काव्य भी रचा गया। उन्हें तो राधाकृष्ण को प्रसन्न करने के लिए शृंगारपरक मधुरा भाव की भक्ति ही अधिक उपयुक्त प्रतीत हुई। लोकाचार संबंधी जो मुक्तक अर्थात नीतिपरक दोहे या कवित्त लिखे गए हैं, उनमें भी शृंगार भाव छिपा है।

**मुक्तक काव्य शैली का प्रयोग:**

काव्य रूपों तथा काव्य शैलियों की दृष्टि से सोचा जाए तो रीतिकालीन रचनाकारों ने प्रबंध काव्य की अपेक्षा मुक्तक काव्य शैली को प्रमुखता प्रदान की। तत्कालीन आश्रयदाताओं को तुरंत प्रसन्न करने के लिए मुक्तक काव्य शैली की प्रवृत्ति का खूब प्रसार हुआ, क्योंकि मुक्तक काव्य चुने हुए फूलों का गुलदस्ता होता है, जिससे दरबार को आसानी से मोहित एवं प्रसन्न किया जा सकता है। वीर रस के ओजस्वी रीतिकाल में ही भूषण कवि हुए हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं में वीर रस का ऐसा सुंदर एवं सरस चित्रण किया है कि उनका नाम अद्वितीय है। रीतिकाल में रचे गए साहित्य में वीर रस का अजल प्रवाह प्रतीत होने लगता है। इनसे संबंधित रचनाएँ मध्य प्रदेश , पंजाब , राजस्थान , हरियाणा आदि प्रदेशों के संग्रहालयों में सुरक्षित हैं।

**नारी विषयक दृष्टिकोण :**

रीतिकालीन साहित्य में नारी के प्रति यह दृष्टिकोण रहा है कि उसे केवल भोग्या एवं भोग विलास का साधन ही माना जाए। राज्याश्रित कवि भी अपनी कविता का केंद्र नारी का नख-शिख वर्णन मानते रहे । वे नारी के शारीरिक अंगों के वर्णन में ही उलझे रहे । सौंदर्य का नग्न चित्रण ही उन्हें प्रिय रहा। नारी के बाह्य रूप-रंग

को ही महत्व दिया जाता रहा। नारी जीवन के प्रति रीति कवियों का ऐसा संकुचित एवं एकांगी दृष्टिकोण निश्चित रूप से मुगल शासक के विलासी प्रवृत्ति का परिणाम कहना चाहिए। रीतिकालीन काव्य में रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में प्रकृति का चित्रण विशेष रूप से आलंबन रूप में ही किया है। संयोग शृंगार में सुखद तथा वियोग शृंगार में दु:खद प्रकृति का चित्रण हुआ है। षड़ऋतु वर्णन तथा बारहमासा चित्रण भी किया गया है। वियोग अवस्था में प्रकृति के सुखद उपादान भी दु:खद हो जाते हैं। चित्रण बड़े ऊहात्मक भी हो गए हैं, क्योंकि चंद्रमा की चांदनी वियोगिनी नायिका के लिए कसाई का काम करती हुई दिखाई गई है।

**कामशास्त्रीय चित्रण मनोवैज्ञानिक आधार पर :**

रीतिकालीन साहित्य में स्त्री-पुरुष के यौन संबंधों को वात्स्यायन के कामसूत्र तथा कोका के कोकशास्त्रीय आधार पर चित्रित करते हुए जिस मनोवैज्ञानिक आधार की बात कही जाती है, उसे ही आधुनिक युग में फ्रायडयादी दृष्टिकोण कह दिया जाता है। परंतु रीतिकालीन रचनाकार तो संस्कृत की कामशास्त्रीय परंपरा से प्रेरित थे। रीतिकालीन साहित्य में कामुकता तथा ऐंद्रियता की बहुत अधिकता है। नायक-नायिका भेद भी कामुक दृष्टिकोण से ही किए गए हैं। पद्मिमनी, हंसिनी, हस्तिनी तथा चित्रणी आदि नायिकाएँ उनकी मानसिक तथा कामुक प्रवृत्ति के आधार पर ही चित्रित की गई हैं।

**स्वतंत्र चिंतन का अभाव:**

रीतिकालीन रचनाकारों ने अपनी आजीविका के लिए जो साहित्य रचा, उसमें मौलिकता तथा स्वतंत्र चिंतन की अत्यंत कमी दिखती है । उन्हें तो अपने आश्रयदाताओं की रुचि के अनुसार नायक-नायिका भेद अथवा काम क्रीड़ाओं का ही अधिक चित्रण करना था। संस्कृत साहित्य से विषय-वस्तु लेकर उसे लोकभाषा में रूपांतरित करके ही उन्हें सन्तुष्ट होना पड़ता था। डॉ. बच्चन सिंह रीतिकालीन काव्य को दरबारी काव्य मानते हैं और लिखते हैं - *''रीतिकालीन कवि सचेत रूप से कविता लिख रहे थे, जो उनके जीविकोपार्जन से जुड़ी हुई थी। प्रत्योलब्धि राजाओं, महाराजाओं, सामंतों, जागीरदारों से ही हो सकती थी। इनमें से कुछ स्वयं कविता करते थे और काव्य प्रेमी थे और कुछ के लिए कवि दरबार की शोभा थे। कवि लोग कविता के सौदागर थे। सौदागरी पूँजीवाद के युग का प्रादुर्भाव हो चुका था। देव ने 'सुकवि' को कविता का सौदागर कहा है। इस सौदागर कवि ने भागीलाल जैसे रईस से 'लाखनि खरचि रचि आखर खरीदे हैं, पद्माकर डंके की चोट पर कहते हैं - 'आखर लगाय लेत लाखन की सामा हौं'।''*[8]

**यथार्थ जीवन के प्रति विचार :**

रीतिकालीन हिंदी साहित्य में सबसे महत्वपूर्ण प्रवृत्ति यही है कि उसमें यथार्थ जीवन के प्रति गहरी अभिरुचि दिखाई गई है। रीतिकालीन कवियों एवं आचार्यों का जीवन दर्शन ही ऐसा था, जिसमें जीवन तथा यौवन का पूर्ण उपयोग करना था। डॉ. भगीरथ मिश्र ने रीतिकालीन रचनाकारों को यौवन तथा बसंत के कवि कहा है । उसे मस्ती से भरा मदमाता जीवन दर्शन कह सकते हैं, जहाँ जीवन को ऐसा विश्राम स्थल समझा गया कि सब प्रकार इस प्रकार रीति काव्य दरबारी आश्रय में विकसित हुआ। इस समय लक्षण ग्रंथ का निर्वाह संस्कृत काव्यशास्त्र को आधार बना कर किया गया। नख-शिख वर्णन और नायक-नायिका भेद आदि विषयों पर इस युग के श्रेष्ठ कवि अपनी प्रतिभा का ह्रास कर रहे थे। ये कवि काव्यशास्त्र के ज्ञाता नहीं थे, किंतु ज्ञाता होने का स्वांग रच रहे थे।

इस काल में कथ्य की अपेक्षा शिल्प पक्ष में कवियों का मन अधिक रमा है। भाषा को अलंकारों, मुहावरों से सजाया गया। इससे भाषा की शक्ति में विस्तार एवं विकास अवश्य आया था, परंतु भाषा का रूप विकृत हो चला। कारक चिह्नों, लिंग संबंधी दोषों से भाषा कुरूप हो गई। ऐसे में घनानंद, ठाकुर आदि कवियों की भाषा परिनिष्ठित ब्रज भाषा का अपवाद बन कर रह गई।

**प्रासंगिकता :**

हिंदी साहित्य के रीतिकाल को आधुनिक आलोचकों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से समीक्षा की है। इन आलोचकों की रीतिकालीन मूल्यांकन को ध्यान से पढ़ा जाए तो उनमें एक खास तरह का तनाव दिखाई पड़ता है। विभिन्न आलोचकों द्वारा रीतिकालीन काव्य की समीक्षा भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से की गई है। किसी ने उसे महज एक

शृंगारिक काव्य माना और उसका विवेचन केवल उसी पक्ष के आधार पर किया और कुछ आलोचकों ने रीतिकाव्य की आलोचना श्लीलता-अश्लीलता से परे भिन्न आधारों पर की। शुक्ल पूर्व आलोचकों द्वारा रीतिकाव्य की आलोचना अधिकतर काव्यशास्त्रीय आधार पर ही की गई। हालाँकि शुक्ल जी के समय में और उनके पश्चात स्थिति में कुछ परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। अब रीतिकालीन काव्य को केवल एकांगी दृष्टिकोण से नहीं देखा जाता, बल्कि उसके अन्य पक्षों पर भी विचार किया जाने लगा। सभी आलोचकों की आलोचना दृष्टि का अध्ययन करने से इनके भिन्न-भिन्न आधारों का पता चलता है।

लेकिन ये आलोचक भी रीतिकालीन साहित्य को किंतु और परंतु के साथ ही मूल्यांकित करते हैं। दरअसल, बीसवीं सदी के हिंदी के आचार्य साहित्य की सामाजिक सोद्देश्यता पर जोर देने लग गए थे। वे ये मानते थे कि सामाजिक परिवर्तन में साहित्य को अपनी सचेत भूमिका का निर्वाह करना चाहिए। इस भूमिका का निर्वाह करके ही साहित्य अपनी सार्थकता सिद्ध कर सकता है। यही कारण है कि ये आलोचक भी जब रीतिकालीन साहित्य का मूल्यांकन करते हैं तो एक तरफ इसे साहित्य और कला की दृष्टि से समृद्ध काल मानते हैं, वहीं दूसरी तरफ इस साहित्य की सामाजिक सोद्देश्यता के प्रति निराशा अभिव्यक्त करते हैं।

हिंदी साहित्य में रीतिकालीन मूल्यांकन को लेकर जो एक विवाद है और इन विवादों में जो एक खास प्रकार का तनाव दिखाई देता है इसी की तरफ इशारा करते हुए विजयदेव नारायण साही कहते हैं- *''रीति कविता की जीवनी-शक्ति और उनके औचित्य के बारे में काफी शंकाएँ उठाई गई हैं। कभी उसकी नैतिकता को लेकर तो कभी उसकी रूढ़िवादिता को लेकर और अक्सर इसलिए कि यह सारा काव्य दरबारी और सामंती है। उँगली उठाने वालों में क्या आदर्शवादी, क्या यथार्थवादी, क्या 'भारतीय संस्कृति' वादी और क्या कम्युनिस्ट धर्मनिरपेक्षतावादी सभी रहे हैं।''*[9] डॉ. नगेंद्र कहते हैं - *''घोर पराभाव के उस युग में समाज के अभिशप्त जीवन में सरसता संचार कर इन कवियों ने अपने ढंग से समाज का उपकार किया था। इनमें संदेह नहीं कि इनके काव्य का विषय उदात्त नहीं था- उसमें जीवन के भव्य मूल्यों की प्रतिष्ठा नहीं थी, अत: उसके द्वारा प्राप्त आनंद भी उतना उदात्त नहीं था। काव्य-वस्तु के नैतिक मूल्य का काव्य-रस के नैतिक मूल्य पर प्रभाव निश्चय ही पड़ता है, और इस दृष्टि से रीतिकाव्य का नैतिक मूल्य निश्चय ही कम है, फिर भी अपने युग की आत्मघाती निराशा को उच्छिन्न करने में उसने स्तुत्य योगदान किया, इसमें संदेह नहीं, इस सत्य को अस्वीकार करना कृतघ्नता होगी।''* [10]

रीतिकाल का सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिवेश अपेक्षित था, इस दौर के कवियों ने भी इस भाव को केंद्र में रखकर मुक्तक के रूप में चुने हुए गुलदस्ते खूब तैयार किए। बिहारी, पद्माकर और देव आदि कवियों को इसमें विशेष सिद्धि प्राप्त थी। शृंगारिक भाव की लोकप्रियता ही 'नायिका भेद' को महत्वपूर्ण बना देती है। रामचंद्र शुक्ल इस स्थिति को ऐसे स्पष्ट करते हैं- *''अलंकारों की अपेक्षा नायिका भेद की ओर कुछ अधिक झुकाव रहा। इससे शृंगार रस के अंतर्गत बहुत मुक्तक रचना हिंदी में हुई। इस रस का इतना अधिक विस्तार हिंदी साहित्य में हुआ कि इसके एक अंग को लेकर स्वतंत्र ग्रंथ रचे गए। इस रस का सारा वैभव कवियों ने नायिका भेद के भीतर दिखाया। रस ग्रंथ वास्तव में नायिका भेद के ही ग्रंथ हैं, जिनमें और दूसरे रस पीछे से संक्षेप में चलते कर दिए गए हैं। नायिका शृंगार रस का आलंबन है।''* [11]

**उपसंहार :**

आधुनिक हिंदी आलोचकों में रीति या शृंगारकालीन साहित्य अत्यधिक बदनाम है। इन आलोचकों ने इसे इतने अश्लील नामों से संबोधित किया है कि बेचारा घोर शृंगारिक भी उसे कहने में हिचकेगा। रीति या शृंगारकालीन रीतिबद्ध साहित्यधारा को भी यदि पूर्वगृहीत दृष्टि से देखा जाए तो उसकी एकमात्र विशेषता कही जाएगी- अमौलिक, असफल और अनुपयुक्त साहित्य। लेकिन निष्पक्षता से उसके स्वरूप का विश्लेषण करने पर उसके गुण-विशेष और दोष-विशेष दोनों हमारे सामने आ जाएँगे । इस समय आचार्यत्व और काव्यत्व

के एकीकरण तथा कवित्व द्वारा आचार्यत्व के आच्छादन का प्रभाव हिंदी साहित्य पर अच्छा नहीं पड़ा, जिसके कारण आचार्यत्व का पूर्ण विकास भी न हो सका तथा कविता-कामिनी भी स्वतंत्र रूप से प्रभावलोक में विचरण न कर सकी। भगीरथ मिश्र के अनुसार- *''यह नहीं कहा जा सकता कि रीतियुग का काव्य जीवन और उसकी प्रगति से विमुख था। वरन् इसके विपरीत सत्य यह है कि यह काव्य पूर्ववर्ती भक्तियुग के काव्य से अधिक लोक-जीवनाभिमुखी था।''* [12]

रीतियुग में कृष्ण काव्य धारा का एक नया रूप लक्षित होता है । यह काल भक्ति काल के ह्रस का युग है, किंतु कलागत दृष्टि से पर्याप्त उत्कर्ष का युग। इस आंदोलन का रूप सत्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ में नष्ट हो गया था। इस युग में प्रेम और शृंगार-भावना को आश्रय मिला। राधा-कृष्ण सगुण ब्रह्म नहीं रह गए थे । वे मध्यकालीन मनोवृत्ति अर्थात इच्छा और वासना के प्रतीक बन गए थे ।

रीतिकालीन आचार्यों की शक्ति निम्नलिखित बातों में पाई जाती है :-

(1) शास्त्र-क्षीण परंपरा को भी इन्होंने सरल रूप में अवतरित किया ।

(2) रस-ध्वनि के प्रभाव से इनके कारण ही मुक्त हुआ।

(3) काव्य-सौंदर्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण सरस उदाहरणों का इन्होंने अक्षय-कोश प्रदान किया ।

(4) तत्कालीन सामाजिक, पारिवारिक एवं गार्हस्थ्य-जीवन पर पर्याप्त प्रकाश डाला है ।

आचार्यत्व के क्षेत्र में रीति-आचार्य सफलता न पा सके। डॉ. नगेंद्र का मत इस संबंध में उल्लेखनीय- *''संस्कृत काव्यशास्त्र की तुलना में हिंदी का रीतिकालीन काव्यशास्त्र वर्ण्य विषय की दृष्टि से लगभग समान। वह भी विषय की व्यापकता, शास्त्रीय विवेचना एवं प्रतिपादन शैली की दृष्टि से शिथिल है और इस शिथिलता का प्रधान कारण उद्देश्य की भिन्नता है।''* [13] साहित्य एवं कला की दृष्टि से रीतिकाल पर्याप्त समृद्ध कहा जा सकता है। इस काल के कवि यद्यपि साधारण वर्ग के व्यक्ति थे, तथापि अपने आश्रयदाता मुगल सम्राट अथवा देशी राजा या नवाबों से मिला धन एवं सम्मान कवि के रूप में काव्य को प्रोत्साहित करने में सबसे अधिक सहायक हुआ। अत: इन लोगों ने अपनी काव्य-कला के गुण और परिमाण में पर्याप्त वृद्धि की। अत: हिंदी साहित्य का रीतिकाल अपने आप में विलक्षण व समृद्ध है। ❑

**संदर्भ ग्रंथ सूची:**


1. 'सरस्वती कण्ठाभरण', आचार्य भोज, पृ. 34
2. भारतीय काव्यशात्र, भागीरथ मिश्र, पृ. 18
3. मिश्रबंधु विनोद, मिश्रबंधु, पृ. 232
4. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य शुक्ल, पृ. 162
5. हिंदी साहित्य का अतीत, (शृंगार काल), विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ. 585
6. रामचंद्रिका, केशवदास, पृ. 47
7. हिंदी आलोचना का विकास, नंद किशोर नवल, पृ. 80
8. डॉ. बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ. 181
9. रीतिकाल की पतनशीलता और औपनिवेशिक दृष्टि, राजकुमार (प्रतिमान-जुलाई-दिसंबर 2016)

# 'जीवनर बाटत' उपन्यास में असमीया अंचल-जीवन की यथार्थ प्रस्तुति

**डॉ. बिद्या दास**

सहायक प्राध्यापिका, हिंदी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय,
गुवाहाटी, असम
मो- 9205868126
ईमेल-bidyadas@cottonuniversity.ac.in

**शोध सार:**

तगर के जीवन में आए विभिन्न घात-प्रतिघातों तथा पड़ावों के साथ जोड़कर उपन्यासकार ने असम के भीतरी गाँवों-अंचलों के जनजीवन, नीति नियम, लोक परंपरा, खान-पान, पहनावा, लोक गीत, पूजा-भक्ति, कर्मकांड, मंत्र, लोक विश्वास, औरतों के झगड़े, सास की डाँट, शिशु का विलाप, भद्दी गाली, ईर्ष्या आदि का यथार्थ चित्र पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। असम के प्राकृतिक सौंदर्य से लेकर मनुष्य जीवन से जुड़े विश्वास, परंपरा, जन्म-मृत्यु-विवाह संबंधी नियम, उत्सव आदि कुछ भी उपन्यासकार की दृष्टि से बचा अछूता नहीं रहा। विवेच्य उपन्यास में असमीया आंचलिक जीवन के सार्थक और सजीव रूपायन के साथ उपन्यासकार ने आंचलिकता की अभिव्यक्ति वस्तु जगत और भाव जगत दोनों दृष्टि से की है।

**बीज शब्द :** असमीया, अंचल, प्रकृति, मनुष्य, साहित्य, जीवन।

**मूल आलेख :**

साहित्य जगत में किसी कृति को आंचलिक कहने पर प्राय: उसकी व्यापकता को सीमित अर्थ में ले लिया जाता है; ऐसा प्रतीत होता है मानो आंचलिकता के व्यापक अर्थ को केवल अंचल-जीवन के सीमित कठघरे में आबद्ध कर दिया गया हो। वास्तविक अर्थ में आंचलिकता की अवधारणा काफी वृहद है। आंचलिकता अपने में समग्र मानव जीवन, लोक-अंचल, समय, देश, परिवेश, संस्कृति आदि सभी प्रधान तत्वों को समाहित कर लेती हैं। एक साहित्यिक धारा के रूप में आंचलिकता सभी भारतीय भाषा साहित्य में उभरती और विकसित हो रही है। अगर पूर्वोत्तर राज्य असम की बात की जाए तो यहाँ आंचलिकता अंचल-जीवन के साथ असमीया जातीय गौरव, संस्कृति व परंपरा के इतिहास को समेटे हुई थी। आधुनिक असमीया साहित्य के श्रेष्ठ विद्वानों में से प्रमुख डॉ. बिरिंचि कुमार बरुवा, जिन्हें असम का लोक-संस्कृतिविद भी कहा जाता है, द्वारा रचित 'जीवनर बाटत'[1] (जीबनर बाटत) उपन्यास में आंचलिकता अपनी समग्र विशिष्टताओं के साथ अभिव्यक्त हुई है। बीसवीं शती असमीया गद्य साहित्य का प्रकृत विकास एवं प्रतिष्ठित

काल माना जाता है। इसी समय उपन्यास विधा अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम बनी। अलग-अलग विषय-वस्तुओं को लेकर उपन्यास लिखे गए। इधर विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद असमीया उपन्यास विधा ने नया रूप ग्रहण किया; पूर्ववर्ती रोमांटिक विषय-वस्तु को त्यागकर उपन्यास समाज केंद्रित विषयों को अपनाने लगा। असम के ग्रामीण-अंचल तथा नगरीय जीवन के विभिन्न समस्यायों को उपन्यासकार चित्राकिंत करने लगे, फलत: आंचलिक उपन्यास केंद्र में आए। सन 1944 में प्रकाशित 'जीवनर बाटत' उपन्यास में बिरिंचि कुमार बरुवा ने असम के ऊपरी भाग में अवस्थित गोलाघाट जिले के मरंगी अंचल-विशेष, जो भौगोलिक दृष्टि से सीमित क्षेत्र में आबद्ध है, के जनजीवन को उसकी समग्रता के साथ चित्रित किया है। मरंगी अंचल के साथ ही मध्य असम में अवस्थित नगाँव जिले के टोपाकुची गाँव को असमीया ग्रामीण अंचलों का प्रतीक रूप बनाकर उपन्यासकार ने लोक जीवन, लोक परंपरा, जमींदारों द्वारा किए गए शोषण, भूमि की समस्या, नए उभरते व्यापारियों द्वारा आमजनों को ठगने की नई चाल, समाज-जीवन में फैली राजनीतिक व आर्थिक विषमता, असमानता आदि को व्यापक परिदृश्य में प्रस्तुत किया है। मरंगी गाँव के तहसीलदार भोगदत्त सइकिया की बेटी की शादी से उपन्यास का कथानक प्रारंभ होता है। इस शादी में न केवल गाँव के सभी लोग बच्चे से लेकर बूढ़े तक अपना सहयोग देते हैं, बल्कि असमीया लोक परंपरा तथा शादी के विभिन्न नीति-नियम भी नजर आते हैं। इसी शादी में उपन्यास की प्रमुख पात्र तगर और शहर में पढ़ा-लिखा युवक कमलाकांत मिलते हैं। तगर के प्रथम दर्शन से ही आकृष्ट होकर कमलाकांत सामाजिक विधि-अनुष्ठान की उपेक्षा कर तगर को अपनी सोने की अंगुठी पहना देने के साथ ही उससे शादी करने का वादा भी करता है। लेकिन वहीं कमलाकांत शहर जाकर आधुनिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद अच्छी नौकरी मिलने के लालच में रायबहादुर मानिक हजारिका की बेटी सुप्रभा से विवाह कर लेता है। और इधर तगर के पिता बापूराम बोरा अपमानित और लज्जित होकर तगर की शादी जबर्दस्ती विभिंग[2] मास्टर धरनी से करा देते हैं। इन सब में तगर की राय भी नहीं ली जाती है। धरनी के साथ तगर की शादी हो जाने के बाद तगर टोपाकुची गाँव आती है। यहाँ से तगर के जीवन का एक नया अध्याय शुरू होता है। एक सफल गृहिणी की तरह तगर अपने घर-गृहस्थी के समस्त दायित्व को अच्छे से निभाती है। पति की सेवा-सुश्रुषा करने से लेकर अपनी संतान के दायित्व का पालन करना, अपनी सास के प्रति एक बहू के कर्तव्य का पालन करने में तगर कभी पीछे नहीं हटती। इस प्रकार देखने में उपन्यास की कथा-वस्तु सामान्य-सी है, परंतु इसी कथा-वस्तु में मानव जीवन के घात-प्रतिघातों का चित्रण करते हुए अंचल की विशिष्टताओं का दिग्दर्शन कराना उपन्यासकार की उपलब्धि है। वर्तमान समय में असम के ऊपरी भाग का गोलाघाट जिला और निम्न भाग का नगाँव जिला (अभी मध्य भाग) दोनों नजदीक आ चुके हैं; एक अंचल का दूसरे अंचल के लोगों के साथ बोली-भाषा, रीति-नीति अब एक-दूसरे अंचलवासी के लिए अलग नहीं रहे। लेकिन आज से लगभग 70 साल पहले जब रेल के अलावा दूसरी कोई यातायात की सुविधा नहीं थी, रेडियो, टी.वी. का भी प्रचलन नहीं था, तब नगाँव के लिए गोलाघाट के लोग एकदम अलग थे, जैसे विदेशी हों। अपने अंचल को ही श्रेष्ठ मानकर अन्य अंचल के लोगों के प्रति बुरा भाव रखते थे। उसके ऊपर जाति-कुल, गोष्ठी संप्रदाय को

लेकर भी अलग-अलग मत थे।'जीवनर बाटत' उपन्यास में मरंगी गाँव की तगर जब बहू बनकर रोहा अंचल की टोपाकुची गाँव में आती है, तब उसे सहृदय स्वीकार नहीं किया जाता, इसके विपरीत उस पर काफी लाँछन लगाए जाते हैं। धरनी का वंश-संप्रदाय अना-आहोम है। आहोम लोगों की संख्या असम के ऊपरी भाग में अधिक है, इसलिए पूरे गाँव में यह बात फैल जाती है कि धरनी ने एक आहोम संप्रदाय की लड़की से विवाह कर लिया है। हालाँकि तगर आहोम जाति की नहीं है, यह बात स्पष्ट हो जाने के बाद भी गाँव वालों का यह मानना हैं कि चाहे लड़की आहोम न हो, पर ऊपरी असम में विवाह करना उचित नहीं है। यहाँ तक कि इस बात से नाराज सास आहिनी के कड़े शासन और अत्याचार तगर का जीवन और भी दुखमय बना देते हैं। उसी तरह निचले असम के लोगों के लिए ऊपरी असम के लोगों की बातें भी अजीब होती हैं, धरनी जब ऊपरी असम में शादी करके तगर को अपने साथ निचले असम ले आता है, तब उसके गाँव में कोहराम मच जाता है। उपन्यास में कुल चार भाग हैं और प्रत्येक भाग का पूर्वाभास उस भाग के आरंभ में असमीया समाज में प्रचलित लोक गीत तथा लोकोक्तियों के प्रयोग से हुआ है। उदाहरणस्वरूप प्रथम भाग के आरंभ में-

**''काम सोराय रंगा ठूंठ/ ताते दिले दीघल फूट**
**पितादेउ, पितादेउ / दूरलैके निदिबि मोक''**

(यहाँ असमीया लोक गीत की इन पंक्तियों में उपन्यास की प्रमुख पात्र तगर के विवाह की ओर इंगित किया गया है, जहाँ एक बेटी अपने पिता से दूर विदा न करने की प्रार्थना कर रही है।) असम प्रांत का अधिकांश भाग ग्रामीण-अंचलों से घिरा है। यहाँ मुख्य जीविका के रूप में धान की खेती की जाती है।'जीवनर बाटत' उपन्यास में टोपाकुची गाँव के खेतों में काम कर रहे लोगों का चित्रण उपन्यासकार इस प्रकार करते हैं- ''अगहन-पौष के महीने में गाँव में दिनभर घर पर कोई नहीं रहता। बच्चे से लेकर बूढ़े तक सभी सुबह पेट भरकर भात खा लेते हैं और पूरे दिन खेतों में ही रहते हैं।...खेत के बीच की पतली पगडंडी पर लंबा डंडा गाड़कर उस पर चादर डालकर औरतें अपने बच्चों को सुलाती हैं और फिर जल्दी-जल्दी धान के खेतों के बीच चली जाती हैं।...धूप सिर के ऊपर पहुँचते ही खेत में काम कर रहे सभी स्त्री और पुरुष पेड़ की छाँव में आकर थोड़ी देर बैठते हैं, बाते करते हैं; उनके हँसी-मजाक से पूरा परिवेश जीवंत हो उठता है।''[3] शहर में पढ़े-लिखे कृष्णकांत और कमलाकांत जब मरंगी गाँव आते हैं, तब कमलाकांत बैलगड़ी में बैठकर माघ महीने के ग्रामीण परिवेश की सुंदरता को निहारता है- ''मेघ वर्ण के कुहरे ने चारों दिशाएँ ढक रखी है। पेड़-पौधे, जंगल, पठार कुछ भी स्पष्ट नजर नहीं आ रहा।...पत्तेविहीन पीपल के पेड़ में बैठा एक कौआ कोलाहल की सृष्टि कर रहा है। रास्ते के किनारे बैर के पेड़ पर पक्षियाँ चहचहा रही हैं।...धुएँ की तरह चारों ओर फैला कुहरा धीरे धीरे हटने लगा है। पतले और लंबे ताम्बुल के पेड़, भलुका बाँस की लंबी पंक्तियाँ गाँव के चिह्न पताका की तरह दूर से नजर आ रहा है।...पठार के दोनों तरफ की सीमा अस्पष्ट वाष्परेखा में विलीन हो रही है। पठार में धान नहीं है-कटाई पूरी हो चुकी है; धान के पौधों की बची ठूँठ ने मरणासन्न पठार के मलिन और नग्न सीने को जैसे ढक रखा है।...गाँव से आ रही गुड़ पगाने की मीठी खुशबू ने मानो कोहरे से भीगे वायु को दिवाना बना रही है।''[4] असम का लोक पर्व बिहू बैशाख महीने में पूरे रंगोल्लास के साथ मनाया जाता है। बिहू के समय प्रकृति का चित्रण उपन्यासकार ने मानवीकरण शैली में किया है- ''सात रंग का चादर ओढ़े गाँव की प्रकृति बहाग बिहू को आदरपूर्वक स्वागत करने के लिए उतावली है। पूरे साल धूप-बारिश में जर्जरित पेड़-लताएँ बिहू के आगमन की पदध्वनि सुनकर जी उठे हैं। इतने दिनों से न दिखने वाले कपौ फूल अचानक नए कपड़े व गहने पहनकर जवान युवती की तरह आर्कषण का केंद्र बने हैं। रातभर में सोनारु पेड़ में मानो किसी ने स्वर्णमनि पहना दिया है। नाहर के पेड़ से चिपके माधोय-मालती लताएँ लाल रंग से रंगीली हो गई हैं।''[5] यहाँ मरंगी और टोपाकुची ग्रामीण अंचलों की भौगोलिक सुंदरता को दिखाने के साथ ही उपन्यासकार ने गाँव की निम्न मध्यवित्त और शहरी मध्यवित्त समाज के जीवनबोध, नीति, आदर्श, समस्या आदि का भी चित्रण किया है।

असम के जनजातीय जीवन में विचित्रता दिखलाई पड़ती है; कलिता, आहोम, गोहाई, महंत से लेकर काटनी, लालुंग आदि विभिन्न जनगोष्ठी और जनसमष्टि से भरा है असमिया समाज। बीसवीं शती के तीसरे दशक से असम में एक नई समस्या उत्पन्न हुई। असम के कई सरकारी कर्मचारियों ने मैमनसिंघिया[6] लोगों को जमीन देकर अधिक धन कमाने का आसान रास्ता ढूँढ़ लिया था, परंतु इससे असम के विभिन्न जनजातियों के बीच जमीन की समस्या बढ़ने लगी- ''ब्रह्मपुत्र के कपिली उपत्यका के बीच रोहा अंचल है।...पहले बैशाख के महीने में ब्रह्मपुत्र का पानी इस पूरे अंचल को बहा ले जाता था।...बैशाख महीने का यह पानी खेत की जमीन को डुबोकर उसे उपजाऊ बना देती थी; सूखे पठार के रसभरे सीने में आहु-शाली के धान के पौधे लहलहाने लगते थे। लेकिन ब्रह्मपुत्र के दक्षिणी छोर पर मैमनसिंघिया लोगों द्वारा दखल करने के बाद नदी का पानी इस अंचल में आना बंद हो गया है।...ऊँचे सापोरी में मैमनसींघियों ने दखल कर लिया; फिर जैसे असमीया कृषकों को उड़द और सरसों की खेती के लिए भी जमीन नहीं बची।...इधर असम-बंगाल और सिलघाट, चापरमुख रेल लाइन ने कपिली-यमुना पार को रोक दिया; कपिली का पानी निकलने के लिए रास्ता न मिलने पर झाग से भरे पानी की लहरें प्रत्येक वर्ष इस अंचल के सारे गाँवों को अपने साथ बहा ले जाती हैं।''[7] इन अवैद्य बांग्लादेशियों के आने से जमीन के साथ ही आर्थिक समस्या भी उत्पन्न होने लगी है। इनके आ जाने से पिछले चार-पाँच सालों से खेती के लिए पानी की कमी भी होने लगी है। बैशाख महीने की पहली बारिश के साथ ही असम के कई ग्रामीण अंचलों में ब्रह्मपुत्र नद का पानी बाढ़ की विभीषिका बनकर आता है। बाढ़ के बाद असम के प्रत्येक घरों में मलेरिया, पेचिश, चेचक जैसी गंभीर बीमारियाँ पहुँचकर एक-दो जनों को सन्निपात ज्वर से आतंकित करती हैं। यहाँ प्रत्येक वर्ष बाढ़ का आना और भयंकर बीमारियों से अपने परिजनों को खोना ग्रामीण अंचलों में मानो सामान्य घटना बन चुकी है। 'जीवनर बाटत' उपन्यास में टोपाकुची गाँव में मलेरिया से पीड़ित ग्रामीण लोगों के दुख-दर्द का यथार्थ चित्रण किया गया है- ''आज तीन दिन से भेदोउ का बड़ा बेटा तेज बुखार से तड़प रहा है।...इधर विधवा फेसेउ का बड़ा बेटा सन्निपात ज्वर में गुजर गया। छोटे बेटे को भी उसी ज्वर ने जकड़ लिया। बड़े बेटे की मौत वन-औषधि खिलाने के कारण हुई थी। इसलिए इस बार फेसेउ वन-औषधि पर विश्वास न करके कंदर्प कविराज पर आश्रित है। कविराज ने दयावश दवाई की चार बोड़ी द्रव्य पदार्थ के साथ खिलाने को दिया है। पर द्रव्य पदार्थ जुगाड़ न कर पाने के कारण बेचारी सिर-माथा पीटकर हताश होकर अब बेटे की मृत्युमुखी देह के पास ही बैठी है।'[8] उपन्यास का रचना काल देश की स्वतंत्रता से पहले का है। यह समय देश में स्वाधीनता आंदोलन एवं उससे फैली सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक अस्थिरता का रहा। पूर्वोत्तर राज्य असम के असमीया समाज ने तत्कालीन आंदोलनों में बढ़-चढ़कर भाग लिया था। साथ ही महात्मा गाँधी के विचारों से प्रेरित होकर यहाँ के क्रांतिकारी नेताओं ने अफीम व्यापार पर भी रोक लगाई। असम में सर्वभारतीय आंदोलनों का प्रभाव उतनी ही तेजी से पड़ा था, जितना कि देश के अन्य राज्यों में पड़ा। विवेच्य उपन्यास में डॉ. बिरिंचि कुमार बरुवा ने धरनी के जरिए असम में फैले स्वाधीनता आंदोलन का यथातथ्य चित्रण किया है- ''ठीक इसी समय देश में असहयोग आंदोलन आरंभ हुआ। स्कूल-कॉलेज छोड़कर छात्र दलबद्ध होकर गाँव में सभा-समिति का आयोजन कर ग्रामीण प्रजा को सजग करने में लग गए। रात दिन 'वंदे मातरम्', 'महात्मा गाँधी की जय', 'भारत माता की जय' आदि नारों से पूरा गाँव-अंचल हिल गया। युगों से अचेतन अवस्था में पड़े गाँववासी उद्दीप्त मंत्रध्वनि सुनकर सजग हुए। चारों तरफ विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार तीव्र गति से होने लगा। अफीम की दुकानों में पिकेटिंग शुरू हो गया।''[9] प्राक् स्वाधीनता काल की यथार्थ परिस्थितियों का चित्रण करने के साथ ही उपन्यासकार ने गाँव में उच्च वर्ग, व्यापारियों तथा महाजनों द्वारा किए गए शोषण के निम्न स्तर को भी दिखाया है। असम के ग्रामीण अंचलों में लोगों का धार्मिक विश्वास काफी सुदृढ़ है। मृतशैय्या पर पड़े रोगी की आत्मा की सद्गति के लिए ग्रामीण कीर्तन

पाठ करते हैं। 'जीवनर बाटत' उपन्यास में धरनी की माँ आहिनी की मृत्यु से पूर्व सुनद अजामिल उपाख्यान का पाठ सुनाता है–

**''अनेक अधर्म करान्ते**
**विप्रर आयु भेइल समापत**
**भयंकर तिनि गोटा**
**यमदूत आगे भेइला उपगत''**[10]

धरनी और तगर की शादी हो जाने के बाद तगर को लेकर धरनी जब अपने गाँव-घर आता है, तब गाँव के छोटे बच्चे नई वधू को देखकर बिहू गीत गाकर छेड़ने लगते हैं–

**''हाथले कि नो साबा / हातिर ऊरे जेन**
**भरिर नो कि साबा गोट!**
**मुखले की साबा / दोला दापोन जेन**
**कोकालती बीनरे गोट।''**[11]

लोकोक्ति और नीति वचनों का प्रयोग ग्रामीण लोगों में प्राय: होता है। रंगिली बाई तगर को नीति वचन कहती है- ''आइ बोपाई बिसोरा नाई दोरा/मईनो पाउ कत पाभो जोड़ा?'' (अर्थात जब माँ-पिता ने शादी के लिए अभी तक सोचा नहीं है, तब खुद की शादी के सपने देखना व्यर्थ है।) आगे और एक नीति वचन है जहाँ जेतुकी तगर को चिढ़ाते हुए कहती है- ''सिया बरखुन, ली लीया जोंक/ कथा एरि कथा दिया उजनिया लोक''[12] (अर्थात जिस प्रकार हल्की बारिश में पतले जोंक का निकलना बेकार है, उसी तरह ऊपरी असम के लोगों की बातों पर विश्वास करना भी बेकार है।) गाँवों में छोटी-छोटी बातों पर एक-दूसरे को गाली-गलौज करना आम बात है। तगर द्वारा अपनी सास से बिना पूछे पाभोय को कपड़े देने पर आहिनी तगर को डाँटती है- ''ओ कुलक्षिणी तू यहाँ नग्न जगत को कपड़े पहनाने आई है; माँ को खा लिया, बाप को भी देशांतर कर दिया। अब यहाँ क्या अपने बाप के घर की चीजों का घमंड दिखाने आई है?''[13] वहीं आगे महाजन के घर से श्रीफल चुराने पर महाजन की पत्नी कमली को गंदी गंदी गालियाँ देती है-''हतश्री होगी, जहन्नुम में जाएगी, महामारी में मरेगी। हे प्रभु, कैसी डाकू लड़की है! मरतीर श्रीफल के लोभ में रात को भी नींद नहीं आती होगी? आधी रात को चोरनी ने आकर सारे श्रीफल चुरा लिए।''[14] असम के ग्रामीण अंचलों में किसी भी शुभ या मांगलिक काम अथवा अनुष्ठान के दौरान भाओना करने की परंपरा है। विवेच्य उपन्यास में मरंगी अंचल के तहसीलदार भोगदत्त की बेटी की शादी में भी गाँव के सारे नवयुवक मिलकर सगाई वाले दिन से लेकर शादी की रात तक भाओना करने की योजना बनाते हैं।

**निष्कर्ष :** उपन्यासकार ने तगर के जरिए असम के दोनों अंचलों (ऊपरी और निचला असम) के समाज में प्रचलित रीति-रिवाज, नीति-नियम, तौर-तरीके, परंपरा, लोक विश्वास आदि विशिष्टताओं को दिखाया है, जो असमीया लोक जीवन, समाज, संस्कृति का यथार्थ रूप प्रस्तुत करता है। असम के भीतरी ग्रामीण अंचल और वहाँ के जनजीवन की पृष्ठभूमि में रचे गए इस उपन्यास में उपन्यासकार ने असमीया समाज की रीति-नीति, रहन-सहन, खान-पान, लोक विश्वास, संस्कृति, परंपरा आदि को पूरी सच्चाई के साथ प्रस्तुत किया है। मरंगी नामक ग्रामीण अंचल पर केंद्रित इस कथानक में अंचल-जीवन के विविध आयामों का यथार्थ चित्रण हुआ है। अत: यह कहना गलत न होगा कि असमीया साहित्य के अंतर्गत 'जीवनर बाटत' उपन्यास आंचलिक उपन्यास के रूप में 'मील का पत्थर' साबित हुआ है; गाँव, देहात के मर्म को इतने सरस और भाव-प्रवण रूप से चित्रण असमीया साहित्य में इससे पहले कभी नहीं हुआ। ❑


**संदर्भ ग्रंथ:**

1. बरुवा, बीना (डॉ. बिरिंचि कुमार बरुवा), जीवनर बाटत, बीना लाईब्रेरी, गुवाहाटी, पंद्रहवाँ संस्करण 2015.
2. दास, अमलचंद्र, असमीया उपन्यास की परिक्रमा, बनलता, गुवाहाटी, संस्करण मई, 2012.
3. शर्मा, सत्येन्द्रनाथ (डॉ.), असमीया उपन्यास की भूमिका, सोमार प्रकाशन, गुवाहाटी, प्रथम संस्करण 1965.
4. ठाकुर, नगेन (डॉ.), सौ वर्ष के असमीया उपन्यास, ज्योति प्रकाशन, गुवाहाटी, दूसरा संस्करण जुलाई, 2012.
5. भराली, शैलेन (डॉ.), असमीया उपन्यास की गति-प्रकृति, साहित्य अकादेमी, तीसरा संस्करण 2017.

# देशी रियासतों के प्रति प्रशासनिक नीति एवं अभ्युदय पत्र

## (1920-30 अभ्युदय पत्र के विशेष संदर्भ में)

डॉ. आशा यादव

एसो. प्रो., विभागाध्यक्ष,
इतिहास विभाग
एम.एम. (पी.जी) कॉलेज
मोदीनगर-201204,
गाजियाबाद (उ.प्र.)
मो. 9897331182

भारत में एक ही काल अथवा सयम में प्रशासन के दो रूप थे- ब्रिटिश भारत का प्रशासन और भारत की देशी रियासतों का प्रशासन।[1] ब्रिटिश भारत में लोक प्रशासन के क्षेत्र में एकरूपता थी, समान न्याय व्यवस्था और समान संगठनात्मक संरचना थी।[2] कुछ राज्यों में प्रशासन का मध्यकालीन स्वरूप प्रचलित था तो कुछ में आधुनिक प्रशासन का सूत्रपात हो रहा था। इनमें से कुछ तो इतने छोटे थे कि उन राज्यों को जमींदारी कहना उचित होगा। सन 1857 के पूर्व भारत की ब्रिटिश कंपनी सरकार एवं भारतीय रजवाड़ों के संबंध समरूप नहीं थे। उनके संबंध उनके मध्य हुई संधियों पर निर्भर थे। वे स्वयं को भारत की ब्रिटिश कंपनी सरकार के समकक्ष मानते थे। कुछ अन्य राज्य भारत की ब्रिटिश सरकार के अधीन समझे जाते थे।[3] यह संबंध 1858 के पश्चात बदल गए। 1858 के अधिनियम और महारानी विक्टोरिया के घोषणा पत्र द्वारा एक ओर राजाओं को यह विश्वास दिलाया गया कि उन्हें अँग्रेजी राज्य में नहीं मिलाया जाएगा, दूसरी ओर वे ब्रिटिश शासन के अधीन माने गए। भारतीय राजाओं के ऊपर ब्रिटिश सरकार का आधिपत्य परमसत्ता के सिद्धांत पर आधारित था।[4] भारत में ब्रिटिश सरकार सर्वोपरि सत्ता बन जाने से अँग्रेजों ने भारतीय जनता के रोष के विरूद्ध देशी राजाओं को ऐसे तत्वों के रूप में खड़ा करना प्रारंभ किया, जिनकी सहायता से वे अपनी स्थिति की और अधिक सुदृढ़ कर सकें। परिणामस्वरूप भारतीय राजाओं के अधिकारों एवं स्थिति में अत्यधिक परिवर्तन हुए। भारतीय नरेश एवं उनकी रियासतें ब्रिटिश प्रांतों की भाँति ही ब्रिटिश साम्राज्य के लिए हित साधन की इकाई बन गई थी। उनसे विभिन्न उद्देश्यों को पूरा करने हेतु धन माँगा जाता।[5] न देने की स्थिति में कभी-कभी तो प्रशासन द्वारा नैतिकता के सभी मापदंडों को भी पार कर दिया जाता। उनके विरूद्ध अभियोग लगाए जाते, कमीशन बैठाया जाता और उन्हें अयोग्य करार दिया जाता।[6] विभिन्न उच्च पदों पर अँग्रेजों की नियुक्ति तो सामान्य बात थी। प्रशासन द्वारा नापसंदी

दिखाई जाने पर भारतीय के स्थान पर किसी अँग्रेज की नियुक्ति की व्यवस्था कर दी जाती। वास्तव में देशी राज्यों में अँग्रेजों की नियुक्ति अनुचित थी। जातीय विद्रोह से नहीं, अपितु प्रजा के हितों के कारण भी यह अनुचित ही था, क्योंकि अँग्रेज भारतीय रहन-सहन एवं प्रजा के जीवन से परिचित न थे। वे अपने ढंग से शासन चलाना चाहते थे। जिस प्रकार ब्रिटिश राज्य की प्रजा कष्ट भुगत रही थी, जिस कानून की रचना की जाती, उसके कारण ब्रिटिश राज्यों एवं देशी नरेशों की रियासतों में रहने वाली प्रजा का जीवन एक जैसा हो गया था।[7] उनके शासन प्रबंध में कोई अंतर न होने से भारतीय जनता त्रस्त हो गई थी। अत: जिम्मेदारी और प्रभुता के पदों पर अँग्रेजों को नियुक्त किया जाना इन राज्यों के लिए अत्यंत हानिकारक था। यह भी संभावना थी कि कहीं कोई अपने दृष्टिकोण, विचारों एवं संबंधों के वश देशी राज्यों को भारत सरकार के सचिवालय का एक नवीन विभाग न बना दे। इस प्रकार की नियुक्तियों से नरेश अपने रहे-सहे अधिकारों को भी खोते जा रहे थे।[8]

इन (इस तरह की) कार्यवाहियों से न केवल शोषण होता था, अपितु अनुभवी विद्वान एवं जनमानस से जुड़े भारतीयों का भी अपमान होता था। अत: स्पष्ट था कि अँग्रेजों की नियुक्ति कर सरकार प्रत्येक देशी नरेश को स्वर्ण-पिंजरे में बंद रखना चाहती थी, जिससे अवसर मिलते ही उन पर प्रभुत्व जमाया जा सकता और प्रशासन को और अधिक सुदृढ़ बनाया जा सकता।[9] भूतपूर्व अथवा विभिन्न आरोपों द्वारा अयोग्य करार दिए गए नरेशों के साथ तो अत्यंत ही निंदनीय व्यवहार किया जाता। उनकी उपाधियाँ छीन ली जातीं। उन्हें रियासतों से वंचित रखा जाता।[10] उनके परिवार वालों को भी परेशान किया जाता तथा उनके साथ अभद्र एवं अन्यायपूर्ण व्यवहार किया जाता।[11] जो एलाउंस सरकार की ओर से दिया जाता, उसकी रकम भी निश्चित न होती और अत्यंत घटाकर दी जाती। इस प्रकार नरेशों को अपमानित किया जाता। नरेशों द्वारा घटे हुए एलाउंस को स्वीकार न करने पर इसे बंद कर दिया जाता। इस प्रकार देशी नरेशों को आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक दृष्टि से असमर्थ सा पंगु बना दिया जाता।[12] ब्रिटिश सरकार को उनके आंतरिक मामलों में और प्रशासन में हस्तक्षेप करने के असीमित अधिकार प्राप्त हो गए। वे स्वतंत्र निर्णय नहीं ले सकते थे। सत्ता संबंधी झगड़ों को निपटारा भी सरकार के हस्तक्षेप द्वारा संभव होता था। कुप्रबंध अथवा विद्रोह होने पर राजा को हटाकर ब्रिटिश सरकार ही उसका उत्तराधिकारी नियुक्त करती थी।[13]

भारतीय राजाओं का अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि से कोई स्थान न रहा। वे अन्य देशों से भारत सरकार की इच्छा से विरूद्ध संबंध नहीं रख सकते थे। यहाँ तक कि उनको विदेश यात्रा तक की भी मनाही थी। केवल उन्हीं राजाओं को यह सुविधा दी गई थी, जो ब्रिटिश साम्राज्य के लिए आर्थिक स्रोत बने हुए थे। इस प्रकार प्रशासन उन्हें विदेश यात्रा कराता और इन राजाओं की प्रदर्शनी लगाकर अपने प्रभुत्व को दिखाता।[14] उन्हें सरकार समर्थक एवं प्रसन्न रखने के लिए उन्हें उनकी सेवाओं के बदले में आतिथ्य दिया जाता, उन्हें ब्रिटिश उपनिवेशों में भेजा जाता तथा उन्हें सार्वजनिक समारोह आदि में भी आमंत्रित किया जाता था।[15] उनकी हर प्रकार से मदद की जाती। यहाँ तक की राज्य बढ़ाने में भी।[16] इन राजाओं की रियासतों में अन्याय होने पर भी प्रशासन चुप्पी लगा जाता। सरकार के दुर्व्यवहार को देखकर कई नरेश भय से सही व गलत में अंत नहीं कर पाते थे।[19] इन सरकार समर्थक नरेशों के राज्यों में प्रजा की स्थिति दयनीय थी। इनकी प्रजा के 90 प्रतिशत लोग अनेक कष्ट सह रहे थे। राज्य के किसान अनेक मुसीबतों का सामना कर रहे थे।

लगान वसूली के नाम पर उनके घर लूटे जा रहे थे, जेवर माल आदि कुर्क किए जा रहे थे और जबर्दस्ती भूसा तक वसूल किया जा रहा था।[20] राज्य के नौकरों को बहुत कम वेतन दिया जाता, जिससे उनका भरण-पोषण ठीक से नहीं हो पाता था। उन्हें बेगार के लिए मजबूर किया जाता।[21] इन सबके अतिरिक्त दीवान, तहसीलदार आदि उन्हें परेशान करते। रकम वसूली[22] के समय दुर्व्यवहार करते और अपने अधिकारों का प्रयोग कर असहाय जनता को कष्टमय जीवन बिताने पर मजबूर कर देते और नरेश इन बातों से लापरवाह रहते। अपने ऐशो आराम और विलासितापूर्ण जीवन के कारण वे प्रजा के प्रति अपने कर्त्तव्यों को भी भूल गए थे। उनके

पास यह सब देखने सुनने का समय ही नहीं था।[23] यहाँ तक कि लिखने एवं बोलने की स्वतंत्रता तक लोगों को न थी। राज्य इन नरेशों की व्यक्तिगत संपत्ति हो गए थे। धन-वैभव का तड़क-भड़क के साथ प्रदर्शन करना और उसके लिए प्रजा के लूटना यही उनका मुख्य कार्य था।[24] ज्यादतियों से तंग प्रजा अन्य स्थानों पर जाने को मजबूर हो जाती, फिर भी नरेश किसी प्रकार का सुधार करने को तैयार न होते। राज्यों में अछूतों के लिए सार्वजनिक कुएँ, देवालय, और स्कूल बंद थे। वे सेना में भर्ती नहीं किए जाते थे। मुसलमान, ईसाई, आदि इनसे काम लेते और इनका धर्म परिवर्तन करने का प्रयत्न करते। नरेश इन सब बातों से अनजान बने रहते।[25] जनता के कष्ट उस राज्य में और बढ़ जाते, जहाँ शासक और बहुसंख्यक वर्ग एक ही धर्म का न होता। वहाँ सर्वप्रथम संप्रदायवाद को प्रमुखता दी जाती। हैदराबाद जैसे विशाल एवं मुसलमान राज्य में, जिसकी जनसंख्या कई लाख थी, मुसलमान शासक होने के कारण मुसलमानों को अनेक सुविधाएँ प्राप्त थीं। उनकी शिक्षा के लिए स्कूल-खोले गए, जिनमें हिंदी भाषा का प्रयोग वर्जित था। सभी उच्च पदों पर मुसलमान अधिकारी नियुक्त किए गए, जिन्होंने मनमाने ढंग से कर वसूल किए। मुसलमानों को प्रसन्न करने हेतु हिंदुओं को गाय का चित्र रखने की अनुमति न दी गई। उनको बोलने, लिखने, सभाएँ करने तथा संगठन आदि बनाने की स्वतंत्रता नहीं थी।[26] यही कारण था कि वहाँ के पीड़ित हिंदुओं द्वारा अपनी एक परिषद बनाकर ब्रिटिश सरकार से देशी राज्यों में प्रतिनिधि शासन की माँग की गई।[27] अन्य राज्यों की पीड़ित जनता द्वारा भी अन्याय एवं शोषण का प्रतिकार करने हेतु प्रयत्न हुए, अर्जी दी गई, किंतु दीवान इन अर्जियों को राजा तक पहुँचने ही नहीं देते।[28] प्रशासन का सहयोग न करने पर जनता को जेल में डाल दिया जाता और बिना मुकदमा चलाए ही सजा दे दी जाती।[29] अमानुषिक व्यवहार जान-माल की असुरक्षा तथा व्यवस्थापिका सभा के अभाव का विरोध त्रस्त जनता के द्वारा करने पर राजाओं द्वारा अँग्रेजी शासकों एवं सेना की सहायता से दबा दिया जाता और मानवता की हत्या कर दी जाती।[30]

प्राय: नरेश अपने को ब्रिटिश सरकार के प्रति भक्त और इंग्लैंड के बादशाह को मित्र मानते थे और ब्रिटिश भारत से अलग मानते थे।[31] इन जयचंदों के प्रति प्रेस नाराजगी प्रकट करती थी। इन नरेशों के पास धन था। चापलूसी, खुशामद करना, इनका मुख्य एवं प्राचीन व्यवसाय रहा था। इसके पूर्व भी कुछ नरेशों ने तो मुसलमान बादशाहों की चाकरी कर अपने राज्य स्थिर रखे थे। इस समय भी 1920-30 के मध्य कुछ नरेश अपनी इन्हीं दोनों युक्तियों से काम ले रहे थे। अनेक देशद्रोही पत्र खुलकर तो लोकमत के भय से उनका पक्ष समर्थन नहीं करते थे, किंतु उनके छोटे-छोटे सामाजिक सुधार आदि बातों को महत्व देते थे। उनकी थोथी सहानुभूति के गीत गाकर और कहीं-कहीं अपनेपन की दुहाई देकर जनता की आँखों में धूल झोंकना चाहते थे। कुछ देशी राज्यों की प्रजा के लिए काम करने वालों के विरूद्ध प्रचार करते थे।[32] कुछ नरेश मंत्रीपद की लालसा से सरकार का समर्थन करते थे।[33]

यद्यपि अधिकांश नरेश अपने अनुत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार से देश को हानि पहुँचा रहे थे, किंतु सभी राजा ऐसे न थे। कुछ नरेश ऐसे भी थे, जो न तो ब्रिटिश सरकार के अधीन रहना चाहते थे और न ही उससे सहयोग कर उसकी नीतियों के अनुसार काम करना चाहते थे। अपितु वे तो देश की आर्थिक स्थिति में सुदृढ़ सक्रिय योगदान दे रहे थे। कृषि में सुधार हेतु संस्थाओं की स्थापना करके किसानों को बीज, खाद आदि के विषय में शिक्षा दिलाने का प्रयत्न कर रहे थे। अछूतों के लिए शिक्षा का प्रबंध कर रहे थे। ऊँच-नीच के भेदभाव को समाप्त रकन का प्रयत्न कर रहे थे। राष्ट्रभाषा के उत्थान के लिए प्रयत्नशील थे। समय-समय पर वे जनता के करों को माफभी कर देते थे। योग्य व्यक्तियों को समय-समय पर उपाधियों से विभूषित करके उन्हें सम्मानित भी करते थे। प्रेस ने अन्य राजाओं को इसी प्रकार का अनुकरण करने को कहा।[34] साथ ही प्रेस का विश्वास था कि जो नरेश ब्रिटिश सरकार की अधीनता नहीं चाहते थे और स्वयं को सम्राट का मित्र बताते थे, ब्रिटिश सरकार उनकी आशाओं पर भी कुठाराघात कर रही थी, क्योंकि देशी राजाओं और ब्रिटिश सरकार के मध्य संबंधों की जाँच कराने के लिए एक कमेटी नियुक्त की गई थी।[35]

कमेटी की नियुक्ति कराने में जी-हजूर राजाओं ने योगदान दिया था तथा साथ ही कमेटी को पैसा दिया था। इसीलिए उसकी रिपोर्ट भी उन देशी नरेशों के विश्वास के प्रतिकूल रही थी।[36] कमेटी की रिपोर्ट केवल उच्चाधिकारियों से पूछताछ कर तैयार की गई थी, क्योंकि जनमत की उपेक्षा करके ही वह जनता पर मनमानी करने का पट्टा लिख सकती थी। यद्यपि रियासतों के संबंध में संधि अथवा समझौतों को जानना जनता के लिए अत्यंत आवश्यक था, क्योंकि इनसे होने वाले लाभ या हानि का प्रभाव उन पर ही पड़ता, तथापि सम्राट के प्रतिनिधि की हैसियत से वायसराय देशी नरेशों के संबंध में जनता की पुकार पर सभी मामलों में हस्तक्षेप कर सकता था। केवल उन महाराजाओं को छोड़कर जिनके संधि पत्र में कुछ ऐसी शर्तें थीं कि ब्रिटिश सरकार उनके राज्यों की भीतरी बातों में दखल नहीं देगी। वायसराय अन्य सभी नरेशों के घरेलू मामलों में दखल कर सकता था और राजा के अन्याय करने पर हस्तक्षेप भी कर सकता था। वायसराय के हस्तक्षेप का अर्थ था अधिकार खो देना। इस प्रकार बटलर कमेटी के द्वारा चौबे से छब्बे बनने की इच्छा रखने वाले नरेशों को दूबे भी नहीं रहने दिया गया। फलस्वरूप भारतीय नरेश स्वतंत्रता विरोधी और भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के समर्थक बने रहने के लिए विवश थे।[37] वे तो भारत के भावी शासन विधान के संबंध में गोल मेज कांफ्रेस होने की तथा देशी रियासतों के संबंध में महत्वपूर्ण फैसला होने की आस लगाए बैठे थे।[38]

भारतीय नरेशों की ब्रिटिश शासन के प्रति भक्ति तथा साम्राज्यवादियों के हाथों की कठपुतली बने रहने का 'अभ्युदय' जैसे राष्ट्रवादी पत्रों को दु:ख था। 'अभ्युदय' को विश्वास था भारत में ब्रिटिश शासन को प्राणवायु पहुँचाने वाले यही नरेश थे। यदि ये नरेश सरकार का साथ न देते, प्रशासन द्वारा दिए गए उत्सवों, समारोह आदि के लालच में न आते तो उनकी और भारतीयों की स्थिति इतनी दयनीय न होती।[39] चूँकि भारतवासियों की स्वराज्य की माँग का विरोध करने के लिए और भारतवासियों को निकम्मा एवं अपमानित करने के लिए अधिकारियों को इन राजा-महाराजाओं का सहयोग प्राप्त था, देशी नरेश उन्हीं अधिकारियों को खुश करने के लिए जन विरोधी कार्य करने को तैयार रहते थे।[40] दूसरी आवश्यकता इस बात की थी कि वे कांग्रेस से बात कर अपनी स्थिति को सुदृढ़ करते और प्रजा को अत्याचारों से मुक्ति देते।[41]

अत: प्रेस का सुझाव था कि बदली हुई परिस्थितियों से देशी नरेशों को भी अपनी रियासतों मे सुधार करना आवश्यक था। इसक लिए नरेशों को अपनी प्रजा को मूल अधिकार देने की घोषणा करनी चाहिए थी, बेगार की प्रथा उठा देनी चाहिए थी और शासन तथा न्याय विभाग अलग-अलग कर दिए जाने चाहिए थे। राज्यों में व्यवस्थापिका सभाएँ स्थापित की जानी चाहिए थीं, जिनके अध्यक्ष स्वयं शासक रहते।

प्रजा द्वारा चुनी गई कौंसिल को आय-व्यय पर अधिकार आवश्यक था, जो राजाओं की फिजूलखर्ची को भी रोकती। इससे राज्य की आय तो बढ़ती ही, प्रजा के कष्ट भी कम हो जाते। नरेशों की मनमानी पर अंकुश लगता। विधि के अनुसार शासन करने, जनता की पसीने की कमाई को विलास पर खर्च न करने पर ही ब्रिटिश सरकार की अनुचित बातों को उचित न कहना पड़ता और न ही किसी की दया पर निर्भर रहना पड़ता। ऐसा होने पर ही स्वतंत्र भारत में उनके अधिकार सुरक्षित रह सकते थे।[42] ❑

---

**संदर्भ ग्रंथ सूची :**


1. लगभग 562 देशी रियासतें थीं, जिनमें 286 गुजरात के काहियावाड़ राज्य के अंतर्गत थीं। हैदराबाद सबसे बड़ी रियासत थी। -कुलकर्णी, वी0वी0, प्रिंसली इण्डिया एण्ड लैप्स ऑफब्रिटिश पैरामाउन्टसी, पृष्ठ 82
2. दरड़ा, रणजीत सिंह, भारतीय लोक प्रशासन, पृष्ठ 55

एडवर्डस, माइकेल, दि लास्ट ईयरस ऑफदि ब्रिटिश इण्डिया, पृष्ठ 29, 30

1. परमसत्ता क सिद्धान्त का 1876 ई. के एक्ट में स्पष्ट किया गया, जिसके द्वारा भारतीय नरेशों का भारत की रक्षा के लिए

अपनी सेना भेजने को भी बाध्य किया जा सकता था।

–पूर्वोक्त, पृष्ठ – 30

2. नेहरू, जवाहर लाल, हिन्दुस्तान की कहानी, पृष्ठ 425

सरकार द्वारा महाराजा बलरामपुर की मृत्यु के पश्चात् नय राजा से, जोकि नाबालिग थे, सर हाइकोर्ट बटलर की मूर्ति के लिए 50,000 रूपये माँगे गये, यद्यपि पूर्व महाराज के साथ इस प्रकार के अनुबंध की कोई सूचना न थी।

–अभ्युदय, 2 दिसम्बर 1922, पृष्ठ–2, कॉलम–5

3. महाराजा इंदौर पर मुमताज बेगम को भगा ले जाने का आरोप लगाया गया।

–अभ्युदय, 6 फरवरी 1926, पृष्ठ–2, कॉलम–5

4. इंदौर, नाभा एव पटियाला के नरेशों के संबंध में जाँच कराने हेतु सरकार द्वारा कमीशन बैठाया गया। इससे स्पष्ट था कि वे स्वतंत्र शासक नहीं थे। पत्र का मानना था कि नरेशों को अपने न्यायालय बनवाने चाहिए थे जिससे अँग्रेजी सरकार उनको इस तरह अपमानित नहीं कर पाती।

–अभ्युदय, 6 फरवरी 1926, पृष्ठ–2, कॉलम–5

–टॉमसन, एडवर्ड, पृष्ठ–637

5. नाभा नरेश पर राजद्रोह का अभियोग लगाया गया और अयोग्य करार कर मद्रास भेज दिया गया।

–अभ्युदय, 4 मार्च 1928, पृष्ठ–5, कॉलम–1

–अभ्युदय, 21 अप्रैल 1928, पृष्ठ–2, कॉलम–4, 5

6. 1. अभ्युदय, 12 जून 1920, पृष्ठ–5, कॉलम–1

2. अभ्युदय, 9 अप्रैल 1921, पृष्ठ–4, कॉलम–1

3. बड़ौदा राज्य के मंत्री सर मनुभाई द्वारा अस्वस्थ्यता के कारण इस्तीफा देने पर मि. सेडन की नियुक्ति की व्यवस्था की गई जिसका 'नेशन' पत्र ने भी विरोध किया।

– अभ्युदय, 22 जनवरी 1927, पृष्ठ–4, कॉलम–4

7. 1. भरतपुर स्टेट में वाइसराय द्वारा मि. डी.जी. मैकेन्जी नामक सिविलयन अँग्रेज दीवान की नियुक्ति की गई। नियुक्ति के पश्चात् राज्य में अनेक परिवर्तन हुए–राज्य क चार सदस्य निर्वाचित किए गए। मंदिर, जागीरें जब्त की गईं। 'भारतवीर' नामक समाचार पत्र जब्त कर लिया गया। अजायबघर के अनेक जानवर नीलाम कर दिए गए। जिन अधिकारियों को राजा का विरोधी समझकर निकाल दिया गया था उनकी पुनः भर्ती की गई। शासन समिति का निर्वाचन स्थगित कर प्रजा से राजनैतिक अधिकार छीन लिए गए।

– अभ्युदय, 26 मई 1928, पृष्ठ–6, कॉलम–2, 3

2. अभ्युदय, 14 जुलाई 1928, पृष्ठ–1 कॉलम–2

3. अभ्युदय, 15 सितम्बर 1928, पृष्ठ–1 कॉलम–2

4. नेहरू, जवाहर लाल, पृष्ठ–424

8. अभ्युदय, 22 जनवरी 1927, पृष्ठ–4, कॉलम–2

9. नाभा के महाराजा की उपाधियाँ और रियासतें छीन ली गईं।

–अभ्युदय, 4 मार्च 1928, पृष्ठ–5, कॉलम–1, 2

10. नाभा क भूतपूर्व महाराजा को गिरफ्तारी के पश्चात महारानी के साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार किया गया।

–अभ्युदय, 25 फरवरी 1928, पृष्ठ–1, कॉलम–1

11. नाभा राज्य से मिलने वाला भत्ता 25,000 से 10,000 रूपये कर दिया गया।

–अभ्युदय, 4 मार्च 1928, पृष्ठ–5, कॉलम–2

नाभा नरेश को 10,000 रूपये भत्ता राज्य से मिलना निश्चित हुआ था किंतु सरकार द्वारा उसे घटाकर 8,000 रुपए कर दिया गया जिसे उन्होंने अपमान समझा और त्याग दिया।

–अभ्युदय, 21 जुलाई 1928, पृष्ठ–1, कॉलम–3

12. 1. 27 मार्च 1926 में लॉर्ड रीडिंग ने हैदराबाद के निजाम का लिखे पत्र में स्पष्ट कर दिया था कि ब्रिटिश प्रभुत्व राजाओं के साथ की गई संधि पर आधारित नहीं है। राजाओं के आपसी मामलों में अथवा एक राज्य में हुए झगड़ों के मामलों के लिए राजा बाध्य होंगे। उनका मानना था कि उन्हें राज्यों के अंदरूनी मामलों में भी दखल देने का अधिकार है।

2. दि ब्रिटिश क्राउन एण्ड द इण्डियन स्टेटस, पृष्ठ–97

3. एडवर्ड, माइकेल, द लास्ट ईयरस ऑफद ब्रिटिश इण्डिया, पृष्ठ–30

13. महाराजा पटियाला को जेनेवा कांफ्रेस में भेजा गया।

– अभ्युदय, 17 जुलाई 1926, पृष्ठ–5, कॉलम–4

14. महाराजा अलवर को विदेश यात्रा के अवसर पर उच्च प्रतिनिधियों से मिलने का, प्रिंस ऑफ वेल्स के प्रीतिभोज में शामिल होने का तथा अनेक प्रतिष्ठित व्यक्तियों से मिलने का अवसर किया गया।

– अभ्युदय, 17 अगस्त 1929, पृष्ठ–1, कॉलम–5

15. सरकार द्वारा निजाम का बरार पर अधिकार करने का आश्वासन दिया गया।

1. अभ्युदय, 7 अप्रैल 1926, पृष्ठ–1, कॉलम–5

2. भटनागर, रामरतन, पृष्ठ–386

16. महाराजा अलवर को सरकार द्वारा सहयोग दिया गया यद्यपि वह जनता में बदनाम थे।

1. अभ्युदय, 20 जून 1925, पृष्ठ–5, कॉलम–3

2. अभ्युदय, 6 फरवरी 1926, पृष्ठ–2, कॉलम–3

3. अभ्युदय, 11 अगस्त 1929, पृष्ठ–2, कॉलम–5

17. नाभा महाराजा क प्रति जनता को कोई शिकायत नहीं थी तथापि अर्ल–विन्टरटर्न द्वारा प्रजा के खुश न होने की बात कही गई।

– अभ्युदय, 21 अप्रैल 1928, पृष्ठ–2, कॉलम–4, 5

18. महाराजा साहब मनकपुर ने जनरल डायर की नादिरशाही पक्ष का समर्थन किया।

– अभ्युदय, 3 जुलाई 1920, पृष्ठ–1, कॉलम–3

19. 1. अभ्युदय, 12 जून 1920, पृष्ठ–5, कॉलम–1

2. अभ्युदय, 28 जनवरी 1928, पृष्ठ–4, कॉलम–2

3. अभ्युदय, 4 अगस्त 1928, पृष्ठ–6, कॉलम–1

20. अभ्युदय, 21 जुलाई 1928, पृष्ठ–6, कॉलम–3

21. 1. अभ्युदय, 13 फरवरी 1926, पृष्ठ–4, कॉलम–3

2. अभ्युदय, 9 जुलाई 1927, पृष्ठ–1, कॉलम–4

22. 1. अभ्युदय, 12 जून 1920, पृष्ठ–5, कॉलम–1

2. अभ्युदय, 10 जुलाई 1920, पृष्ठ–5, कॉलम–4

3. अभ्युदय, 17 जुलाई 1920, पृष्ठ–5, कॉलम–3

4. अभ्युदय, 29 अगस्त 1925, पृष्ठ-4, कॉलम-5

5. अभ्युदय, 9 जुलाई 1927, पृष्ठ-1, कॉलम-4

6. अभ्युदय, 1 मार्च 1930, पृष्ठ-1, कॉलम-3

23. अभ्युदय, 12 जून 1920, पृष्ठ-5, कॉलम-1

24. अभ्युदय, 29 अगस्त 1925, पृष्ठ-4, कॉलम-5

25. 1. अभ्युदय, 4 अप्रैल 1925, पृष्ठ-2, कॉलम-1

2. अभ्युदय, 14 अगस्त 1926, पृष्ठ-1, कॉलम-5

3. अभ्युदय, 14 मई 1926, पृष्ठ-1, कॉलम-4

4. अभ्युदय, 4 दिसम्बर 1926, पृष्ठ-2, कॉलम-5

26. 1. पूर्वोक्त, कॉलम-3

2. हैदराबाद रियासत के हिंदुओं की एक सभा बम्बई में हुई, जिसमें हिन्दुओं के साथ हो रहे अन्याय को स्पष्ट किया गया तथा सरकार से कमीशन की नियुक्ति की माँगकर निजाम से राज्य की त्रस्त जनता को छुटकारा दिलाने की बात कही गई।

- अभ्युदय, 11 दिसम्बर 1926, पृष्ठ-3, कॉलम-3

27. 1. अभ्युदय, 17 जुलाई 1920, पृष्ठ-3, कॉलम-3

2. अभ्युदय, 12 जून 1920, पृष्ठ-5, कॉलम-1, 2

3. अभ्युदय, 10 जुलाई 1920, पृष्ठ-1, कॉलम-4

4. अभ्युदय, 28 जनवरी 1922, पृष्ठ-4, कॉलम-2

28. 1. अभ्युदय, 18 मई 1929, पृष्ठ-1, कॉलम-3

(खैरपुर रियासत-सिंध प्रांत)

2. अभ्युदय, 2 जून 1929, पृष्ठ-4, कॉलम-1

29. 1. अभ्युदय, 10 जुलाई 1920, पृष्ठ-1, कॉलम-4

(नरसिंह रियासत-मध्यभारत)

2. अभ्युदय, 29 अगस्त 1925, पृष्ठ-4, कॉलम-5

3. अभ्युदय, 2 जून 1929, पृष्ठ-4, कॉलम-1, 2

30. 1. महाराजा पटियाला आदि

- अभ्युदय, 29 सितम्बर 1928, पृष्ठ-1, कॉलम-2

2. यद्यपि वाइसराय रीडिंग द्वारा स्पष्ट कर दिया गया था कि नरेशों के ब्रिटिश सरकार से संबंध संधियों पर आधारित नहीं है।

- 'दि ब्रिटिश क्राउन एण्ड दि इण्डियन स्टेट्स, पृष्ठ-9

- मजूमदार आर.सी., स्ट्रगल फार फ्रीडम (हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफदि इंडियन पिपुल, 2005-11)

31. अभ्युदय, 9 जून 1928, पृष्ठ-10, कॉलम-1

32. 1. राजा कृपाल सिंह, कुंवर सुरेन्द्र प्रताप सिंह, नवाब मोहम्मद युसूफ राजा जगन्नाथ बख्स सिंह, महाराज कुमार मंजीत सिंह, इन्होंने साइमन कमीशन से भी सहयोग लिया।

2. युक्त प्रांतीय सरकार में तो राजाओं के होने से नवाबशाही हो गई थी। उन्होंने मंत्री पद के लालच में साइमन कमीशन से सहयोग किया।

– अभ्युदय, 16 जून 1928, पृष्ठ–1, 2, कॉलम–2, 5

33. 1. महाराजा मैसूर, अभ्युदय, 20 फ़रवरी 1926, पृष्ठ–2, कॉलम–5

– अभ्युदय, 11 दिसम्बर 1926, पृष्ठ–1, कॉलम–3

2. महाराजा बड़हर, अभ्युदय, 23 जनवरी 1926, पृष्ठ–6, कॉलम–3

3. कश्मीर नरेश, अभ्युदय, 3 जुलाई 1926, पृष्ठ–2, कॉलम–3

4. अभ्युदय द्वारा बड़ौदा राज्य को एक आदर्श राज्य कहा गया–नरेश महाराजा त्याजीराव गायकवाड़ थे।

– अभ्युदय, 13 अगस्त 1927, पृष्ठ–2, कॉलम–2

34. बड़ौदा, हैदराबाद, पटियाला आदि नरेशों द्वारा इंग्लैंड के सम्राट के साथ संबंध रखने की घोषणा करने पर देशी नरेशों एवं ब्रिटिश सरकार के मध्य संबंधों की जाँच की आवश्यकता हुई जो 'बटलर कमेटी' के नाम से जानी गई। इस कमीशन के देशी रियासतों की सीमा एवं चुंगी संबंधी बातों की जाँच भी की।

– अभ्युदय, 3 नवम्बर 1928, पृष्ठ–2, कॉलम–3

35. 1. अभ्युदय, 4 मार्च 1928, पृष्ठ–2, कॉलम–3

2. महाराजा पटियाला ने तो लंदन से कई भारतीय नरेशों के पास–तार भेजकर 15 लाख रुपए मँगवाये जिससे बटलर कमेटी एव सर लेलजी स्काट की फीस चुकाई जा सकती थी।

– अभ्युदय, 3 नवम्बर 1928, पृष्ठ–2, कॉलम–5

3. अभ्युदय, 3 नवम्बर 1928, पृष्ठ–2, कॉलम–3

4. भटनागर, रामरतन पृष्ठ–390

36. 1. अभ्युदय, 3 नवम्बर 1928, पृष्ठ–2, कॉलम–3

2. अभ्युदय, 12 मई 1928, पृष्ठ–2, कॉलम–4

3. अभ्युदय, 4 मार्च 1928, पृष्ठ–2, कॉलम–2, 3

4. मजूमदार, आर.सी., पृष्ठ–807

37. 1. अभ्युदय, 17 अगस्त 1929, पृष्ठ–2, कॉलम–5

2. अभ्युदय, 23 जून 1928, पृष्ठ–3, कॉलम–2

3. अभ्युदय, 29 सितम्बर 1928, पृष्ठ–1, कॉलम–2

38. महाराजा 'वर्दमान' के विषय में तो 'मार्निंग पोस्ट' समाचार पत्र ने तो यहाँ तक लिख दिया था कि यदि महाराजा वर्दमान कॉमन सभा में ना चुने जा सकें, तो उन्हें लॉर्ड बनाकर, लॉर्ड सभा का सदस्य बना दिया जाये।

युक्त प्रांत के मंत्री नवाब युसूफतो यहाँ तक मानते थे कि म्युनिसपैलटियों के चुनाव का सारा कार्य भी क्लेक्टर को दे दिया जाना चाहिए।

39. 1. अभ्युदय, 11 जून 1927, पृष्ठ–2, कॉलम–1, 2

2. अभ्युदय, 2 जून 1929, पृष्ठ–4, कॉलम–1

3. अभ्युदय, 12 जून 1920, पृष्ठ–5, कॉलम–1, 2

4. अभ्युदय, 11 जून 1927, पृष्ठ–2, कॉलम–7,

# खेराई : पूर्वोत्तर भारत का बोड़ो लोकोत्सव

**तैयबुन नेशा**

शोध प्रज्ञा, हिंदी विभाग,
गौहाटी विश्वविद्यालय
गुवाहाटी-14, (असम)
मो. 6001237650

**शोध-सार :**

भारतवर्ष अपनी विविधताओं के साथ विश्व का एक प्रमुख शक्तिशाली गणराज्य है। भाषाई विविधता, क्षेत्रीय विविधता, प्राकृतिक विविधता एवं सांस्कृतिक विविधता आदि अनेक विविधताओं के साथ यह देश बहुविध, जातियों, धर्मों तथा उपजातियों की पुण्यभूमि रहा है ।'महामानव समुद्र' की इसी भूमि के कई प्रांत पूर्वोत्तर भारत को सुशोभित किए हैं। ये हैं- असम, अरुणाचल प्रदेश, नगालैंड, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, त्रिपुरा और सिक्किम। प्राकृतिक संपदाओं से परिपूर्ण पूर्वोत्तर भारत अत्यंत प्राचीन काल से ही नेग्रिटो, ऑस्ट्रिक, किरात-मंगोल, द्रविड़, आर्य आदि सभी जाति एवं प्रजातियों का संगम भूमि रहा है। समाज-इतिहास, भाषा-साहित्य, कला-संस्कृति, रीति-नीति, पर्व-त्योहार, चिंतन विश्वास, आस्था के साथ लगभग ढाई सौ जातियाँ एवं उपजातियाँ अपने-अपने धार्मिक लोकोत्सव हर्षोल्लास के साथ मिल-जुलकर मनाते आए हैं, जिनमें बोड़ो जनजाति की अपनी विशिष्ट पहचान है ।

**बीज शब्द :** खेराई लोकोत्सव, समाज-जीवन, परंपरा, भावात्मकता ।

**1. प्रस्तावना :**

किसी समाज में गहराई तक व्याप्त गुणों के समग्र स्वरूप का नाम है संस्कृति, जो उस समाज के सोचने, विचारने, कार्य करने के स्वरूप में अंतर्निहित होती है । स्वभावत: मनुष्य प्रगतिशील प्राणी है, बुद्धिजीवी होने के कारण यह बुद्धि के प्रयोग से अपने चारों ओर प्राकृतिक परिस्थितियों में निरंतर परिवर्तन लाने एवं उन्नत बनाने की कोशिश करता रहता है। इसका परिणाम यह होता है कि मनुष्य केवल भौतिक परिस्थतियों में सुधार करके ही संतुष्ट नहीं हो जाता, क्योंकि ऐसा करके उसे भौतिक सुख की प्राप्ति तो हो जाती है, किंतु मन एवं आत्मा अतृप्ति ही बनी रहती है । इसकी संतुष्टि में मनुष्य अपना जो विकास और उन्नति करता है, उसे संस्कृति का दर्जा दिया जाता है । मनुष्य की जिज्ञासा का परिणाम धर्म एवं दर्शन तो होते ही हैं, साथ ही इसके सौंदर्य की तलाश में संगीत, साहित्य, मूर्ति, चित्र आदि अनेक कलाओं को उन्नत करने में विशेष योगदान देता है, जिसमें प्रधानत: धर्म,

दर्शन संबंधी प्रत्येक ज्ञान-विज्ञान और कलाओं का समावेश होता है । दरअसल, कोई भी देश अपनी सांस्कृतिक धरोहर से ही महान बनता है। पूर्वोत्तर भारत को सांस्कृतिक संगम भूमि माना जाता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो सांस्कृतिक वैविध्य और भाषाई वैविध्य होने के बावजूद पूर्वोत्तर भारत का लोक सांस्कृतिक स्वरूप अद्भुत है। जाने कितनी आपदाओं को झेलते हुए यहाँ के लोक मानस ने अपनी बोलियों, भाषाओं, साहित्य एवं संस्कृति का परिचय दिया है, वह अत्यंत महत्वपूर्ण एवं अवलोकनीय है ।

संवैधानिक दृष्टि से देखा जाए तो पूर्वोत्तर भारत में कई भाषाओं का प्रयोग होता है । जैसे असम में असमीया, नेपाली तथा जनजातीय भाषा बोड़ो आदि। पूर्वोत्तर भारत के आठों राज्यों की संस्कृति के निर्माण में यहाँ की प्राकृतिक संपदा तथा मनोरम प्राकृतिक सौंदर्य की अहम भूमिका को अनदेखा नहीं किया जा सकता। मनुष्य का प्रकृति के साथ सर्वाधिक एवं सर्वप्राचीन संबंध रहा है । यह कहने की आवश्यकता नहीं कि दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं । प्रकृति मानव को अनेक ज्ञान के प्रति आकर्षित करती है, जिसमें पतझड़ का मतलब पेड़ का अंत होना नहीं होता। प्रकृति के इस तथ्य को जिस व्यक्ति ने स्वीकार किया है, उसने अपने मार्ग से विचलित हुए बगैर नए सिरे से सफलता पाने की कोशिश की है, जिसमें सफलता के साथ -साथ अनेक नए ज्ञान से रू-ब-रू होने का अवसर प्राप्त हुआ है । दरअसल, प्रकृति की सतरंगी चूनर ने मानव मन को लुभाया है तो कभी विशाल पर्वतों एवं दुर्गम जंगलों ने मानव मन को विस्मित भी किया है । इसका उल्लेख भारतीय पुराणों में भी देखा जा सकता है । सृष्टिकर्ता ब्रह्म प्रकृति के रहस्यमय पुष्प कमल से उत्पन्न हुए थे तथा भारतीय संस्कृति के रक्षक ऋषि-मुनियों ने भी वनों और पर्वतों में ही अपना जीवन बिताया। आधुनिक युग तक आते-आते प्रकृति ने अपने सौंदर्य, सुषमा तथा यौवन के साथ काव्य क्षेत्र में अपनी-अलग पहचान बनाई ।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि प्रकृति ने हमेशा से ही मनुष्य की सहचरी की भूमिका निभाई है ।

दैनिक जीवन के लिए उपलब्ध तमाम संसाधनों को प्रकृति पूरा करती है। प्रकृति की इस मनोहर एवं मादक दशा ने मनुष्य को मुग्ध किया है, तो कभी माँ एवं सहचरी की भाँति मार्गदर्शन भी कराया है। प्रकृति के पास कुछ ऐसी परिवर्तनशील शक्तियाँ संचित रहती हैं, जो मानव स्वभाव को उसके अनुसार बदलती हैं। नदियाँ, झरने, फूल, पर्वत एवं विभिन्न पेड़-पौधे पूर्वोत्तर भारत के निवासियों की आत्मा में निवास तो करते ही हैं, साथ ही इस खूबसूरत प्रकृति और सहज शांत वातावरण ने उपहार में नृत्य, संगीत, कला और सौंदर्यानुभूति की दृष्टि दी है। उत्सवप्रिय यहाँ का समाज गंधर्व जाति का प्रतिनिधित्व करता है । मूलत: किसी जाति की सभ्यता, संस्कृति, आचार-व्यवहार, रहन-सहन बसने की परंपरा इत्यादि की दृष्टि से देखा जाए तो यह क्षेत्र इतना वैविध्यपूर्ण है कि इसे भारत की सांस्कृतिक प्रयोगशाला का नाम देना अनुचित नहीं होगा ।

**2. विश्लेषण :**

सुदीर्घ काल से ही पूर्वोत्तर भारत सभी मानव जाति-प्रजातियों की सांस्कृतिक देन के लिए आकर्षण का केंद्र बना हुआ है। मूलत: इस भू-भाग पर कई मनभावन पर्व-त्योहार एवं उत्सव मनाए जाते हैं, जिनमें इनकी अपनी संगीत और नृत्य की शैलियाँ भी विकसित हुईं। साथ ही पूर्वोत्तर की भिविन्न जनजातियों में समन्वय की भावना जगाने के लिए तथा उनकी धार्मिक मान्यताओं, प्राचीन संस्कृति, भाषा, साहित्य, सामाजिक नियमों और अपनी वेशभूषा के प्रति अनुराग को बनाए रखने के लिए पूर्वोत्तर भारत की भिविन्न जनजातियों की अपनी अलग-अलग लोक परंपराएँ, लोक देवी-देवता, विभिन्न अनुष्ठान एवं भिविन्न पर्व-त्योहार और लोक उत्सव हैं, जो उनके साहित्य एवं लोक संस्कृति का आधार हैं। ये सभी जनजातियाँ अपनी भाषा, अपने खान-पान, रीति-रिवाज एवं धार्मिक मान्यताओं से अत्यधिक प्रेम करती हैं। पारंपरिक पर्व, उत्सव, नृत्य, संगीत एवं खेलकूद ने सभी समुदायों में चेतना का भाव जागृत कर अपने मूल्यों एवं आस्था को सँजोए हुए है, जिनमें असम के सामाजिक सांस्कृतिक भंडार को सुशोभित करने वाला बोड़ो जन संप्रदाय का महत्वपूर्ण लोक उत्सव है 'खेराई'। लंबे समय से असम में असमिया जन समाज के सान्निध्य में रहने के बावजूद सामाजिक जीवन के हरेक क्षेत्र, अपने घरेलू परिवेश में निजी भाषा, बोल-चाल, रहन-सहन, खान-पान में भी अलग वैशिष्ट्य रखने वाला बोड़ो जन संप्रदाय यह उत्सव सामूहिक तथा व्यक्तिगत रूप में भी बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाता है। खेराई लोकोत्सव में दौदिनी नृत्य की भूमिका बड़ी ही रोचक एवं महत्वपूर्ण होती है। इस नृत्य प्रदर्शन की विशेषता यह है कि भगवन को समर्पित इस नृत्य उन्हें आशीर्वाद का सौभाग्य प्राप्त करता है। ये आत्मविश्वास इस जन समुदाय के निवासियों की आत्मा में विद्यमान है । बोड़ो समाज में प्रचलित इस प्रकार का उत्सव एक ओर सांकृतिक रूप से जनगण के हृदय में निहित आवेग एवं अनुभूतियों को व्यक्त करता है तो दूसरी ओर सामाजिक अभिव्यक्ति और भावनात्मक प्रेम एवं भाईचारा का संदेश भी देता है।

**2.1 जनजाति के रूप में बोड़ो संप्रदाय :**

पूर्वोत्तर की विभिन्न जनजातियों की तरह बोड़ो जनजाति की भी अपनी अलग-अलग लोक परंपराएँ, लोक देवी-देवता, विभिन्न अनुष्ठान एवं विभिन्न पर्व-त्योहार एवं उत्सव हैं, जो उनके साहित्य एवं लोक संस्कृति का आधार हैं । ये जनजातियाँ भले ही हिंदी और अँग्रेजी सीखने लगी हों, लेकिन उन्हें अपनी भाषा, अपने खान-पान, रीति-रिवाज एवं धार्मिक मान्यताओं से अत्यधिक प्रेम है। पारंपरिक पर्व एवं उत्सव सभी समुदायों में चेतना का भाव जागृत कर अपने मूल्य, आस्था, वाचिक लोक साहित्य तथा अपनी-अपनी मातृबोलियों को सँजोए रखने में महत्वपूर्ण है, जो कि पूर्वोत्तर भारत के बोड़ो संप्रदाय की सांस्कृतिक गरिमा को प्रदर्शित तो करते ही हैं, साथ ही भाषा, बोली, वेश-भूषा, पर्व-त्योहार, रहन-सहन, सोच-विचार आदि एक ओर पूर्वोत्तर भारत की बोड़ो मिश्रित संस्कृति का रूप प्रस्तुत करते हैं तो दूसरी ओर भावात्मक एकता का भी संदेश देते हैं। शायद यही कारण है कि आज इस विशाल संसार में बोड़ो संप्रदाय अपना परिचय देते हुए सक्षम महसूस करते हैं । उनकी यह भावना धार्मिक मान्यताओं, प्राचीन संस्कृति, भाषा, साहित्य, सामाजिक नियमों और

**अनेक आपदाओं को झेलते हुए यहाँ के लोक मानस ने अपनी बोलियों, भाषाओं, साहित्य एवं संस्कृति को बचाने के लिए अपनी आत्मशक्ति का जो परिचय दिया है, उसमें बोड़ो जनजाति का 'रवेराई उत्सव' अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं अवलोकनीय है।**

अपनी वेशभूषा के प्रति अनुराग को बनाए रखने के लिए तत्पर है।

**2.2 खेराई लोकोत्सव का महत्व :**

अवलोकनीय बात यह है कि भारत में अनेक राज्य हैं और ये राज्य अपने-अपने पर्व, त्योहार एवं संस्कृति के लिए विख्यात हैं। मूल रूप से देखा जाए तो कुछ त्योहार ऐसे भी हैं, जो संपूर्ण भारत में बड़े उत्साह एवं उमंग के साथ मनाए जाते हैं, जिनमें प्रमुख हैं- होली, दीपावली एवं दुर्गा पूजा। परंतु कुछ त्योहार ऐसे भी हैं, जो अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग समय में मनाए जाते हैं, जिसमें असम का बिहू, दक्षिण भारत में पोंगल तो पंजाब में वैशाखी इत्यादि। लोक त्योहार या लोक उत्सवों की दृष्टि से मेघालय में नंक्रेम, रंग्चुगाला, वांगाला और सद्सुक-खलाम प्रसिद्ध हैं। मिजोरम में पलकूट, मीमकूट और चपचार कूट मनाते हैं । मणिपुरी लोकोत्सवों के नाम हैं- लाई-हराओबा, रासलीला, झूलन-यात्रा, तथा चैरायोबा। नागालैंड में सांगतम, फोम, कोन्याक, आओ, अंगामी, सेमा, लोथा, चाखेसाङरेंगमा और कुकी समुदाय में मध्य मोत्सु, सुक्रेमंग, सीक्रेनी, नगोबी, थेकरानी तुलुनी आदि पर्व आयोजित होते हैं। इसी प्रकार त्रिपुरा में उनकोतिमेला और अरुणाचल प्रदेश में न्योकुम, सोलुंग, मोपीन आदि कई पर्व बड़े आनंद, उत्साह एवं भाईचारे के साथ मनाए जाते हैं। ठीक इसी प्रकार खेराई उत्सव बोड़ो जनजाति में प्रचलित प्राचीन एवं प्रमुख लोक उत्सव है। दरअसल, किसी भी जाति या समुदाय की आत्मा होती है उसकी संस्कृति, जिसके सहारे वह अपने आदर्शों तथा जीवन मूल्यों को निर्धारण करता है।

वस्तुत: खेराई के अतिरिक्त इस जनसमुदाय के लोग माराई अथवा मारेपूजा, बैशागु, दमाछि, गाजी पूजा जैसे लोकप्रिय उत्सव वर्ष के भिन्न-भिन्न समय में पालन करते हैं। इस संप्रदाय के लोग बाथौब्राई अथवा शिब्रागर (शिव) को सिजु पेड़ में प्रतिष्ठित मानते हैं। देवी-देवताओं में शिव को बाथौब्राई, दुर्गा को बाथौबूढ़ी, लक्ष्मी को माईनाओबूढ़ी के रूप में पूजा करते हैं । अत: इस जन संप्रदाय के धार्मिक अनुष्ठान के अंतर्गत खेराई, माराई बैशाागु, दमाछी आदि लोक उत्सव सामूहिक संस्कृति का निदर्शन हैं, जो इनकी गरिमा को प्रदर्शित तो करता हे हैं, साथ ही शांति एवं सुखद संदेश भी देते हैं।

**2.3 भावात्मकता :**

असम की अन्य जन जातियों और बोड़ो जाति में अंतर्संबंध की भिन्नता तो दिखाई देती है, परंतु उनमें एकता की भावना विद्यमान है, जो किसी भी देश की संस्कृति की पहचान होती है और यह पहचान पूर्वोत्तर भारत के पर्वों, त्योहारों एवं संस्कृति में दिखाई देती है। बोड़ो समाज में प्रचलित खेराई उत्सव या इस प्रकार के अन्य उत्सव एक ओर सांकृतिक अनुष्ठान जन-गण के हृदय में निहित भावों एवं अनुभूतियों को व्यक्त करते हैं, तो दूसरी ओर सामाजिक अभिव्यक्ति और भावनात्मक प्रेम एवं भाईचारे का संदेश भी देते हैं।

**2.4 कृषि केंद्रित अनुष्ठान :**

पूर्वोत्तर भारत में अनेक प्रकार की संस्कृतियाँ पाई जाती हैं और इन संस्कृतियों में अनेक प्रकार के पर्व एवं त्योहारों का समावेश है, जिनमें बिहू, जागोई, हॉर्नबिल, मयोको, लोशांग, नांगकरें, बह्देंखलम, लाहो, चाङ; स्ट्राबेरी, चेरी ब्लोस्म और रानिकोर आदि प्रचलित हैं । ये त्योहार अपने पुराने रीति-रिवाजों के साथ संस्कृति को भी सँभाले हुए हैं। यदि कोई व्यक्ति 'बिहू' का नाम लेता है, तो सबसे पहले हमारा ध्यान पूर्वोत्तर भारत के सातों राज्यों की सीमा को स्पर्श करने वाले असम पर ही जाता है। बिना किसी धर्म, जाति एवं संप्रदाय के भेदभाव के बड़े धूम-धाम से मनाया जाने वाला त्योहार

है। वस्तुत: कृषि पर आधारित यह त्योहार प्राचीन काल में उतना ही प्रसिद्ध था, जितना आज है। ठीक इसी प्रकार खेराई उत्सव को कृषि केंद्रित अनुष्ठान के अंतर्गत मनाया जाता है। इस संप्रदाय के लोग विभिन्न शाक-सब्जी के अतिरिक्त खास तौर से देखा जाए तो आहू तथा शालि धान की खेती किया करते हैं, जिसका सीधा संबंध खेराई उत्सव से है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि बोड़ो समाज मंगोलीय सभ्यता से प्रभावित है और भाषा की अगर बात की जाए तो चीनी तिब्बती भाषा परिवार से संबंध माना जा सकता है। धान की खेती और बाँस का प्रयोग ये दोनों ही मंगोलीय सभ्यता में मुख्य रूप से प्रचलित हैं। इसका प्रचलन बोड़ो जनजाति में दृष्टिगोचर होता है। हमने ऊपर उल्लेख किया है कि इस जनसमुदाय के लोग माराई अथवा मारेपूजा,बैशागु, दमाछि, गाजी पूजा आदि अनेक लोकप्रिय उत्सव वर्ष के भिन्न-भिन्न समय में पालन करते हैं तथा इस संप्रदाय के लोग बाथौब्राई अथवा शिब्रागर (शिव) को सिजु पेड़ में प्रतिष्ठित मानते हुए उसकी पूजा करते हैं। देवी-देवताओं में शिव को बाथौब्राई, दुर्गा को बाथौबूढ़ी, लक्ष्मी को माईनाओबूढ़ी आदि के रूप में । अत: इस जन संप्रदाय के धार्मिक अनुष्ठान के अंतर्गत खेराई को मुख्य रूप से चार भागों में विभक्त किया गया है । इनमें से दो भाग जो कि आहू और शालि खेराई के नाम से आषाढ़ और कार्तिक महीने में खेतों की मंगल कामना के लिए पूजा अर्चन की जाती है। इसके अलावा इस जन समुदाय के लोग अपने ऊपर आने वाली कोई भी विपत्ति, आपदा, बीमारी और अभाव आदि संकट में अपनी रक्षा के लिए किया करते थे, जिससे समाज एवं गाँव की सुख-शांति एवं मंगल बना रहे ।

**2.5 खेराई की प्रस्तुति एवं पालन :**

खेराई उत्सव कुछ निर्धारित रीति-रिवाजों को ध्यान में रख कर आयोजन किया जाता है। इस उत्सव की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसे खुले आसमान के नीचे आयोजित किया जाता है, किसी मंदिर या घर की चहारदीवारी के अंदर नहीं । इसके लिए सर्वप्रथम एक वेदी अनिवार्य होती है। इसके उपरांत इस उत्सव के लिए जिस स्थान को सुरक्षित माना जाता है, उस स्थान को समाज एवं गाँव के सहयोग से एक दिन पहले ही साफ किया जाता है। दक्षिण-पूर्व दिशा में 'बाथौ' के लिए एक वेदी की स्थापना होती है। तुलसी और सिजु पेड़ के पास इस उत्सव का आयोजन होता है। मुख्य देव-देवी 'बाथौबूढ़ी' के अतिरिक्त अन्य देव-देवी को भी पूजा अर्पित की जाती है, जिनके भी अलग-अलग नाम हैं, परंतु प्रतिमा निर्माण की प्रथा बोड़ो समाज में परिलक्षित नहीं होती। दरअसल, यह उत्सव सामूहिक रूप में मनाया जाता है। व्यक्तिगत रूप में अपनी इच्छा अनुरूप घर के आँगन में भी मनाया जा सकता है । घर-परिवार की मंगल कामना के साथ ही इस उत्सव का शुभारंभ होता है ।

**2.6 खेराई की आवश्यक सामग्री :**

खेराई उत्सव में तुलसी और सिजु पेड़ के अतिरिक्त बाँस, पीसा हुआ चावल, सोने की अंगूठी, अठारह जोड़ा कुश खंखला, चार टुकड़े बाँस, दुर्वा, केले के पत्ते, केले, ताम्बुल-पान, सिंदूर, अगरबत्ती, सूत, सरसों का तेल, मिट्टी के दीये, चावल, जौ, एक लोटा, बेंत की लाठी आदि कई छोटी-छोटी सामग्रियों की आवश्यकता होती है । इस उत्सव के आरंभ से अंत तक सुंदर ढंग से आजोजित एवं संचालित करने के लिए समाज के कुछ सदस्यों का चयन किया जाता है, जिसे उत्सव की समाप्ति मंगलमय हो सके। एक ऐसे व्यक्ति (ओझा) की आवश्यता होती है, जिसे मंत्रों एवं रीति-नीति की पूर्ण जानकारी हो। इस उत्सव में भाग लेने वाले तमाम भक्तगण अपनी अनेक समस्यायों को व्यक्त करते हुए देवी-देवताओं से वर भी प्राप्त करते हैं ।

**2.7 नृत्य एवं दौदिनी की भूमिका :**

खेराई उत्सव में दौदिनी जो नृत्य करती है, वह अत्यंत आकर्षक और महत्वपूर्ण होता है। संपूर्ण उत्सव का पाठ ओझा करते हैं। मूल रूप से देखा जाए तो ओझा के सामान ही दौदिनी का भी महत्व होता है। उत्सव के आरंभ से लेकर अंत तक ओझा और दौदिनी की भूमिका बनी रहती है। ऐसा माना जाता है कि इस नृत्य से देव-देवी प्रसंन्न होते हैं और उन्हें आशीर्वाद भी प्राप्त होता है तथा उपस्थित भक्तगणों को उनके भूत, भविष्य के बारे में जानकारी दे सकते हैं। यह नृत्य प्रचलित रीति-नीति

के आधार पर होता है और नृत्यरत अवस्था में ही दौदिनी कृषि की मंगल के साथ-साथ समाज का भूत एवं भविष्य आदि देव-देवियों के भाष्य में ही व्यक्त करती है। इस नृत्य से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि इस प्रकार का नृत्य अन्य समुदाय में भी प्रचलित है ।

साधारणत: बोड़ो नृत्य का जन्म भी खेराई के दौदिनी नृत्य से ही हुआ है। बोड़ो संप्रदाय के विभिन्न नृत्यों के साथ दौदिनी नृत्य के ताल, भंगिमा आदि में कोई विशेष अंतर नहीं है। अत: खेराई उत्सव के इस नृत्य को बोड़ो समाज में उच्च स्थान प्राप्त है।

**2.8 पारंपरिक वस्त्र एवं वेशभूषा :**

पारंपरिक वस्त्रों का निर्माण हर समुदाय अपनी एक अलग पहचान तथा प्राचीन परंपरा और प्रतीक विधान की शैली में करता है, जिसमें अधिकांश जनजातीय समुदाय की महिलाएँ अपने हाथों से बुने वस्त्र पहनती हैं। दरअसल, घर में बने हुए वस्त्रों को पूर्व से ही आदर में कोई कमी नहीं रही है। असमिया समाज में इसका प्रचलन बहुत पहले से ही है। असमिया समाज के 'गामोछा' की तरह बोड़ो समाज में 'आरोनाई' को विशेष महत्व दिया जाता है। खासतौर से इसे सम्माननीय व्यक्तियों को आदर सहित उपहार के रूप में दिया जाता है। इसके अलावा बिहू या किसी शुभ कार्यों में भी इसका प्रयोग किया जाता है ।

**3. निष्कर्ष :**

मूल रूप से यह कहने कि आवश्यकता नहीं है कि पूर्वोत्तर भारत संस्कृति का संवाहक केंद्र है। सांस्कृतिक वैविध्य और भाषाई वैविध्य पूर्वोत्तर भारत के निवासियों की अमूल्य धरोहर है। यहाँ का लोक सांस्कृतिक स्वरूप अद्भुत है।

अनेक आपदाओं को झेलते हुए यहाँ के लोक मानस ने अपनी बोलियों, भाषाओं, साहित्य एवं संस्कृति को बचाने के लिए अपनी आत्मशक्ति का जो परिचय दिया है, उसमें बोड़ो जनजाति का 'खेराई उत्सव' अत्यंत महत्वपूर्ण एवं अवलोकनीय है।

प्राचीन परंपरा तथा पारंपरिक वस्त्रों का निर्माण हर समुदाय की अपनी एक अलग पहचान है। अधिकांश जनजातीय समुदाय की महिलाएँ अपने हाथों से बुने वस्त्र पहनती हैं, परंतु आधुनिक वेश-भूषा एवं रहन-सहन में कुछ परिवर्तन अवश्य देखा जा सकता है। समाज विकसित हो रहा है और आपसी प्रेम एवं सम्मान सहित विभिन्न सांस्कृतिक समारोहों के साथ-साथ बोड़ो साहित्य सभा का भी आयोजन होने लगा है ।

मूलत: 'खेराई' उत्सव बोड़ो समुदाय के सांस्कृतिक, धार्मिक एवं सामाजिक जीवन का वास्तवित चित्र तो प्रस्तुत करता ही है, साथ ही पूर्वोत्तर भारत के सांस्कृतिक समन्वय को प्रदर्शित करने की अद्भुत कला को भी व्यक्त करता है ।

अत: पूर्वोत्तर भारत का सांस्कृतिक पक्ष अत्यंत गहन और व्यापक है। संगीत, नृत्य और उत्सवप्रियता यहाँ की विशिष्ट पहचान है। ❑


**संदर्भ ग्रंथ सूची :**

1. रमणिका गुप्ता, आदिवासी : साहित्य यात्रा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - 2008
2. नार्जी भवेन, बोड़ो कछारीर समाज आरू संस्कृति, वीणा लाईब्रेरी, गुवाहाटी, 2009
3. असमर संस्कृति, डॉ. लीला गोगोई, बनलता प्रकाशन 2012
4. पूर्वोत्तर भारत का जनजातीय साहित्य, डॉ. अनुशब्द, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 2017
5. साहित्य सृजन (जुलाई-सितंबर) 2019

भावबोध

# सुरेंद्र वर्मा के उपन्यास 'मुझे चाँद चाहिए' में सहानुभूति की अभिव्यक्ति

**उर्मिला भगत**

शोधार्थी, हिंदी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय, गुवाहाटी
असम-781001
मो. 7002868098



**सार-संक्षेपण :**

प्राचीन काल से ही सहानुभूतिपूर्ण साहित्य की रचना होती आ रही है। महिलाएँ जब साहित्य के क्षेत्र से दूर थीं, तब वह अपने आप को सहानुभूतिपूर्ण साहित्य के माध्यम से जानने और समझने की कोशिश करती थीं। या यूँ कहें कि पुरुषवादी समाज नारी को अपनी सुविधा के हिसाब से ढलने का प्रयास साहित्य के माध्यम से करता रहा और नारी कभी समझते हुए और कभी ना समझकर अपने आप को उसी साँचे में ढालती रही। स्वानुभूति और सहानुभूति में अंतर अवश्य है। कुछ विरले ही सहानुभूति और स्वानुभूति के अंतर को पाट पाते हैं। प्रसव पीड़ा से गुजरने वाली नारी जैसा अनुभव कर सकती है, वैसा अनुभव देखने वाला नहीं कर सकता है। यही कारण है कि साहित्य में सहानुभूति और स्वानुभूति के प्रश्न उठ खड़े हुए हैं। 'मुझे चाँद चाहिए' नारी चेतना से संबंधित एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। आज नारी परिवार, समाज राजनीति में ही नहीं, बल्कि साहित्य कला और संस्कृति में अपने महत्व को स्थापित कर रही है। अपनी आकांक्षाओं को प्राप्त करने के लिए वह प्रतिबद्ध है, जिसके लिए वह बहुत कुछ मूल्य चुकाने के लिए भी तत्पर है, जिसकी अभिव्यक्ति 'मुझे चाँद चाहिए' की नारी पात्रों वर्षा, दिव्या, सुशीला, शिवानी, रीटा, अनुपमा और सतवंती के माध्यम से हुई है। 'मुझे चाँद चाहिए' सहानुभूति प्रधान उपन्यास है। लेखक ने सहानुभूति के माध्यम से नारी पात्रों का चित्रण किया है



**बीज शब्द :** चाँद, सहानुभूति, अभिव्यक्ति।


**भूमिका :** समकालीन साहित्य में अस्मितापरक साहित्य के आगमन के साथ ही साहित्य में स्वानुभूति और सहानुभूति शब्द का आगमन हुआ है, जो साहित्य के क्षेत्र में विशेष महत्व रखता है। अस्मितावादी साहित्य में दलित, स्त्री और आदिवासी विमर्श प्रमुख रूप से सामने आया है। इसके अतिरिक्त किन्नर विमर्श भी धीरे-धीरे अस्तित्व में आ रहा है। अस्मितावादी साहित्य को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है-स्वानुभूतिमूलक साहित्य और सहानुभूतिमूलक साहित्य। आलोचकों में इन दोनों वर्गों को लेकर मतभेद है। कोई स्वानुभूति मूलक साहित्य को महत्व देता है तो कोई सहानुभूतिमूलक साहित्य को। सैद्धांतिक दृष्टि से कुछ अंतर अवश्य देखा जा सकता है। लेकिन अपने-अपने

स्थान पर दोनों का महत्व है। अस्मितावादी साहित्य में 'स्व' की प्रधानता होने के कारण स्वानुभूति का महत्व अधिक हो सकता है। इसका यह अर्थ नहीं कि अस्मितावादी साहित्य में सहानुभूति का महत्व नहीं है। इस शोध-पत्र में 'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास का अध्ययन सहानुभूति के आधार पर किया जाएगा। सुरेंद्र वर्मा ने यहाँ नारी वेदना, संघर्ष, शोषण, आत्मचेतना और नारी अस्मिता के प्रश्न को बड़ी ही कुशलता के साथ उठाया है। लेखक ने सहानुभूति के आधार पर नारी पात्रों के बाह्य और आंतरिक संघर्ष को सामने लाने का प्रयास किया है।

**2. अध्ययन का महत्व :** इस शोध के द्वारा सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण से 'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास का अध्ययन करना है । साथ ही यह देखना कि लेखक अपने नारी पात्रों के साथ कहाँ तक न्याय कर पाए हैं।

**3. अध्ययन का शीर्षक :** प्रस्तुत शोध-पत्र का शीर्षक है 'मुझे चाँद चाहिए में सहानुभूति की अभिव्यक्ति'।

**4. अध्ययन का उद्देश्य :** आलोच्य विषय पर शोधपरक अध्ययन का उद्देश्य है- मुझे चाँद चाहिए में लेखक की सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि को सामने लाना है।

**5. अध्ययन का सीमांकन :** इस अध्ययन का सीमांकन 'मुझे चाँद चाहिए' में सहानुभूति की अभिव्यक्ति विभिन्न नारी पात्रों के माध्यम से किया गया है।

**6. अध्ययन में व्यवहृत पद्धति एवं उपाय :** प्रस्तुत शोध-पत्र में आधारभूत सामग्री के रूप में 'मुझे चाँद चाहिए' और 'संबंधित समीक्षात्मक ग्रंथों' की सहायता ली गई है तथा इसमें अपनाई गई पद्धति व्याख्या-विश्लेषणात्मक और आलोचनात्मक है। साथ ही एम.एल.ए. शोध पद्धति को यहाँ आधार रूप में अपनाया गया है।

**7. विश्लेषण एवं निर्वचन :** 'मुझे चाँद चाहिए' सहानुभूति के आधार पर लिखा गया एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। सुरेंद्र वर्मा ने यहाँ नारी वेदना, संघर्ष, शोषण, आत्मचेतना और नारी अस्मिता के प्रश्न को बड़ी ही कुशलता के साथ उठाया है। लेखक ने सहानुभूति के आधार पर नारी पात्रों के बाह्य और आंतरिक संघर्ष को सामने लाने का प्रयास किया है।

यशोधरा कॉलेज में अपना नाम बदलकर 'वर्षा वशिष्ठ' रख लेती है। यह सुनकर उसके पिता क्रोधित होते हैं और आश्चर्यचकित भी होते हैं, क्योंकि उन्होंने पहली बार सुना था कि किसी लड़की ने अपना नाम बदल लिया है। वर्षा पिता के विरोध में जाकर अभिनय करती है। वर्षा के पिता वर्षा की शादी के लिए अयोग्य लड़कों का रिश्ता लाते हैं। वर्षा विवाह करने से मना कर देती है। वर्षा की मिस दिव्या कत्याल के साथ घनिष्ठ मित्रता हो जाती है। उनके सहयोग से अपनी किस्मत अभिनय के क्षेत्र में आजमाती है, जिसमें उसे सफलता भी मिलती है। वर्मा हिंदी के शायद पहले उपन्यासकार हैं, जिन्होंने वर्षा और दिव्या के द्वारा समलैंगिकता का चित्रण करते हुए उसका समर्थन किया है। हमारे समाज में नारी को मादा से ज्यादा कुछ नहीं समझा जाता है जिसका विरोध करते हुए वर्षा गायत्री से कहती है-

मैं सिर्फ मादा नहीं हूँ। (वर्मा 2016:40)

हर्ष वर्षा को हमेशा कम कर के आँकता है, जिससे वर्षा दुखी हो जाती है, लेकिन वर्षा उसका विरोध नहीं करती है। वर्षा की सफलता पर सभी मित्र उसे बधाई देते हैं, पर हर्ष एक शब्द भी नहीं कहता है। हर्ष को अभिनय के क्षेत्र में वर्षा का कंधा से कंधा मिलाकर चलने से उसके अहं को ठेस लगती है। हर्ष को चुपचाप रहने वाली वर्षा अधिक पसंद आती है। हर्ष के विचारों से वर्षा दुखी तो होती है, पर लेखक उसमें विद्रोह की भावना नहीं जागृत होने देते हैं। हर्ष को मुंबई से फिल्म के लिए ऑफर आता है, और वह चला जाता है। 'तीन बहनें' नाटक वर्षा को लोकप्रिय बना देता है और वह ए ग्रेड की अभिनेत्री बन जाती है। हर्ष के दूसरी अभिनेत्री के साथ संबंध के बारे में अखबार में आता है, तब भी वर्षा चुप रहती है। यहाँ तक कि वर्षा हर्ष और शिवानी के संबंधों को लेकर भी कभी प्रश्न नहीं करती है।

वर्षा को सिद्धार्थ नामक निर्देशक अपनी प्रथम फिल्म 'जलती जमीन' में काम करने का मौका देता है, जिसे वह स्वीकार करती है। वर्षा को इस फिल्म के लिए सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का पुरस्कार मिलता है। वर्षा अपनी अभिनय क्षमता और परिश्रम के बल पर जल्द ही मुंबई में अपना घर ले लेती है, जब कि हर्ष मायानगरी में आकर असफल हो जाता है। फिर भी वर्षा हर्ष को नहीं छोड़ती है। हर्ष नशा करने लगता है। मीडिया में वर्षा और सिद्धार्थ को लेकर गलत अफवाहें फैलने लगती हैं, जिससे हर्ष वर्षा पर क्रोधित होता है। वर्षा हर्ष को नशे

से मुक्त करने तथा उसकी पिक्चर की शूटिंग के लिए अथक प्रयास करती है, लेकिन हर्ष हार मान लेता है और ड्रग्स के अधिक सेवन के कारण हर्ष की मृत्यु हो जाती है। वर्षा हर्ष के बच्चे की माँ बनने वाली होती है, सभी उसे सलाह देते हैं कि वह इस बच्चे को जन्म न दे। लेकिन वर्षा दृढ़ निश्चय करती है कि वह बिन ब्याहे ही हर्ष के बच्चे को जन्म देगी और नौ महीने बाद वह हर्ष के बच्चे को जन्म देती है। इस बीच वर्षा के प्रति लोगों के व्यवहार में परिवर्तन आ जाता है, लेकिन वह हार नहीं मानती है और दिन-रात काम करने लग जाती है। वर्षा की फिल्म 'आकाशद्वीप' सुपरहिट हो जाती है। सिद्धार्थ जो वर्षा से प्रेम करता है, वह वर्षा के सामने विवाह का प्रस्ताव रखता है। लेखक अंत: विवाह संस्था का समर्थन करता हुआ दिखाई पड़ता है। लेखक ने कहीं भी वर्षा को हर्ष का विरोध करते हुए नहीं दिखाया है, जो वर्षा आरंभ में अपने पिता भाई, जीजा और जीजी के विचारों का विरोध करती हुई नजर आती है। वहीं वर्षा अपने प्रेमी के विचारों का विरोध नहीं कर पाती है और उसे अपने संसार में सबसे निकटतम मानते हुए गहरे अनुभूतियों का संबल स्वीकार करती हुई नजर आती है।

मिस दिव्या कत्याल मिश्रीलाल कॉलेज की एक अध्यापिका हैं। दिव्या अपने ज्ञान और व्यक्तित्व से विद्यार्थियों को प्रभावित करती हैं। वह वर्षा को जीवन में संघर्ष करने के लिए प्रेरित करती हैं। मिस दिव्या और प्रशांत, जो कि केमिकल इंजीनियर है, आपस में प्रेम करते हैं। लेकिन धर्म एक न होने के कारण उनके घर वाले विवाह के लिए राजी नहीं होते हैं। प्रशांत दिव्या को बताए बिना विवाह कर लेता है। दिव्या की माँ को बेटी का घर बसाने की चिंता सताने लगती है। दिव्या न चाहते हुए भी माँ की खुशी के लिए अपने मित्र रोहन से विवाह कर लेती है। रोहन विद्या से प्रेम करता है, पर विद्या उससे प्रेम नहीं करती है और वह घुटन भरी जीवन जीने के लिए मजबूर हो जाती है। दिव्या पढ़ी-लिखी और आत्मनिर्भर होने के बाद भी वह पितृ सत्तात्मक व्यवस्था के अनुरूप जीने के लिए विवश दिखाई गई है। लेखक चाहता तो उसमें विरोध की भावना भर सकता था, लेकिन लेखक ने ऐसा न कर विवाह संस्था का समर्थन किया है।

सतवंती के रूप में लेखक ने एक पारंपरिक नारी का चित्रण किया है, जिसके लिए पति को खुश रखना ही कर्तव्य है। वह एक कुशल गृहिणी के रूप में सामने आती है। लेकिन उसका पति अपने ही दफ्तर की एक लड़की के साथ अवैध संबंध रखता है। एक दिन उसका पति उसकी सौत को लाकर घर में बैठा देता है और सतवंती न चाहते हुए भी अपनी बेटी के साथ पिता के घर जाने के लिए बेबस हो जाती है। इतना कुछ होने के बाद भी वह पति को दोष नहीं देती है। वह अपनी सौत को ही दोषी मानती है। साथ ही वह इसे शाप मानती है, जो उसकी नानी, माँ और उसे मिला है।

सुशीला को चतुर्भुज वापस गाँव छोड़कर अनुपमा से विवाह कर लेते हैं, जिसके विरोध में सुशीला एक शब्द भी नहीं कहती है और अंत में पुन: चतुर्भुज उसे वापस ले आते हैं और वह चुपचाप वापस आ भी जाती है। सुशीला और चतुर्भुज को विवाह के ग्यारह वर्ष के बाद पता चलता है कि सुशीला उन्हें भावात्मक सुख नहीं दे सकती है और लेखक उसका त्याग करवा देता है तथा दो विवाह करने तथा असफल होने के बाद पुन: उसे वापस बुला लेता है। यहाँ भी लेखक ने सुशीला को एक अबला नारी के रूप में अंकित किया है, जिसके भाग्य का फैसला करने का हक उसके पति के हाथों में दे दिया है, जो जब चाहे जैसा चाहे फैसला लेने के लिए स्वतंत्र है।

रीटा 'बेवफा दिलरूबा' में रेहाना की भूमिका सफलता के साथ निभाती है। रीटा सुकुमार चटर्जी से प्रेम करने लगती है। सुकुमार जेफर्सन इंडिया में एक्जीक्यूटिव था। रीटा पढ़ाई के बीच में ही सुकुमार से शादी कर लेती है, विवाह के कुछ समय बाद ही रीटा गर्भवती हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप उसे एक वर्ष ड्रामा स्कूल से दूर रहना पड़ता है। लेकिन वह पढ़ाई और अभिनय नहीं छोड़ती है। एक वर्ष बाद रीटा पुन: अपने आप को रिपर्टरी में एक अभिनेत्री के रूप में स्थापित करने के लिए बहुत ही उत्साहित होती है। लेकिन उसी समय उसके पति की पद्दोन्नति और तबादला नैनीताल हो जाता है, जिससे रीटा अपना आत्मसंयम खो देती है। वह अपने आप को कमरे में बंद कर लेती है तथा अपने आप को ही नुकसान पहुँचाती है। अंत: रीटा न चाहते हुए भी पति और बच्चे के साथ नैनीताल जाने के लिए बेबस हो जाती है। वह अपने करियर के बारे में न सोचकर पति के करियर के बारे में सोचती है और अंत में पारिवारिक जिम्मेदारियों के चलते उसके व्यावसायिक-

रचनात्मक जीवन का अंत हो जाता है।

रीटा जैसे पात्र के माध्यम से लेखक ने न चाहते हुए भी पितृ सत्तात्मक व्यवस्था का समर्थन करने को बाध्य किया है। लेखक ने किसी भी पात्र के माध्यम से विवाह संस्था का विरोध नहीं किया है, बल्कि अंत में सभी पात्रों को विवाह के बंधन में बंधने और उसे निभाने के लिए मजबूर किया है।

शिवानी एक पढ़ी-लिखी तथा आत्मनिर्भर लड़की के रूप में सामने आती है। शिवानी हर्ष से प्रेम करती है। हर्ष के घर वाले भी उसे पसंद करते हैं। हर्ष और वर्षा की नजदीकियाँ देख वह अपने आप को हर्ष से अलग कर लेती है। शिवानी और वर्षा के बीच घनिष्ठ मित्रता हो जाती है। यहाँ लेखक ने एक ही लड़के से प्रेम करने वाली दो लड़कियों के बीच घनिष्ठ मित्रता दिखा कर संबंधों के पारंपरिक ढाँचे को तोड़ने का प्रयास किया है। यहाँ एक औरत दूसरी औरत को ही दोषी मानती आ रही है। दोनों सहेलियाँ अपना दुख-सुख आपस में बाँटती हैं। शिवानी अपनी जिंदगी में आगे बढ़ते हुए अश्विन नामक लड़के से प्रेम करने लगती है तथा उससे विवाह करना चाहती है, लेकिन उसके पिता और भाई उसका विवाह अश्विन से न करके विनय से करना चाहते हैं, क्योंकि विनय से उन्हें व्यावसायिक फायदा होने वाला था। विनय एन.आर.आई. है।

शिवानी विवाह के बाद नौकरी छोड़ देती है। लेखक ने शिवानी जैसी पढ़ी-लिखी आर्थिक रूप से स्वतंत्र तथा अपने पिता की संपत्ति और व्यवसाय में आधा का हकदार होते हुए भी अपने जीवन के फैसले लेने के लिए स्वतंत्रता प्रदान नहीं किया है। पारंपरिक समाज के नियमों का पालन करते हुए वह न चाहते हुए भी पिता और भाई की पसंद के लड़के से विवाह कर लेती है।

अनुपमा एक समय चतुर्भुज के साथ काम करना तक पसंद नहीं करती थी। वहीं अनुपमा उससे विवाह कर लेती है। अनुपमा नुक्कड़ नाटक के द्वारा लोगों में चेतना की जागृति करती है, विशेष कर औरतों में।

चतुर्भुज से विवाह कर वह खुश होती है। लेकिन विवाह के कुछ समय बाद ही दोनों में मतभेद होने लगते हैं। अनुपमा अपने दिल की बातें पति से नहीं कह पाती थी और अनुपमा चतुर्भुज से अलग हो जाती है। अनुपमा माता-पिता की सहमति से विवाह करने के लिए तैयार तो हो जाती है, लेकिन वह अपना काम नहीं छोड़ना चाहती है। आखिरकार अनुपमा रामजस कॉलेज में प्राध्यापक और दिल्ली के दो श्रमिक संगठनों से जुड़ा उमेश से सादगी के साथ विवाह कर लेती है। और इस तरह अनुपमा भी पितृ सत्तात्मक व्यवस्था के नियमों का पालन करते हुए दूसरा विवाह कर लेती है।

**निष्कर्ष :** 'मुझे चाँद चाहिए' सुरेन्द्र वर्मा का नारी विमर्श से संबंधित एक महत्वपूर्ण उपन्यास माना जाता है। इस उपन्यास में लेखक ने समाज में नारी संबंधी दृष्टिकोण को रखा है, साथ ही उसमें आ रहे परिवर्तन को भी अभिव्यक्त किया है। नारी के अंदर समाज के प्रति जो आक्रोश है, उसे चित्रित करने का प्रयास किया है। लेकिन जिस रूप में जागृति और विरोध की भावना को चित्रित करने की आवश्यकता थी, उतनी यहाँ नहीं हुई है या दूसरे शब्दों में कहें तो वर्मा जी ने बहुत हद तक पितृ सत्तात्मक विचार को ही प्रमुखता दी है। उन्होंने विवाह संस्था का समर्थन हर एक नारी पात्र के द्वारा किया है। कहीं वह इच्छा से विवाह करती है तो कहीं अपनों और समाज को खुश करने के लिए करती है। साथ ही लेखक ने नारी पात्रों को अपने अस्तित्व और करियर के स्थान पर अपने प्रेमी या पति के अस्तित्व और करियर को अधिक महत्व दिलाने का प्रयास किया है। ❑

**संदर्भ और सहायक ग्रंथ सूची :**


- वर्मा, सुरेंद्र, मुझे चाँद चाहिए, पाँचवाँ संस्करण, दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ, 2016.
- चव्हाण, अर्जुन, समकालीन उपन्यासों का वैचारिक पक्ष, प्रथम संस्करण, दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2012.
- प्रदीप, श्रीधर, स्त्री चिंतन की अंतर्धाराएँ और समकालीन हिन्दी उपन्यास, प्रथम संस्करण, दिल्ली : तक्षशिला प्रकाशन, 2010.
- राय, गोपाल, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, छठा संस्करण, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2016.
- वर्मा, कल्पना (सम्पा.), स्त्री विमर्श : विविध पहलू, द्वितीय संस्करण, इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 2011.

विश्लेषण

# शानी के उपन्यास 'काला जल' में अभिव्यक्त जीवन मूल्य

**पंकज कुमार सहनी**

शोधार्थी, हिंदी विभाग,
तेजपुर विश्वविद्यालय,
तेजपुर, असम-784028

**डॉ. अंजु लता**

सह-आचार्य व शोध निर्देशिका,
हिंदी विभाग,
तेजपुर विश्वविद्यालय,
तेजपुर, असम-784028
फोन : 8876083066

विभाजन के बाद भारतीय समाज में मुसलमानों के हाशियेकरण की प्रक्रिया बढ़ती चल गई तथा उनमें असुरक्षा का बोध और अलगावबोध गहराता चला गया। भारत विभाजन की मार को देश के विभिन्न समुदायों को झेलनी पड़ी थी। इस घटना से आज तक दोनों देशों में अल्पसंख्यक समुदाय को सहज रूप से रहने का मौका नसीब नहीं हुआ है। हिंदुस्तान की स्थिति बेहतर तो थी, लेकिन आजादी के बाद लोकतंत्र और संविधान के वायदे अधूरे रह गए। आजाद हिंदुस्तान में मुसलमानों की स्थिति क्रमश: सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से बदतर होती चली गई। विपरीत परिस्थितियों ने इस समुदाय को अपनी पहचान के प्रति और अधीर बनाने का कार्य किया। इससे उस विवेकशीलता में एक तरह का हस्तक्षेप उपस्थित हुआ है, जो स्वाधीनता आंदोलन के प्रभाव में आकार ले रहा था।

हिंदी साहित्य के अंतर्गत मुस्लिम समाज के यथार्थ के विविध आयामों को अभिव्यक्ति मिली है। आजादी के पहले तथा बाद के कथा साहित्य में अल्पसंख्यक समुदायों के चित्रण में विविधता दिखाई देती है। प्रारंभिक उपन्यासों की बात की जाए तो 1881 में राधाकृष्ण दास के उपन्यास 'नि:सहाय हिंदू' में सर्वप्रथम मुस्लिम समुदाय का चित्रण है। यह प्रमुख रूप से गोहत्या पर आधारित है। यह युग राष्ट्रवाद के निर्माण का काल है। इस उपन्यास के रचनाकार ने भी गोहत्या को हिंदू समाज के पतन के एक कारण के रूप में दर्ज किया है। इस क्रम में दूसरी रचना देवकीनंदन खत्री की है। 1887 ई. में प्रकाशित 'चंद्रकांता' नामक उपन्यास तिलिस्मी तथा ऐय्यारी उपन्यास लेखन की परंपरा में एक कड़ी के रूप में जुड़ जाता है। यह इतना लोकप्रिय हुआ कि चंद्रकांता संतति चौबीस भाग में प्रकाशित हुई। इनके साहित्य में कई मुसलमान चरित्र हैं, वेश्याएँ विशेषकर मुस्लिम हैं। किशोरी लाल गोस्वामी को भी एक ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में प्रसिद्धि मिली। इन्होंने अपने कथा साहित्य में कई मुगल शासकों तथा रानियों को कथा का आधार बनाया। प्रेमचंद पूर्व ऐतिहासिक उपन्यासकारों गंगा प्रसाद गुप्त, जयरामदास गुप्त, ब्रजनंदन सहाय आदि ने मुगलकालीन

मुस्लिम समुदाय का चित्रण अपने साहित्य में किया है।

हिंदी कथा साहित्य में प्रेमचंद के आगमन के साथ साहित्य और यथार्थ का संबंध पुख्ता हुआ। प्रेमचंद की विशेषता यह थी कि उन्होंने अपने साहित्य में हाशिये के समाज को अभिव्यक्ति दी। इनका प्रथम उपन्यास 'सेवासदन' माना जाता है। यह उपन्यास वेश्यावृत्ति की समस्या पर आधारित है। इस उपन्यास में अनेक मुस्लिम पात्र हैं। इस उपन्यास में अब्दुल लतीफ तथा अब्दुल वफा जैसे चरित्रों के माध्यम से प्रेमचंद ने यह दिखाने का कार्य किया है कि वेश्यावृत्ति जैसी प्रथा हर समुदाय में प्रचलित है। वेश्यावृत्ति धर्म पर आधारित समस्या नहीं है, वरन इसके गहरे आर्थिक कारण हैं। अपने दूसरे उपन्यास 'प्रेमाश्रम' में प्रेमचंद ने गौसखां नामक पात्र का चित्रण करते समय जमींदारी प्रथा की विसंगतियों का भी रेखांकन किया है। साथ ही कादिर जैसे गरीब चरित्र के माध्यम से सर्वहारा जीवन को चित्रित करने का कार्य किया है। प्रेमचंद अपने साहित्य में पात्रों का चरित्र-चित्रण करते समय किसी प्रकार के पूर्वाग्रह से ग्रसित नजर नहीं आते। रामविलास शर्मा लिखते हैं कि ''प्रेमचंद अपने उपन्यासों में बराबर इस चीज पर जोर देते हैं कि हिंदुओं और मुसलमानों की बुनियादी समस्याएँ एक हैं। इसलिए मिलकर उन्हें हल करना चाहिए।''[1] 'कर्मभूमि' तथा 'गोदान' जैसे उपन्यासों में भी प्रेमचंद ने मुस्लिम समुदाय को अभिव्यक्ति प्रदान की है। इसके माध्यम से वह भारतीय सामाजिक व्यवस्था के यथार्थ को व्यक्त करने का कार्य करते हैं। आजादी के बाद ऐसे अनेक रचनाकार थे, जिन्होंने मुस्लिम समुदाय के हाशियेकरण और अलगावबोध को रेखांकित करने का कार्य किया। इसमें यशपाल, कृष्णा सोबती, मोहन राकेश, भीष्म साहनी का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है।

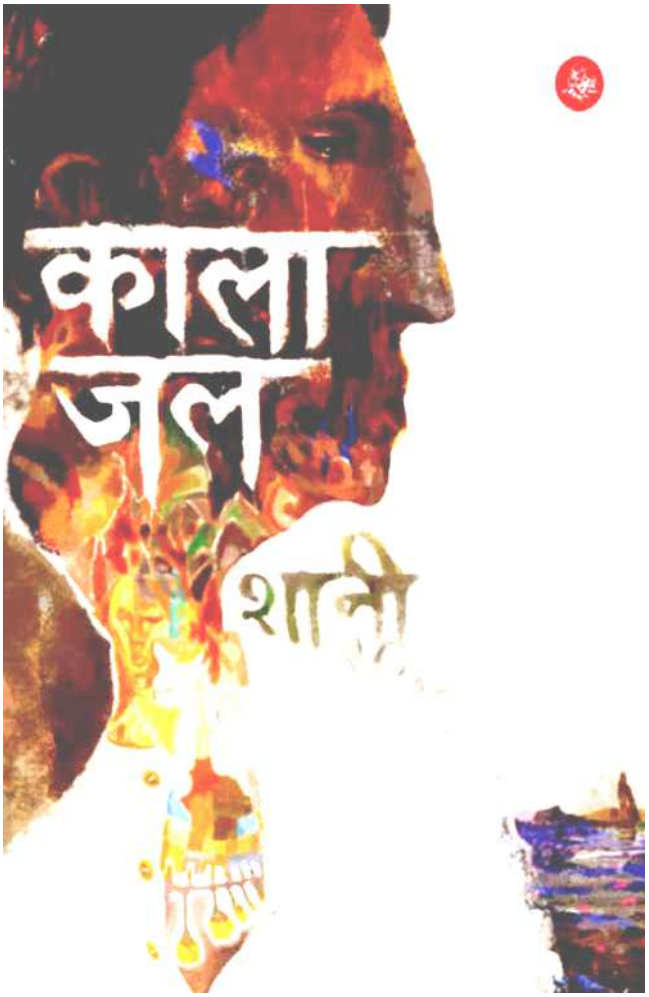


साठोत्तरी दौर में ऐसे बहुत से रचनाकार हैं, जो अल्पसंख्यक समुदाय से हैं तथा अपने समाज के यथार्थ की प्रामाणिक अभिव्यक्ति कर रहे हैं। इस क्रम में राही मासूम रजा, असगर वजाहत, अब्दुल बिस्मिल्लाह, इब्राहिम शरीफ, मेहरून्निशा परवेज, बद्दीउज्जमाँ आदि का नाम लिया जा सकता है। गुलशेर खां शानी भी इन्हीं में से एक हैं। शानी के कथा साहित्य में आजादी के बाद समाज में आधुनिकता के नाम पर आने वाले बदलावों की सनद है। जहाँ एक तरफ हमारे जीवन पर प्रगतिशील विचारधारा का प्रभाव कम होता चला गया, वहीं दूसरी तरफ आधुनिकता के नाम पर विसंगतिपूर्ण जीवन शैली अपनाई जाने लगी। खोखली आधुनिकता की शिकार आधुनिक पीढ़ी की बदलती हुई मानसिकता का चित्रण

इनके यहाँ देखने को मिलता है। शानी की कहानियों तथा उपन्यासों की विषय-वस्तु निम्न वर्गीय भारतीय मुस्लिम परिवारों के जीवन से संबंधित है। वे न केवल मुस्लिम परिवारों वरन संपूर्ण भारतीय निम्न वर्ग के सामाजिक यथार्थ को सामने लेकर आते हैं।

शानी के कथा साहित्य में व्यक्त परिवेश मूलत: मुस्लिम परिवेश है, जो विशेष आलोचना की अपेक्षा रखती है। अपने उपन्यास 'काला जल' में लेखक ने भारतीय समाज में व्याप्त सामासिक संस्कृति को रेखांकित किया है। नई कहानी आंदोलन के प्रारंभ में जिस तरह अस्मिता के प्रश्न हिंदी साहित्य में उभरकर आते हैं, उस संदर्भ में यदि शानी के साहित्य का मूल्यांकन किया जाए तो पता चलता है कि इनके साहित्य में मुस्लिम अस्मिता का अलग ही स्वरूप दिखाई देता है। इस उपन्यास का मुस्लिम समाज अपनी सहभागिता को लेकर सचेत नजर आता है, उसकी चेतना अस्मिताओं की सीमाएँ लांघ कर बाहर की दुनिया देखने और उससे संबंध बनाने के लिए आतुर है। लेखक ने ऐसे चरित्रों की रचना की है, जो सदियों से हिंदू-मुस्लिम एकता के आधार पर निर्मित सामाजिकता की परिणति हैं। यह एक सहज प्रक्रिया है, जिसे लेखक ने अपने साहित्य में व्यक्त किया है। विभिन्न समाजों का निर्माण इन्हीं प्रक्रियाओं की परिणति है। विभिन्न समूहों को अंतर्संबंध कायम होना एक लंबी ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है। लेखक ने इस उपन्यास में दरोगाइन के रूप में एक ऐसे चरित्र की निर्मिति की है, जो एक मुसलमान से विवाह करती है और लंबे समय तक उसके साथ अपने प्रेम संबंध को निभाती है। बाहर से इस्लाम को अपना लेने के बावजूद वह चरित्र अपने जेहन में कृष्ण को बसा कर रखती है। मिर्जा के साथ उसका संबंध किसी को पसंद नहीं आता है। वह लगातार विरोधों का सामना करती है। इस संदर्भ में इस्लामिक कट्टरपंथ का स्वरूप स्पष्ट करते हुए शानी लिखते हैं कि ''लेकिन उस शाम को मगरिब की नमाज के बाद कुछ सफेद दाढ़ी वाले सज्जनों ने मिर्जा का दरवाजा खटखटाया। पहले इधर-उधर की बातें हुईं, फिर दीन मजहब की और आखिर में लोगों ने समझाया की मियाँ मुसलमान की औलाद होकर यह क्या हरामखोरी कर रहे हो ? खुदा के वास्ते अपने दीन मजहब का तो ख्याल करो। किसी भले घर की लड़की से ब्याह रचाओ और इस गुनाह से निजात पाओ।''[2] यह उपन्यास इस प्रकार के वाक्यों से भरा पड़ा है जिसमें इस्लामिक कट्टरपंथी भावना प्रकट होती है। असल में समाज में विकसित धर्म का स्वरूप धार्मिक कट्टरपंथियों की व्याख्या से सदैव अलग रहा है। लेखक ने इस उपन्यास में यह अलगाव लगातर बनाए रखा है।

यह उपन्यास सन 1910 के आदिवासी विद्रोह से शुरू होकर स्वातंत्र्योत्तर भारत के बाद तक की कथा को अपने में समेटे हुए है। सन 1910 का विद्रोह आदिवासियों के सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक जीवन में ब्रिटिश हस्तक्षेप के विरूद्ध था। इस विद्रोह में आजादी प्राप्त करने का लक्ष्य निर्धारित नहीं किया गया था। इस विद्रोह को औपनिवेशिक सत्ता के द्वारा आसानी से दबा दिया गया। इस विद्रोह से जनसाधारण भी प्रभावित होते दिखाई देते हैं। बिट्टी रैतायिन भी इसमें फँस गई थी। विद्रोह शांत होने के बाद ही वह अपने घर वापस आ पाई थीं। उपन्यास में बस्तर के संघर्षपूर्ण जीवन के साथ साथ सामासिक संस्कृति का अभूतपूर्व चित्रण मिलता है। पहली पीढ़ी के मिर्जा करामत बेग हिंदू युवती बिट्टी से प्रेम करते हैं। शादी के बाद बिट्टी बी दरोगाइन कहलाती हैं। मिर्जा बेग की मृत्यु के बाद बिट्टी बी दरोगाइन का विवाह रज्जो मियां से होती है। दोनों बार मुस्लिम समाज में शादी करने के बावजूद बी दरोगाइन हिंदू संस्कारों से स्वयं को मुक्त नहीं कर पाती हैं। वह हिंदू-मुस्लिम साझी संस्कृति के वाहक के रूप में उभर कर सामने आती हैं। मुस्लिम संस्कृति के अनुसार अपना जीवन यापन करती हैं और साथ ही वह अपने कमरे में लक्ष्मी की पूजा भी करती हैं। इस बात से मिर्जा बेग भी अवगत थे और रज्जो मियां भी, परंतु कभी भी किसी ने इसका विरोध नहीं किया। ''सुनने में यह बात अजीब सी लगती है, लेकिन ऊपर से चाहे वह बी दरोगाइन या इस्लाम बी हो, भीतर से वह बिट्टी ही बनी रही। उनके अपने लकड़ी के संदूक (जिसमें सारे जेवर और पैसे रहते) के पल्ले में लक्ष्मी की तस्वीर आखिरी तक चिपकी रही और नहाने के बाद कमरा बंद करके लक्ष्मी पूजा

करना उन्होंने कभी बंद नहीं किया। ...यह बात रौशन फूफा भी जानते थे, रज्जू मियाँ को भी मालूम थी, लेकिन चूँकि बी का यह नियम मिर्जा के जमाने से चला आ रहा था, अत: उसे बाधा देने का साहस किसी को भी नहीं हुआ।''[3] शानी की खुद की दादी भी एक हिंदू महिला थीं, जो सनातन धर्म का पालन करती थीं। आँगन में सदैव पूजा करती थीं। बिट्टी दरोगाइन का चरित्र देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे लेखक ने अपनी दादी को ही चित्रित किया है। शानी के बेटे फिरोज शानी अपने लेख 'पापा को गुस्सा क्यों आता है' में इस विषय में लिखते हुए कहते हैं कि ''मेरी दादी हिंदू थी, पूजा-पाठ करती थीं और घर के सेहन में एक तुलसी-चौरा था। वह बिला नागा पानी चढ़ाया करती थी। सारा घर उनसे चलता था और उनके रौब का यह आलम था कि मेरे बाबा जिन्हें वह छोटे कहकर बुलाती थीं, उनकी आवाज पर हाथ बांधे सामने खड़े हो जाया करते थे। वे बहुत डरते थे अपनी माँ से।''[4] भारतीय सामाजिक व्यवस्था में काफी हद तक इस तरह की पारिवारिक संरचना का निर्माण संभव है। शानी एक सशक्त उपन्यासकार थे, जिनके साहित्य में निम्न वर्गीय परिवारों के जीवन की त्रासदी बेहतरीन ढंग से उभरकर सामने आती है।

काले जल की तरह बस्तर का जीवन भी काला पड़ चुका है। वहाँ का जीवन उस मोती तालाब के सिवार से ढँके गदले पानी के जैसा है, जिसका कोई सामाजिक सरोकार नहीं है। लोग मुख्यधारा से कटकर दुरूह जीवन जी रहे हैं। मुख्यधारा से कटे इस समाज तक देश में चल रहे स्वाधीनता आंदोलन की हलचल नहीं पहुँच पाती है। उपन्यास में कांग्रेसी नेता नायडू के माध्यम से यह आंदोलन बस्तर में दस्तक देता है। सदियों से राजनैतिक रूप से कटे इस समाज में इस आंदोलन की हवा ज्यादा दिनों तक टिक नहीं पाती। हताश नायडू कहता है कि ''इस बस्ती को मैं बीस बरस से जानता हूँ। अवसरवादी और स्वार्थी हर जगह होते हैं, लेकिन यहाँ तो मुर्दे और बेपानी के लोग बसते हैं, हर आदमी अपने अपने ही घुटनों में मुँह छुपाये बैठा है, दूसरे किसी से कोई मतलब नहीं ...कभी-कभी तो मुझे शक होता है। लगता है, जैसे कुछ सच, और अधिकांश झूठ के बीच हम सारे बस्तर के लोग रह रहे हैं। या तो देशव्यापी आंदोलन की बात झूठी है अथवा यह झूठ है कि बस्तर भारत का ही एक हिस्सा है।''[5] नायडू ने जो आंदोलन शुरू किया था उसमें मोहनिस ने भी बढ़-चढ़कर भाग लिया। औपनिवेशिक सत्ता के विरोध में होने वाली लड़ाई में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका थी। मोहनिस के नेतृत्व में चलने वाले विद्यार्थी संगठन ने यूनियन जैक को सैल्यूट करने से इनकार कर दिया था। एक दिन मोहनिस ने उस फ्लैग को जला दिया, जिसके कारण उसे स्कूल से निकाल दिया गया था।

भारत की आजादी के बाद बदलती हुई परिस्थितियों के बीच बस्तर के हालात में भी काफी परिवर्तन देखा गया। यहाँ के लोग भटकाव का शिकार हुए। अपने धर्म के कारण सदैव इन्हें अपनी वतनपरस्ती का सबूत देना पड़ा। आजादी के पहले जो लोग सक्रिय रूप से इस आंदोलन का हिस्सा नहीं थे, वह आजादी के बाद सत्ताधारी बन गए। उपन्यास में इन परिस्थितियों का बारीकी से विश्लेषण दिखाई देता है। मोहनिस जैसे चरित्र इस कारण से अवसाद के शिकार दिखाई देते हैं। इस संदर्भ में एम फिरोज खान लिखते हैं कि ''शानी ने इस तल्ख सच्चाई पर से पर्दा उठाया है कि आजादी से पहले नायडू और मोहसिन देश की आजादी के लिए कदम से कदम मिलाकर चले-उसी मोहसिन को देश की आजादी के बाद शक की निगाह से देखा जाने लगता है, उसकी वतनपरस्ती संदेह के दायरे में आ जाती है। लेखक ने मुस्लिम समाज की इस त्रासदी को बड़े सांकेतिक ढंग से जतलाया है। क्यों ऐसा हुआ? स्वतंत्रता की खातिर साथ-साथ चलने वाले, कुर्बानी देने वालों की देशभक्ति को तो आज तक शक की नजर से देखने की आदत इतने सालों बाद भी बनी हुई है। इसके पीछे कौन सी भावना काम कर रही है?''[6] इस मानसिक पीड़ा को सहते हुए लोगों ने देश छोड़ने का निर्णय लिया। उपन्यासकार ने बड़ी संजीदगी से सामाजिक व्यवस्था के बीच फैली हुए निराशा और विस्थापन की त्रासदी को रेखांकित किया है। विचारधारा से विचलन की प्रवृत्ति शानी के साहित्य में व्यक्त एक प्रमुख संवेदना है। इनकी कहानियों और उपन्यासों में यह दिखाई देता

है कि नायक की वैचारिक प्रतिबद्धता लगातार समाप्त होती जा रही है। 'काला जल' उपन्यास का नायक भी इसी प्रकार से वैचारिक पतन का शिकार होता है। मोहनिस युवावस्था में औपनिवेशिक सत्ता से लड़ाई लड़ता है और मजबूती के साथ स्वयं को स्थापित करता है, लेकिन अंत तक आते-आते परिस्थितियों का गुलाम बनकर वह सरकारी नौकरी करता है। कहीं-ना-कहीं लेखक के मन में भी इस तरह की विवशता को लेकर क्षोभ का भाव व्याप्त है। आजादी के बाद बदलती परिस्थितियों ने युवाओं को अपने समाज के प्रति संवेदनहीन बनाने का कार्य किया। इसके कारणों की पड़ताल करने के क्रम में वे अपनी रचनाओं के नायकों में वैचारिक प्रतिबद्धता की कमी होते जाने को रूपायित करते हैं।

शिल्प की दृष्टि से देखें तो पूरे उपन्यास में कहीं कोई भटकाव नहीं दिखाई देता अथवा बोरियत महसूस नहीं होती है। अलग-अलग परिच्छेद में कही गई कहानियों को इस प्रकार एक दूसरे से गूँथा गया है कि सब मिलकर उपन्यास को परिपूर्ण करते हैं। अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी यह उपन्यास रोचक है। जैसे कि शब्बेबरात की फातिहा का अच्छा उपयोग करते हुए शानी ने भारतीय मुस्लिम समाज और संस्कृति की अच्छी प्रस्तुति की है। उपन्यास में भाषा का बेहतरीन प्रयोग मिलता है। उर्दू के शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है, यही है शबेकद्र-वह रात जो इबादत और दुआ की रात कहलाती है। यही है अजाब गुनाहों से तोबा करने का बेशकीमती मौका, जब जन्नत के दरवाजे खुले होते हैं और जब सिर्फ एक रात की इबादत चार सौ बरस के सिजदे के बराबर होती है।'[7] आंचलिकता के रंग में डूबे इस उपन्यास में कई ऐसे शब्द आ गए हैं, जो अंचल विशेष की सोंधी खुशबू बिखेरते है; जैसे- पोत, पोइयां, अल्लर, गिठानें, खापालना, दातौन-मुखारी, ढंढार आदि। अंत में, यह कहा जा सकता है कि गँठे हुए शिल्प में शानी ने इस उपन्यास में जिन संवेदनाओं को आकार दिया है, वे वर्तमान समय में मानवीय मूल्यों के विकास के लिए, उनके प्रसार के लिए बेहद प्रासंगिक और अनिवार्य हैं। ❑


**संदर्भ ग्रंथ सूची :**

1. रामविलास शार्मा, प्रेमचंद और उनका युग पृ. 82
2. शानी. गुलशेर खां, काला जल, नेशनल पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली पृ. 87
3. वही, पृ.9
4. शर्मा, जानकी प्रसाद, आदमी और अदीब, नेशनल पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली पृ.43
5. शानी. गुलशेर खां, काला जल, नेशनल पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली .पृ. 232
6. एम फिरोज खान, हिंदी के मुस्लिम कथाकार शानी, वांग्मय प्रकाशन, दिल्ली पृ.123
7. काला जल, पृ.10

विमर्श

# भारत में महात्मा गाँधी का विद्याध्ययन : एक प्रामाणिक प्रस्तुति

**सूर्य प्रकाश**

असिस्टेंट प्रोफेसर,
इतिहास विभाग,
मिहिर भोज पी. जी. कॉलेज,
दादरी- ग्रेटर नोएडा,
गौतम बुद्धनगर-203207,
(उत्तर प्रदेश)
मो.- 8171853145
ईमेल:surya9587@gmail.com



**प्रस्तावना :** भारत को ब्रिटिश प्रभुत्व से मुक्ति दिलाने हेतु प्रथम श्रेणी के स्वतंत्रता सेनानियों में महात्मा गाँधी का नाम अग्रणी है। इनके सामाजिक, शैक्षिक व राजनीतिक विचारों से संबंधित अध्ययन सामग्री विभिन्न सार्वजनिक पटलों पर प्रचुरता में देखी जा सकती है, लेकिन इनकी प्रारंभिक एवं हाईस्कूल शिक्षा से संबंधित विवरण यत्र-तत्र बिखरे रूप में मिलते हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में महात्मा गाँधी, जिनका मूल नाम मोहनदास था, की प्राथमिक एवं हाईस्कूल शिक्षा से संबंधित विभिन्न तथ्यों को एकीकृत एवं क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया है।



**बीज शब्द :** स्कूल, शिक्षक, अध्ययन, कक्षा, परीक्षा।


**मूल अंश :** मोहनदास के पिता करमचंद गाँधी प्रारंभ में पोरबंदर रियासत में दीवान थे। उन दिनों पोरबंदर में तीन निजी स्कूल-अध्यारू स्कूल, लक्ष्मण बाबा स्कूल, खोजा स्कूल थे। इनके अतिरिक्त एक सरकारी स्कूल एवं एक तालुका स्कूल भी था। मोहनदास के इन स्कूलों में पढ़ने के साक्ष्य उपलब्ध नहीं हैं, लेकिन मोहनदास के चचेरे भाई माणिकलाल अमृतलाल गाँधी के अनुसार मोहनदास 6 वर्ष की आयु में पहली बार 1875 ई. में वीरजी कमदार के स्कूल में पढ़ने गए। यहाँ यह लगभग 1 वर्ष तक पढ़े । यह स्कूल इनके घर के निकट था। इस कारण गाँधी परिवार के अधिकतर लड़कों ने इस स्कूल में प्रवेश लिया। वीरजी कमदार को लोग सामान्यत: 'लुलिया मास्टर' कहकर बुलाते थे, क्योंकि वह लंगड़े थे।[1] महात्मा गाँधी के समकालीन प्रभुदास गाँधी जो गाँधी परिवार के ही सदस्य थे, के अनुसार इनकी प्रारंभिक शिक्षा एक धूलिशाला में हुई, जहाँ एक शिक्षक अंगुली के माध्यम से धूल में वर्ण-अक्षर बनाकर बच्चों को पढ़ाता था।[2] इस स्कूल के साथ-साथ इन्होंने आनंद जी तुलसी अध्यारू से भी निजी रूप शिक्षा प्राप्त की। आनंद जी पोरबंदर के राजकुमारों के शिक्षक थे। संभवत: आनंद जी से ही मोहनदास एवं उनके बड़े भाई करसनदास ने रामरक्षा सीखी थी।[3]

इनका विद्याध्ययन में मन कम लगता था। पहाड़ा याद करना इनके लिए

बहुत कठिन था। कभी-कभी यह साथियों के साथ मिलकर अपने शिक्षकों को गाली भी दिया करते थे।[4] उल्लेखनीय है कि इनके पिता राजकोट में 1874 ई. से करभरी के रूप में नियुक्त हुए थे एवं उसी वर्ष अपने सबसे बड़े बेटे लक्ष्मीदास के साथ यहाँ आ गए थे। पोरबंदर में 1 वर्षीय स्कूलिंग के बाद 1876 ई. के अंत में इनका पूरा परिवार पोरबंदर छोड़कर राजकोट के दरबारगढ़ स्थित बड़े मकान में रहने लगा। राजकोट के ब्रांच या तालुका स्कूल में मोहनदास ने 1877 ई. से 1878 ई. तक पहली व दूसरी कक्षा में अध्ययन किया। मोहनदास दूसरी कक्षा में अनुत्तीर्ण हो गए, क्योंकि वह बुखार के कारण बीमार थे। इनकी बीमारी का पता इनके पिता द्वारा वांकानेर के राजा साहब वेनसिंह जी को लिखे गए इस पत्र से पता चलता है, जिसमें उन्होंने लिखा कि ''मेरे घर में पाँच-छह लोग बुखार से बीमार पड़े हैं। सबसे छोटे बेटे को बहुत तेज बुखार है और मैं घर छोड़ने की स्थिति में नहीं हूँ।''[5] उल्लेखनीय है कि इसी वर्ष इनके बड़े भाई करसनदास भी कक्षा चार में अनुत्तीर्ण हुए थे, जिन्हें प्रोन्नत करते हुए काठियावाड़ हाईस्कूल में प्रवेश दिला दिया गया तो वहीं मोहनदास को भी दूसरी कक्षा में उत्तीर्ण करते हुए 21 जनवरी, 1879 को तीसरी कक्षा में प्रवेश राजकोट के मुख्य या सिटी तालुका स्कूल में कराया गया, जिसके हेड मास्टर मानिकलाल नागरदास शाह थे। यह स्कूल इनके घर से 5 मिनट से कम की दूरी पर था। सब-अर्बन क्षेत्र में होने के कारण इस स्कूल को सब-अर्बन स्कूल भी कहते थे। यह क्षेत्र के पुराने स्कूलों में से एक था। यहाँ इनका प्रवेश इनके बड़े भाई लक्ष्मीदास ने कराया, जिन्होंने भूलवश इनकी जन्मतिथि 2 अक्टूबर 1869 ई. के स्थान पर 2 सितंबर 1869 ई. लिखा दी।

मोहनदास को तीसरी कक्षा में कालिदास नरेन जी तथा मोतीचंद हंसराज ने पढ़ाया था। कालिदास इनके कक्षा-अध्यापक भी थे, जिन्हें 8 रुपए प्रति माह वेतन मिलता था। मोहनदास तीसरी कक्षा में कुल 238 दिनों में से 110 दिन ही उपस्थित रहे यद्यपि इनका इस स्कूल में प्रवेश 2 महीने विलंब से हुआ था। अत: यह लगभग 70 दिन स्कूल में अनुपस्थित रहे। इससे स्पष्ट होता है कि यह अपनी पढ़ाई के प्रति गंभीर नहीं थे। इस कक्षा में इनके पास अंकगणित, गुजराती, इमला तथा इतिहास व भूगोल सहित 4 विषय थे। इस कक्षा में इन्होंने 200 में से 82.5 अंक प्राप्त कर 41.25 प्रतिशक अंक प्राप्त किए, जबकि इस कक्षा में शीर्ष स्थान प्राप्त करने वाले छात्र ने 76.5 प्रतिशत तथा निम्नतम स्थान प्राप्त करने वाले छात्र ने 37.6 प्रतिशत प्राप्त किए थे। इस परीक्षा में कुल उपस्थित 67 छात्रों में से 48 छात्र चारों विषय में उत्तीर्ण हुए, जिसमें से मोहनदास 47वें स्थान पर थे। इस विवरण से पता चलता है कि यह अभी तक मध्यम श्रेणी के ही छात्र थे।

1880 ई. में मोहनदास ने चौथी कक्षा में प्रवेश लिया। ऊपर दिए गए चार विषय ही इस कक्षा में इन्होंने पढ़े। इस कक्षा में इन्होंने 400 में से 214 अंक प्राप्त कर 53.5 प्रतिशत अंक प्राप्त किए। शीर्ष स्थान प्राप्त करने वाले छात्र ने 65.75 प्रतिशत तथा निम्नतम स्थान प्राप्त करने वाले छात्र ने 41.86 प्रतिशत अंक प्राप्त किए थे। इस परीक्षा में उपस्थित कुल 54 छात्रों में से 32 छात्र ही चारों विषय में उत्तीर्ण हो सके, जिसमें मोहनदास 21वें स्थान पर थे। स्पष्ट है कि मोहनदास की पढ़ाई में अब सुधार होने लगा था। इस कक्षा में कक्षाध्यापक चतुर्भुज बापूजी थे, जिनका वेतन 15 रुपए प्रतिमाह था।

तीसरी व चौथी कक्षा में मोहनदास इतिहास, भूगोल, गणित तथा लेख में औसत दर्जे के छात्र थे, जबकि गुजराती के अंतर्गत उपविषय व्याकरण में श्रेष्ठ स्तर के छात्र थे। यह स्वभाव से डरपोक पुस्तकों तथा पाठों को अपना साथी मानने वाले थे। स्कूल से छुट्टी होते ही सीधे घर आते थे। इन दोनों कक्षाओं में इनके प्रमुख सहपाठी त्रिभुवन पुरुषोत्तम भट्ट, मानशंकर गणेश जी अंजारिया, अमृतलाल वर्धमान मोदी थे। ये तीनों इनके पड़ोस में भी रहते थे। इनमें सबसे होनहार त्रिभुवन थे, जो बाद में राजकोट के मुख्य करभरी बने। मानशंकर के पिता गणेशजी महादेवजी करमचंद गाँधी के निजी सचिव थे। मानशंकर ने ही मोहनदास को इंग्लैंड जाने पर चाँदी की चेन दी थी।

मोहनदास का पहली एंग्लो वर्नाकुलर कक्षा में प्रवेश काठियावाड़ हाईस्कूल, राजकोट में होना था, जिसके

हेडमास्टर उत्तमराम नरभेराम थे। इस स्कूल में प्रवेश के लिए एक प्रवेश परीक्षा आयोजित होती थी। इस परीक्षा में अंकगणित, गुजराती, इमला एवं इतिहास व भूगोल विषय आते थे। मोहनदास ने 18 नवंबर, 1880 ई. को प्रवेश परीक्षा दी, जिसमें उपस्थित कुल 69 छात्रों में से 38 छात्र ही चारों विषय में उत्तीर्ण हुए। मोहनदास ने 400 में से 257 अंक प्राप्त किए। इन्हें अपने स्कूल के छात्रों में छठा तथा संपूर्ण रूप से नवाँ स्थान प्राप्त हुआ। सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाले छात्र ने 74 प्रतिशत अंक प्राप्त किए थे। उत्तीर्ण होने वाले 38 छात्रों में से मात्र 2 छात्र मोहनदास और जयशंकर दयाशंकर बुच ही ऐसे छात्र थे, जिन्होंने एंग्लो वर्नाकुलर कक्षा प्रथम से छठी तथा बॉम्बे मैट्रिकुलेशन परीक्षा प्रथम प्रयास में उत्तीर्ण की। हाईस्कूल की पहली कक्षा में इनके पिता ने इनके जन्म तिथि भदर्वा वदी 12, विक्रम संवत 1925 (2 अक्टूबर 1869 ई.) लिखवाई।

दिसंबर 1880 ई. में मोहनदास ने पहली कक्षा (ब) में प्रवेश लिया। इनके बड़े भाई करसनदास पहली कक्षा में शेख मेहताब की गलत संगति के कारण अनुत्तीर्ण हो गए थे। वे अब मोहनदास के साथ आ गए, जबकि इनके सबसे बड़े भाई लक्ष्मीदास इसी स्कूल की पाँचवीं कक्षा में थे। इस समय मोहनदास के कक्षाध्यापक नागीनाथू गणित्रा जी थे। इस कक्षा का शुल्क 8 आना प्रतिमाह की दर से था। स्कूल का समय सुबह 11:00 बजे से शाम 5:00 बजे तक था, जिसमें 2 से 3 बजे तक 1 घंटे का मध्यावकाश होता था, जबकि शनिवार के दिन स्कूल आधा घंटा पहले बंद हो जाता था। मोहनदास को स्कूल पैदल जाने में दरबारगढ़ से लगभग 12 मिनट लगते थे। पहली कक्षा की टर्मिनल परीक्षाओं में मोहनदास केवल अंकगणित, गुजराती में ही पास हुए, जबकि इन्हें भूगोल व अँग्रेजी डिक्टेशन में कोई अंक नहीं मिले। अपने सेक्शन में इन्होंने 34 में से 32 स्थान प्राप्त किया तथा यह 78 दिनों में से मात्र 22 दिन कक्षा में उपस्थित रहे। यह बहुत शर्मीले स्वभाव के थे। पुस्तकें तथा पाठ्यवस्तु इनके अकेले साथी थे। समय से स्कूल जाना तथा स्कूल बंद होते ही घर आना इनकी आदत थी। हाईस्कूल की पहली कक्षा की परीक्षा के दौरान एक प्रमुख घटना घटित हुई। एक बार मिस्टर गाएल्स (शिक्षा निरीक्षक) निरीक्षण हेतु स्कूल आए तो उन्होंने स्पेलिंग की परीक्षा के लिए 5 शब्द छात्रों को दिए। जिसमें एक शब्द कैटल (kettle) भी था। स्कूल के एक शिक्षक ने अपने बूट से पड़ोसी छात्र की कॉपी में से नकल करने के लिए इनकी ओर इशारा किया, लेकिन इन्होंने नकल नहीं की और उन्हें छोड़कर सभी पास हुए। फिर भी इस घटना से उस शिक्षक के लिए इनका सम्मान कम नहीं हुआ। यह स्वभाव से अपनी उम्र से अधिक उम्र के व्यक्तियों को दोषी नहीं मानते थे। 6, 7 इन्हें पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकों को पढ़ने का शौक ना था, लेकिन एक दिन उनके पिता द्वारा खरीदी हुई पुस्तक श्रवणपितृभक्ति पर नजर गई। इन्होंने इसे बहुत चाव से पढ़ा। इसी समय घुमक्कड़ प्रदर्शनकारी आया, जिसने श्रवणपितृभक्ति संबंधी तस्वीरें दिखाईं। इसके कुछ दिन बाद एक ड्रामा कंपनी ने हरिश्चंद्र नाटक का मंचन किया, जिससे यह बहुत प्रभावित हुए।[8]

पहली कक्षा की वार्षिक परीक्षाओं में इन्हें अपनी कक्षा के दोनों सेक्शन में छठा स्थान प्राप्त हुआ। इन्होंने 63 प्रतिशत अंक प्राप्त किए, जबकि शीर्ष स्थान प्राप्त करने वाले छात्र ने 64 प्रतिशत अंक प्राप्त किए थे। इस कक्षा में यह 153 में से 128 दिन उपस्थित रहे। इसी समय इनके स्कूल के नए हेड मास्टर दोराबजी एदुल जी गीमी बने। यह दिसंबर 1881 ई. में दूसरी कक्षा (अ) में आए। इस समय इनके कक्षा अध्यापक एम.एम.

पांडेय थे। इसी कक्षा के दौरान इन्होंने अपने युवा रिश्तेदारों के साथ सिगरेट पी। नौकर की जेब से सिक्के चुराए तथा आत्महत्या करने तक का विचार बनाया। दूसरी कक्षा की टर्मिनल परीक्षाओं में इन्होंने 57 प्रतिशत अंक प्राप्त किए और अपने सेक्शन में 13वाँ स्थान हासिल किया। कक्षा के दूसरे सत्र के दौरान इनके पिता अपनी भगंदर बीमारी के कारण दीवानी पद से त्यागपत्र देकर राजकोट से परिवार सहित पोरबंदर आ गए। इसी समय इनका विवाह मई 1882 ई. में पड़ोस में रहने वाली एक कन्या कस्तूरबा से हुआ। कुछ महीने बाद यह अध्ययन के लिए पुन: पोरबंदर से राजकोट गए। जहाँ दूसरी कक्षा में इनका सहपाठी शेख मेहताब इनका घनिष्ठ मित्र बन गया, जो इनके बड़े भाई करसनदास का भी मित्र था। शेख मेहताब मोहनदास से 3 साल उम्र में बड़ा था और शारीरिक रूप से हृष्ट-पुष्ट तथा खेल प्रतियोगिताओं में सक्रियता से प्रतिभागी करता था। मोहनदास की पत्नी, माता तथा अन्य लोगों ने शेख मेहताब से नजदीकियों के चलते इन्हें चेतावनी भी दी, लेकिन यह नहीं माने और इन्होंने उसे सुधारने का बीड़ा उठाया और इस प्रकार से शेख मेहताब का साथ 1882 ई. से 1895 ई. तक बना रहा। इसके प्रभाव के कारण मोहनदास की कक्षा में उपस्थिति घटती गई। यह द्वितीय कक्षा में 222 में से 74 दिन ही उपस्थित रहे। इन्होंने दूसरी कक्षा की परीक्षा भी नहीं दी। इनके बड़े भाई करसनदास भी परीक्षा न दे सके और उन्होंने 4 फरवरी 1883 ई. को स्कूल छोड़ दिया, लेकिन मोहनदास और शेख मेहताब ने अध्ययन जारी रखा और पुन: दूसरी कक्षा में प्रवेश लिया। 1883 ई. में दूसरी कक्षा की टर्मिनल परीक्षाएं हुईं, जिसमें यह गंभीर दिखाई दिए। इसमें इन्होंने 66.5 प्रतिशत अंक प्राप्त करते हुए अपनी सेक्शन में आठवाँ स्थान प्राप्त किया। इनकी दूसरी कक्षा के दूसरे सत्र में करसनदास द्वारा अध्ययन फिर से शुरू किए जाने के कारण इस कक्षा में मोहनदास करसनदास, शेख मेहताब तीनों पुन: एक साथ आ गए। दूसरी कक्षा की वार्षिक परीक्षाओं में इन्होंने 68 प्रतिशत अंक प्राप्त करते हुए कक्षा में चौथा स्थान प्राप्त किया। यह इनके पूरे एकेडमिक करियर का सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन था। इस परीक्षा में शेख मेहताब ने 57.5 प्रतिशथ अंक प्राप्त किए, जबकि इनके बड़े भाई करसनदास ने अनुत्तीर्ण होने के कारण जनवरी 1884 ई. में अध्ययन छोड़ दिया। कुछ दिनों बाद ही शेख मेहताब ने भी 2 मार्च 1884 ई. को पढ़ाई छोड़ दी।

तीसरी कक्षा, चौथी कक्षा से शुरू होने वाले हाईस्कूल कोर्स में प्रवेश हेतु एक तैयारी कक्षा के समान थी। तीसरी कक्षा में मोहनदास के कक्षाध्यापक नागीनाथू गणित्रा थे, जो इनके पहली कक्षा में भी कक्षाध्यापक रहे थे। तीसरी कक्षा की टर्मिनल परीक्षाओं में इन्होंने 58 प्रतिशत अंक प्राप्त कर अपने सेक्शन में पाँचवा स्थान प्राप्त किया और इसी के समानांतर इन्होंने चौथी कक्षा की टर्मिनल परीक्षाओं को भी उत्तीर्ण किया। जिस कारण तीसरी कक्षा में 6 माह पढ़ने के बाद इन्हें चौथी कक्षा में हेडमास्टर गीमी द्वारा 1884 ई. में प्रोन्नत कर दिया गया। चौथी कक्षा में शिक्षा का माध्यम अँग्रेजी बन जाने के कारण इन्हें अध्ययन में समस्या उत्पन्न हुई। साथ ही एक नया विषय ज्योमेट्री (भूमिति) भी जुड़ गया था। अत: यह तीसरी कक्षा में वापस जाने की सोचने लगे, लेकिन धीरे-धीरे मेहनत करके यूक्लिड की 13वीं प्रमेय तक पहुँच गए, तब यह विषय उन्हें सरल लगने लगा।

दिसंबर 1884 ई. में यह पाँचवी कक्षा में आए। स्कूल में पढ़ने के बाद यह शाम को पिता के लिए दवा बनाते थे। दवा खिलाते थे तथा रात के समय उनकी मसाज व पट्टी किया करते थे। लगभग 10:00 बजे कार्य से मुक्त होते थे। एक पारसी शिक्षक दोराबजी एदुलजी गीमी इनके हेड मास्टर थे। वे अच्छे अनुशासित व व्यवस्थित कार्यकर्ता वह अच्छे शिक्षक थे। उन्होंने उच्च कक्षाओं में लड़कों के लिए व्यायाम व क्रिकेट अनिवार्य कर दिए थे, लेकिन मोहनदास को दोनों नापसंद थे। उनके अनिवार्य बनाए जाने से पहले मोहनदास ने किसी व्यायाम, क्रिकेट, फुटबॉल के खेल में हिस्सा नहीं लिया था।[9,10] मोहनदास अपनी आत्मकथा में स्वयं लिखते हैं कि प्रतिभाग न करने का कारण मेरा शर्मीला स्वभाव तथा पिता की सेवा के लिए पर्याप्त समय न मिलना था। एक दिन शनिवार को शाम 4:00 बजे व्यायाम की कक्षा थी, लेकिन मोहनदास के पास घड़ी

ना होने के कारण वह बादलों के कारण कक्षा में विलंब से पहुँचे। अनुपस्थिति के कारण को हेडमास्टर ने झूठ माना तथा इन पर एक रुपए चार आने का जुर्माना भी लगाया[11] जिससे वे रोए। अत: उनके पिता ने हेडमास्टर को पत्र लिखकर खेल व व्यायाम में प्रतिभाग से इन्हें मुक्ति दिलाई।[12] इनकी पत्नी इस समय राजकोट में ही थी। यह उनके प्रति आकर्षित थे। इन्हीं दिनों इन्होंने अपने बड़े भाई करसनदास का 25 रुपए का कर्ज अदा करने के लिए इनके ही सोने के कड़े का टुकड़ा चुराया, लेकिन बाद में आत्मग्लानि के कारण पूरी घटना अपने पिता को बताई, जिन्होंने इन्हें माफ कर दिया। पाँचवीं कक्षा की टर्मिनल परीक्षाओं में इनके सेक्शन में 35 छात्रों में से मात्र 7 छात्र ही चारों विषय में उत्तीर्ण हुए। मोहनदास ने 55.75 प्रतिशत अंक प्राप्त कर पाँचवां स्थान प्राप्त किया। पाँचवीं कक्षा के दूसरे सत्र से फारसी व संस्कृत विषयों में से कोई एक विषय लेना था। इन्होंने संस्कृत विषय का चयन किया। पाँचवीं कक्षा की वार्षिक परीक्षाओं में उन्होंने 57.4 प्रतिशथ अंक प्राप्त कर कक्षा में छठा स्थान प्राप्त किया। अंकगणित में 85 प्रतिशत से अधिक अंक होने के कारण इन्हें जूनागढ़-जेतपुर जूनियर स्कॉलरशिप 4 रुपए प्रति महीना के हिसाब से मिली,[13] जो इन्हें छठी कक्षा में प्राप्त होती रही। वार्षिक परीक्षाओं के दौरान ही 16 नवंबर, 1885 को इनके पिता का निधन हुआ। कुछ दिनों बाद उत्पन्न इनका पुत्र भी मृत्यु को प्राप्त हुआ। इन्होंने अपनी छात्रवृत्ति का धन अपने बड़े भाई लक्ष्मीदास को पारिवारिक सहायता हेतु दे दिया।

छठी कक्षा में अँग्रेजी विषय की महत्वपूर्ण भूमिका थी। पाठ्यक्रम में जॉन मिल्टन का पैराडाइज लॉस्ट तथा एडिशन का स्पैक्टेटर शामिल था। इस समय इनको संस्कृत कठिन लगने लगी। छठी कक्षा में यह रटने के कारण संस्कृत विषय से हार मान गए। संस्कृत के शिक्षक कृष्णशंकर हीराशंकर पांडे कड़क मिजाजी तथा विद्यार्थियों को अधिक सिखाने का लोभ रखते थे, जबकि फारसी भाषा के शिक्षक नानूमियाँ जे. कटारीवाला उदार थे। संस्कृत व फारसी भाषा के शिक्षकों के बीच अधिक छात्र पढ़ाने की एक प्रतिद्वंद्विता रहती थी। संस्कृत से परेशान होकर एक बार जब मोहनदास फारसी की कक्षा में बैठ गए तो संस्कृत के शिक्षक दुखी हुए। उन्होंने इनसे पूछा कि ''तुम कैसे भूल सकते हो कि तुम एक वैष्णव पिता के पुत्र हो। क्या तुम अपने धर्म की भाषा नहीं सीखोगे? यदि कोई समस्या थी तो तुम मेरे पास आते... तुम्हें दिल छोटा नहीं करना चाहिए।''[14] इस दिन के बाद से इन्होंने संस्कृत भाषा को सीखने का काफी प्रयास किया और सफल रहे। छठी कक्षा की टर्मिनल परीक्षाओं में इन्होंने 47.2 प्रतिशत अंक प्राप्त कर कक्षा में छठा स्थान प्राप्त किया। गणित में सर्वाधिक अंक 18 मिले, जबकि वार्षिक परीक्षाओं में इन्होंने 49.4 प्रतिशत अंक प्राप्त कर कक्षा में चौथा स्थान प्राप्त किया, जिस कारण इनको जूनागढ़-जेतपुर सीनियर छात्रवृत्ति 10 रुपए प्रति माह की दर से मिली।[15]

उन दिनों सातवीं कक्षा में उपस्थिति तथा प्रगति अच्छी होने पर स्कूल की ओर से मुंबई विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित मैट्रिकुलेशन परीक्षा में बैठने की अनुमति मिलती थी। 1887 ई. तक मुंबई विश्वविद्यालय के अधीन कुल 77 हाई स्कूल थे, जो छात्रों को मैट्रिकुलेशन परीक्षा के लिए तैयार करते थे। इनमें से काठियावाड़ हाईस्कूल भी एक था। मोहनदास ने दिसंबर 1886 ई. में अपने स्कूल की सर्वोच्च सातवीं कक्षा में प्रवेश लिया। इसमें कुल 5 विषयों के तीन समूह थे -

1. भाषा के अंतर्गत अँग्रेजी अनिवार्य थी और इसके अतिरिक्त अन्य 13 भाषाओं में से कोई एक भाषा लेनी थी, मोहनदास ने संस्कृत का चयन किया।

2. गणित के अंतर्गत अंकगणित, बीजगणित तथा रेखागणित।

3. सामान्य ज्ञान में इतिहास, भूगोल तथा प्राकृतिक विज्ञान।

अप्रैल 1887 ई. में मोहनदास ने सातवीं कक्षा की टर्मिनल परीक्षाओं में 575 में से 183 अंक प्राप्त कर 31.8 प्रतिशथ अंक प्राप्त किए। वार्षिक परीक्षाओं में 32 में से 16 उत्तीर्ण होने वाले छात्रों को मुंबई विश्वविद्यालय के अधीन मैट्रिकुलेशन परीक्षा का फॉर्म भरने का मौका मिला। इसमें मोहनदास दसवें स्थान पर थे। मैट्रिकुलेशन परीक्षा में प्रतिभाग के लिए अहमदाबाद जाने के कारण

मोहनदास ने अक्टूबर-नवंबर-दिसंबर माह की अपनी छात्रवृत्ति लेने का अधिकार तीसरी कक्षा के छात्र एवं अपने निकट रिश्तेदार हरकचंद रघुनाथजी को दिया। मुंबई विश्वविद्यालय के अंतर्गत 21 नवंबर, 1887 ई. (सोमवार ) से 25 नवंबर, 1887 ई. (शुक्रवार) तक पाँच केंद्रों मुंबई, पूना, बेलगांव, अहमदाबाद व कराची में मैट्रिकुलेशन परीक्षा प्रारंभ होनी थी। मोहनदास ने निकटता के कारण अहमदाबाद केंद्र पर यह परीक्षा दी। इस परीक्षा का पाठ्यक्रम सातवीं कक्षा के पाठ्यक्रम के ही समान था।

मोहनदास पहली बार बिना किसी साथी के राजकोट से अहमदाबाद गए। परीक्षा में इनका सीट नंबर 2275 था। इस परीक्षा में सम्मिलित 3067 में से 799 छात्र उत्तीर्ण हुए। इन्होंने 625 में से 247.5 अंक प्राप्त कर 404 वां स्थान प्राप्त किया।

संपूर्ण काठियावाड़ में पाँचवा स्थान प्राप्त किया। अँग्रेजी में 200 में से 89, गुजराती में 100 में से 45.5, गणित में 175 में से 59 तथा सामान्य ज्ञान में 150 में से 54 अंक प्राप्त हुए और इस प्रकार इन्होंने मैट्रिकुलेशन परीक्षा (दसवीं) उत्तीर्ण की।[16]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मोहनदास आरंभ में एक सामान्य स्तर के छात्र थे, जिसका प्रमुख कारण इनका शर्मीला स्वभाव था। इसके बाद शेख मेहताब की संगति के कारण भी इनका अध्ययन अपेक्षित स्तर का न रहा, लेकिन कक्षा 2 में अनुत्तीर्ण होने के बाद इन्होंने निरंतर कठिन परिश्रम कर हाईस्कूल की कक्षाओं एवं अंत में मैट्रिकुलेशन परीक्षा उत्तीर्ण की एवं अपने माता-पिता व समाज का नाम रौशन किया। निश्चित रूप से इस उम्रवर्ग में विद्याध्ययन के इस अनुभव ने इनकी बौद्धिकता को सुदृढ़ आधारीय रूप प्रदान किया। ❑


**संदर्भ ग्रंथ सूची :**

1. महात्मा गाँधी एज ए स्टूडेंट, संपादक जे.एम.उपाध्याय, निदेशक प्रकाशन विभाग, सूचना व प्रसारण मंत्रालय, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 4
2. प्रभुदास गाँधी, माय चाइल्डहुड विद गाँधीजी, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1957, पृष्ठ संख्या 27
3. महात्मा गाँधी एज ए स्टूडेंट, संपादक जे.एम.उपाध्याय, निदेशक प्रकाशन विभाग, सूचना व प्रसारण मंत्रालय, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 5
4. महात्मा गाँधी (अंग्रेजी अनुवादक : महादेव देसाई), द स्टोरी ऑफ माय एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ, नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद, 1927, पृष्ठ संख्या 20
5. महात्मा गाँधी एज ए स्टूडेंट, संपादक जे.एम.उपाध्याय, निदेशक प्रकाशन विभाग, सूचना व प्रसारण मंत्रालय, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 5
6. महात्मा गाँधी (अंग्रेजी अनुवादक : महादेव देसाई), द स्टोरी ऑफ माय एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ, नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद, 1927, पृष्ठ संख्या 22-23
7. प्यारेलाल, महात्मा गांधी : द अर्ली फेज, वॉल्यूम 1, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1986, पृष्ठ संख्या 200
8. महात्मा गाँधी (अंग्रेजी अनुवादक : महादेव देसाई), द स्टोरी ऑफ माय एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ, नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद, 1927, पृष्ठ संख्या 24
9. प्यारेलाल, महात्मा गांधी : द अर्ली फेज, वॉल्यूम 1, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1986, पृष्ठ संख्या 206
10. महात्मा गाँधी (अंग्रेजी अनुवादक : महादेव देसाई), द स्टोरी ऑफ माय एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ, नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद, 1927, पृष्ठ संख्या 43
11. प्यारेलाल, महात्मा गांधी : द अर्ली फेज, वॉल्यूम 1, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1986, पृष्ठ संख्या 206
12. महात्मा गाँधी (अंग्रेजी अनुवादक : महादेव देसाई), द स्टोरी ऑफ माय एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ, नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद, 1927, पृष्ठ संख्या 44-45
13. प्यारेलाल, महात्मा गांधी : द अर्ली फेज, वॉल्यूम 1, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1986, पृष्ठ संख्या 200
14. महात्मा गाँधी (अंग्रेजी अनुवादक : महादेव देसाई), द स्टोरी ऑफ माय एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ, नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद, 1927, पृष्ठ संख्या 42,48,49
15. प्यारेलाल, महात्मा गांधी : द अर्ली फेज, वॉल्यूम 1, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद,1986, पृष्ठ संख्या 200
16. महात्मा गाँधी एज ए स्टूडेंट, संपादक जे.एम.उपाध्याय, निदेशक प्रकाशन विभाग, सूचना व प्रसारण मंत्रालय, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 56

विमर्श

# 'जंग लगी तलवार' उपन्यास में अभिव्यक्त भारतीय मजदूरों का जीवन संघर्ष : एक अध्ययन

दिनेश कुमार प्रसाद

शोधार्थी, हिंदी विभाग
असम विश्वविद्यालय, डिफू परिसर
कार्बी आंग्लांग, असम
पिन : 782462, मो. 7002134846
ईमेल : dineshprasad.ddm@gmail.com


**1. प्रस्तावना :**

साहित्य की विभिन्न विधाओं के बीच मनुष्य की विभिन्न दिशाओं का पूर्ण रूप से चित्रण करने का माध्यम उपन्यास है। उपन्यास गद्य साहित्य की एक प्रमुख विधा है, जिसमें समाज में होने वाली विभिन्न घटनाओं का सजीव चित्रण होता है। मनुष्य के जीवन में सुख-दुख, आशा-निराशा, घात-प्रतिघात तथा विभिन्न प्रकार के शोषण का चित्रण उपन्यासों में प्रतिफलित होता है।

भारतीय साहित्य में श्रमिक जीवन को लेकर कई भाषाओं में उपन्यासों की रचना की गई है, जिनमें से असमिया साहित्य की देन प्रमुख रही है। असमिया साहित्य में सबसे पहले बिरिंची कुमार बरुवा ने श्रमिक जीवन पर 'सेउजी पातर काहिनी' उपन्यास की रचना की और इसमें चाय जनजाति के श्रमिक जीवन को दर्शाया गया है। इसके बाद उमाकांत शर्मा, वीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य और इंदिरा गोस्वामी द्वारा श्रमिक जीवन को लेकर लिखे गए उपन्यासों को प्रधान माना जाता है। असम के उपन्यासकारों ने मूल रूप से असम के श्रमिकों के शोषण, उनके दुख-दर्द, आशा-आकांक्षा आदि पर रचनाएँ की हैं। परंतु इंदिरा गोस्वामी के उपन्यासों में भारत के विभिन्न प्रांतों के श्रमिक जीवन का चित्रण मिलता है। प्रस्तुत शोध-पत्र में 'जंग लगी तलवार' उपन्यास में निहित भारतीय मजदूरों के जीवन संघर्ष को चित्रित करने का प्रयास किया गया है।

**2. अध्ययन का उद्देश्य :**

श्रमिक जीवन के मानदंड को समझने के लिए श्रमिक जीवन पर रचित साहित्य कृतियों का विशेष महत्व रहता है और साहित्य के माध्यम से ही समाज के विभिन्न वर्गों के जीवन का यथार्थ रूप प्रतिफलित होता है। अत: मजदूरों के जीवन की सच्चाई को जानने के लिए मजदूरों के जीवन पर रचित उपन्यासों का महत्व सर्वाधिक होता है और यह शोध-पत्र असमिया उपन्यासों में निहित भारतीय मजदूरों के जीवन के विषय में जानने हेतु सहायक होगा।

**3. अध्ययन का सीमांकन :**

इंदिरा गोस्वामी एक ऐसी प्रखर लेखिका हैं, जिनकी समस्त कृतियों को एक ही शोध-पत्र में समेट लेना असंभव है। इसी कारण इनके उपन्यास 'जंग लगी तलवार' में अभिव्यक्त श्रमिकों के जीवन की विभिन्न दिशाओं तक ही यह शोध कार्य सीमित रहेगी।

**4. व्यवहृत प्रद्धति :**

प्रस्तुत शोध-पत्र में वर्णनात्मक तथा विश्लेषणात्मक प्रद्धति का प्रयोग किया गया है और इसकी प्रस्तुति के लिए निम्नलिखित उपायों की सहायता ली गई है -

1) मुद्रित माध्यम 2) इंटरनेट

**5. मूल आलेख :**

इंदिरा गोस्वामी के उपन्यासों में शोषण के विविध रूप, विधवा स्त्री की पीड़ा, अत्याचार, वेदना, श्रमिक जीवन के दुख-दर्द आदि का चित्रण यथार्थ रूप में हुआ है। इन्होंने भारत के विभिन्न प्रांतों से काम करने के लिए आए हुए श्रमिकों के जीवन को लेकर उपन्यासों की रचना की है। इनके उपन्यासों में असमिया श्रमिक किसान और असम में चाय जनजाति के चाय श्रमिकों की जीवन के विपरीत भारत के विभिन्न प्रांतों से आए हुए पूल, नहर, सड़क आदि बनाने वाले श्रमिकों के जीवन का चित्रण हुआ है। इसका एक प्रमुख कारण यह भी रहा है कि इंदिरा गोस्वामी के पति माधवेन एक इंजीनियर थे और वे भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अपने कामों के लिए जाया करते थे, जिससे इंदिरा गोस्वामी को भी अपने पति के कर्मस्थल पर जाने का मौका मिलता था और वहाँ काम करने वाले श्रमिकों के जीवन को नजदीक से देखने का मौका मिलता था । श्रमिक जीवन की पृष्ठभूमि पर लिखी गई इंदिरा गोस्वामी के प्रत्येक उपन्यास बेजोड़ हैं। कश्मीर के चिनाव नदी पर नहर बनाने के लिए आए हुए श्रमिकों के जीवन का वर्णन 'चेनावर स्रोत' उपन्यास में हुआ है और 'अहिरण' तथा सई नदी उत्तर प्रदेश रायबरेली पर नहर बनाने आए श्रमिकों का वेदनामूलक जीवन का चित्रण क्रमश: 'अहिरण' तथा 'जंग लगी तलवार' उपन्यास में हुआ है। इन तीनों उपन्यासों में श्रमिकों के दुखदाई जीवन के साथ-साथ इनके सामाजिक जीवन, रीति-नीति, पूजा पाठ आदि का भी चित्रण हुआ है। लेकिन इस शोधकार्य में सिर्फ 'जंग लगी तलवार' उपन्यास को ही लिया गया है। उल्लेखित उपन्यास में कोई भी श्रमिक असम की चाय श्रमिक या असम के किसान श्रमिकों में से नहीं है। प्रस्तुत उपन्यास में भारत के विभिन्न प्रांतों के श्रमिक हैं, जो मजदूरी के लिए एक जगह से दूसरी जगह जाते रहते हैं। श्रमिकों की दुर्दशा, विभिन्न प्रकार के अभाव आदि का चित्रण करने के साथ-साथ ऊँच-नीच भेदभाव आदि का भी वर्णन किया गया है। नहर बनाने वाली कंपनियाँ का महिला श्रमिकों को उनके श्रम से कम वेतन देने के साथ-साथ उन पर मानसिक एवं शारीरिक रूप से अत्याचार का यथार्थ वर्णन 'जंग लगी तलवार' में हुआ है।

'मामरे धरा तरोवल' इंदिरा गोस्वामी के श्रमिक जीवन पर आधारित एक उल्लेखनीय उपन्यास है। इस उपन्यास का हिंदी अनुवाद पापोरी गोस्वामी ने 'जंग लगी तलवार' शीर्षक से किया है। जिस प्रकार से इंदिरा गोस्वामी ने 'चेनावर स्रोत' और 'अहिरण' उपन्यास में श्रमिक जीवन के दुख-दर्द, स्त्री जीवन की अनेक घटनाओं और शोषण के विविध रूप आदि का वर्णन किया है, ठीक उसी प्रकार का चित्रण हमें 'जंग लगी तलवार' उपन्यास में दिखाई पड़ता है। 'जंग लगी तलवार' उपन्यास की पृष्ठभूमि उत्तर प्रदेश की रायबरेली है। इस उपन्यास में सई नदी में नहर बनाने वाले श्रमिकों के संघर्षमय जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है। इस उपन्यास में तीन प्रकार के चरित्रों का मुख्य रूप से समागम हुआ है, पहला नहर बनाने वाले वंचित एवं शोषित श्रमिक समाज, दूसरा श्रमिक जीवन में विभिन्न प्रकार की आशा दिखाने वाले श्रमिक संगठन और तीसरा उसी अंचल के स्थानीय लीडर लोग। 'जंग लगी तलवार' उपन्यास की कहानी इस प्रकार से है सई नदी में नहर बनाने के कामों के लिए आए श्रमिकों की मजदूरी और उनके अस्थायी पद के लिए श्रमिक संगठन के लीडर लोग आंदोलन शुरू कर देते हैं और श्रमिकों को आश्वासन देते हैं कि इस श्रमिक आंदोलन का फल लाभजनक होगा। इसी कारण श्रमिक बिना खाए-पिए आंदोलन करने के लिए तैयार हो गए। श्रमिकों ने भी चेतावनी दी कि अगर आंदोलन असफल रहा तो श्रमिक लीडरों को सई नदी की रेतों में

गाड़ देंगे। लेकिन एक सप्ताह बाद कंपनी के मालिक और श्रमिक संगठन के बीच चर्चा हुई और इस आंदोलन को कंपनी ने असंवैधानिक घोषित किया। श्रमिक के लीडर के लोग स्थानीय लीडर शास्त्री के पास गए और उनसे परामर्श माँगा और परामर्श के बदले उन्हें कुछ रुपए देने का भी वादा किया। शास्त्री के आने पर आंदोलन चलते रहा। कंपनी के लेबर इंस्पेक्टर ने नजदीकी गाँव के लोग जो आंदोलन में बैठे श्रमिकों को चावल, गेहूँ आदि जो उधार पर देते थे, उसे बंद करने के लिए धमकी दी, जिसके फलस्वरूप श्रमिकों की स्थिति काफी बिगड़ गई। पेट में लगी भूख से लोग पागल की तरह हो गए और श्रमिक राक्षस में रूपांतरित हो गए। मुंशीगंज कसाई की दुकान के फेंके गए बकरी के चमड़े के लिए श्रमिकों के बच्चे आपस में झगड़ा करने लगे और स्त्रियाँ वेश्या बनने को मजबूर हो गईं। साथ ही साथ विभिन्न कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। श्रमिकों के लीडर शास्त्री के पास जाते हैं और इस धरना को उठा लेने की बात कहते हैं। लेकिन शास्त्री इस पर असहमति प्रदान करता है, जिसके कारण श्रमिकों की स्थिति और भी खराब हो जाती है। हालात को देखते हुए शास्त्री के पास रायबरेली से और भी लोग आ जाते हैं इस आंदोलन को बंद करवाने के लिए। इसके बाद कंपनी और शास्त्री के बीच पैसों का सौदा होता है और शास्त्री को रायबरेली से भेज दिया जाता है।

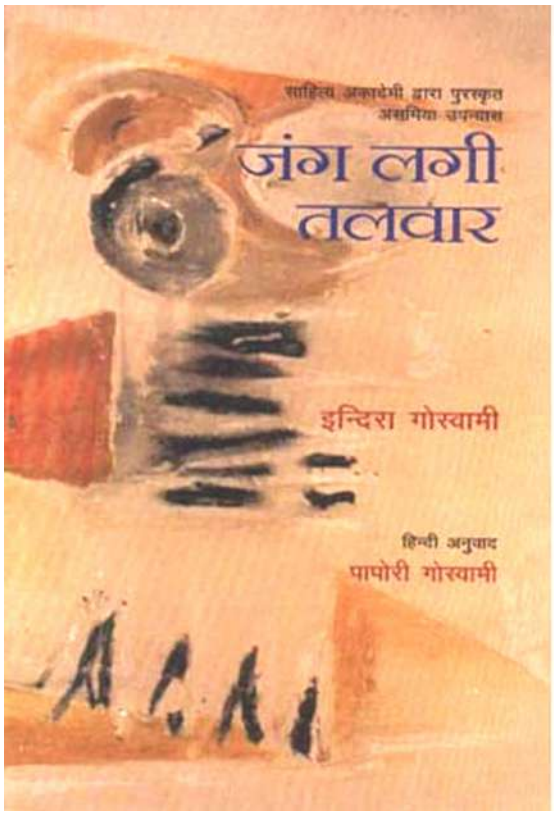


इंदिरा गोस्वामी के श्रमिक जीवन पर आधारित मुख्य तीन उपन्यास हैं- 'चेनावर स्रोत', 'अहिरण' और 'जंग लगी तलवार'। इनके उपन्यास 'चेनावर स्रोत' में अपने कार्य का उचित मूल्य न मिलने के कारण श्रमिकों की आर्थिक स्थिति खराब हो गई थी, जिसके कारण श्रमिक संगठन बनाने के लिए श्रमिकों के द्वारा चर्चा भी हुई और 'अहिरण' उपन्यास में हड़ताल चलती रही। परंतु 'जंग लगी तलवार' की तरह गंभीर नहीं थी। श्रमिक सुविधा देख कर काम करते थे, लेकिन जंग लगी तलवार में श्रमिकों के संग्राम और श्रमिक संगठन ही मुख्य रहे हैं। डॉनकान कंपनी के श्रमिकों को अपनी भूख मिटाने के लिए अत्यधिक कष्ट करना पड़ता था ।

सई नदी पर काम करने वाले श्रमिकों की संख्या बहुत ही ज्यादा थी। ये लोग कम समय में ज्यादा काम करके बहुत ही कम मजूरी प्राप्त करते थे और इसी मजूरी द्वारा श्रमिक अपना जीवन-यापन करते थे । काम समाप्त हो जाने के बाद कंपनी उनको फटे हुए जूते की तरह फेंक देती थी। इन श्रमिकों का कार्य स्थायी नहीं था, जिसके कारण इन्हें मजबूरन अधिक काम करना पड़ता था। कम मजूरी मिलने के कारण इनकी आर्थिक स्थिति बहुत ही बिगड़ गई थी, जिसका फायदा हमेशा से कंपनी के मालिक लोग उठाते हुए श्रमिकों का शोषण करते रहते थे। 'जंग लगी तलवार' उपन्यास के प्रधान श्रमिक चरित्रों में नारायणी, वशुमति, शिव धासला, यशोवंत और लिचु लंगरा आदि हैं। इस उपन्यास में रायबरेली के दलित समाज का अंकन हुआ है। इंदिरा गोस्वमी लगभग छह महिनों तक दलितों के साथ रही

हैं। इसी कारण दलित समाज का यथार्थ चित्रण उनके उपन्यास में हुआ है। विभिन्न जाति, जनजाति के लोग डॉनकान कंपनि के साथ काम करते थे, लेकिन इस उपन्यास में दलित संप्रदाय के श्रमिकों के जीवन-यापन करने की प्रणाली पर ज्यादा महत्व प्रदान किया गया है।

दलित समाज के श्रमिकों की जीवन-यात्रा अत्यधिक यंत्रणादायक रही है और अछूत जाति होने के कारण इन्हें सामाजिक मर्यादा मिलने से भी वंचित रहना पड़ता था। इसी कारण ये लोग एक समूह में एक जगह से दूसरी जगह कामों की तलाश में आते-जाते रहते थे, जिसके फलस्वरूप इनका अपना घर नहीं था। उनके रहने के लिए कंपनियाँ कुछ छोटे-छोटे बसेरों का इंतजाम कर देती थीं। इन छोटे-छोटे घरों में ही श्रमिक अपने परिवार के साथ रहा करते थे। उनके पास खाने के लिए अनाजों का अभाव हमेशा से रहता था और विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ उनका पीछा नहीं छोड़ती थीं। इन श्रमिकों के शरीर की सारी हड्डियाँ झलकतीं, मानो नरकंकाल ही हो, जो श्रमिकों की असहाय अवस्था को दिखाती थी। इंदिरा गोस्वामी ने इनका सजीव उदाहरण वशुमति के शरीर के वर्णन में किया है, ''उलझे बाल, कोढ़ के सफेद दाग और लगभग अधनंगी देह पर चिथड़े जैसी साड़ी लपेटकर घूमने वाली वशुमति को सब लोग कुत्ते-बिल्लियों जैसा दुत्कारते हैं।'' (जंग लगी तलवार पृष्ठ-57)

लेखिका इंदिरा गोस्वामी ने 'जंग लगी तलवार' उपन्यास में श्रमिकों की शिक्षा के अभाव या आर्थिक दुर्व्यवस्था के कारण भाषा में जो निम्म व्यवहार नजर आता है, वह इनकी पात्रानुकूल भाषा के सटीक प्रयोग की दक्षता को दर्शाता है। इस उपन्यास में पात्रों के बीच गाली-गलौज भी दिखाई पड़ता है। जब नारायणी ठाकुर के घर से देह व्यवसाय कर वापस घर लौट रही थी, तब उसकी रास्ते में रामू और बामू से मुलाकात होती है और नारायणी के रास्ते को रोक कर विभिन्न प्रकार के अप-शब्द बातें सुनाने लग गए। रामू और नारायणी के बीच आपस में गाली-गलौज करना शुरू हो जाता है। रामू - बामु और नारायणी के बीच बातों का वर्णन इस प्रकार से लेखिका ने प्रस्तुत किया है -

'सुअर के बच्चे ! लोटा दे मेरे पैसे'

'नारायणी , तू भी ऐसा काम करती है?'

'दे दे , टालौ दे मेरे पैसे!'

'चुप रह, ज्यादा हल्ला करेगी तो मारकर हड्डियाँ तोड़ दूँगा। साली, हम जमादारों की इज्जत को मिट्टी में नहीं मिला दी है तूने ?''(जंग लगी तलवार पृष्ठ-50)

नारायणी अपने पेट में लगी आगरूपी भूख को बुझाने के लिए अपने आप को ठाकुर की कामना की बलि हो जाने देती है। नारायणी ऐसे पात्र के रूप में चित्रित हुई है, जो प्रत्येक श्रमिकों के लांछित और वंचित होने के प्रतीक के रूप में खड़ी है। शादी के पहले वह एक पतिव्रता स्त्री होने का सपना देख रही थी। लेकिन उसके ऊपर कंपनी का ही एक इंजीनियर शारीरिक शोषण कर चला जाता है। इसके बाद उसकी राजकुमारी बनने का सपना चूर-चूर हो जाता है। शिबू धासला से शादी के बाद उसके जीवन में कुछ परिवर्तन हुआ। दोनों ही डॉनकान कंपनी के ही श्रमिक थे। आंदोलन के कारण दोनों का काम बंद हो गया । बच्चे के दूध के लिए, पति की दवा के लिए पैसा इकट्ठा करना लगभग नामुमकिन सा हो गया था, जिसके कारण कुछ बुरे कामों में नियुक्त होना पड़ा था। श्रमिकों का दुख हमेशा एक-सा रहा और यातनाओं की भरमार लगी रही। लेकिन तभी भी उसके चरित्र में आत्माभिमान की झलक दिखाई पड़ती है। नारायणी काम की तलाश में पूरे सई नदी के रेतों को पार कर जाती थी, तभी भी प्रताड़ना करनेवाले इंजीनियर के पैसे देने पर भी उसने नहीं लिया, जिसके लिए नारायणी को वशुमति द्वारा फटकार भी मिलती है। नारायणी एक अज्ञात बीमारी का शिकार हो जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि संसार के सभी दुख उसी के सिर गिर पड़े हों। अत: अंत में रायबरेली आए हुए लोधी कंपनी के साहबों के पास अपनी देह बेचकर पेट की भूख को मिटाने की बात सोचती है। नारायणी इस उपन्यास की मुख्य पात्र है, जो अपनी जीवन यात्रा में असहाय हो जाने के कारण मजबूरन वेश्यावृत्ति में लग जाती है। श्रमिक की स्त्रियों को आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण या कंपनी के मालिकों की कामनाओं को पूर्ण करने के लिए वेश्यावृत्ति में लिप्त होना पड़ा था।

नारायणी गर्भवती रहते समय सई नदी के किनारे भूख से पागल की तरह घूमती रहती थी, पर श्रमिक यूनियन के लोगों ने श्रमिकों के परिवार को विभिन्न प्रकार के आश्वासन देकर भी किसी प्रकार की मदद नहीं की। श्रमिकों की इसी प्रकार की आर्थिक स्थिति को देखते हुए कंपनी के श्रमिक बेगू की दोनों बेटियाँ अपने घर से भाग जाती हैं और वेश्यावृत्ति में लिप्त होने के लिए विवश हो जाती हैं ।

इस उपन्यास के द्वारा इंदिरा गोस्वामी ने शराब पीकर अपनी स्त्रियों पर विभिन्न प्रकार के अत्यचार करने वाले श्रमिकों का भी चित्रण किया है। श्रमिकों के पास खाने तक के लाले पड़ गए थे, परंतु बिना शराब पिए उनके लिए जीना मुश्किल था। शिबु धासला बीमारी से ग्रस्त था, उसका सारे शरीर की हड्डियाँ साफ-साफ झलकती थीं। पर उसने शराब पीना बंद नहीं किया। लीचू लंगड़ा यूनियन के पैसे का ही शराब पी जाता था। रामू और बामु शराब के लिए बहुत देर तक ठाकुर के घर बैठे रहते और पुरुष श्रमिक नशे में अपनी स्त्रियों के साथ अत्याचार करते थे। श्रमिकों में जवान मेहतर (सुईपर) श्रमिक थे, जो कंपनी के साहबों के पाखाना आदि साफ करते थे। वे आनंद उपभोग करने के लिए रायबरेली के शहर में सिनेमा देखने आते थे। कभी टांगे या कभी-कभी पैदल ही शहर तक आ जाते थे, सिर्फ सिनेमा ही नहीं, संगीत का स्वाद लेने के लिए भी यह लोग शहर जाते थे।

बहुत ही आशा-आकांक्षा के साथ श्रमिकों ने कंपनी के खिलाफ धरना प्रदर्शन किया था, लेकिन इसका कोई भी फैसला न होने के कारण अंत में श्रमिकों को कंपनी की बात माननी पड़ी, जिसके फलस्वरूप श्रमिकों की आर्थिक रूप से उन्नति न हो सकी। श्रमिकों के कुछ ऐसे भी बच्चे थे, जो स्कूल न जाकर सई नदी में मछलियाँ पकड़ते रहते थे, उनके बदन पर कपड़े तक नहीं थे। लीचू लंगड़ा का एक ही बेटा था, जिसकी मृत्यु नदी में मछली पकड़ते समय हुई थी। रामू और बामु की भी अन्य श्रमिकों की तरह आर्थिक स्थिति बिगड़ चुकी थी और सई नदी में ब्लास्टिंग के सहारे मछली पकड़ने की योजना बनाई। ब्लास्टिंग के समय ही लिचु लंगड़ा का बेटा करंट लगकर नदी में मर जाता है, जिसके बाद लीचू लंगड़ा अकेला हो जाता है। बेटे की मृत्यु के बाद और कंपनी में चल रहे आंदोलन का कोई भी लाभदायक आशा उसे नहीं दिखाई पड़ती, इसी कारण लिचु लंगड़ा भी सई नदी में कूदकर आत्महत्या कर लेता है। इस प्रकार एक श्रमिक परिवार पूर्ण रूप से समाप्त हो जाता है। सई नदी के तट पर बसे श्रमिकों का जीवन-निर्वाह किस प्रकार एक भयंकर रूप ले लेता है इसका सजीव चित्रण मिलता है। श्रमिकों का जीवन हमेशा से विपत्तिओं से घिरा हुआ दिखाई पड़ता है। कब कौन-सी परिस्थिति आ जाएगी किसी को कुछ नहीं मालूम, किसी भी समय श्रमिकों के जीवन का अंत हो सकता है। कंपनी में काम चलते समय एक खलासी श्रमिक की मृत्यु भयानक रूप से हो जाती है। उसके पेट में एक लोहे का रॉड घुसकर पीठ की तरफ से निकल जाता है। इस घटना में और भी दो श्रमिकों की मृत्यु हो जाती है। मरने के बाद भी लोगों को समाजिक रूप से दाह या दफनाने का भी मौका नहीं मिलता। लाशों को सई नदी में ही फेंक दिया जाता था और गिद्धों का झुंड उन्हें नोंच-नोंच कर खाते है, जिसका उल्लेख गोस्वामी अपने इस उपन्यास में इस प्रकार से करती हैं-''सई नदी के पश्चिम से आया हुआ गिद्धों का एक झुंड हरिजन बैरक के पास आकर चिचियाने लगा। ये झुंड थोड़ी देर पहले एक मानव शरीर नोंचकर आया था । यह शारीर पांची शाखा के चेचक में मरी लंगरे की पत्नी की थी।'' (जंग लगी तलवार पृष्ठ-30)

इंदिरा गोस्वामी ने नारायणी को एक शोषित स्त्री के रूप में दिखाया है। लेकिन स्त्री अपने आत्मसम्मान के लिए कभी-कभी आग का गोला भी बन जाती है, जिसका उदाहरण प्रस्तुत उपन्यास में दिखाई पड़ता है। 'जंग लगी तलवार' उपन्यास में वशुमति श्रमिक जीवन के यथार्थ रूप को सामने ला खड़ा कर देती है। आंदोलन के चलते खाना न मिलने के कारण वशुमति की दोनों नातियाँ घर से भाग जाती हैं और इसका पूरा दोष यूनियन के ऊपर डालती है और कहती है -''बेवकूफ, और कितना दिनों तक चलेगी तुमलोगों की यह हड़ताल? गाँधी महात्मा के दिनों से तुम लोगों की नारेबाजी सुन-सुनकर कान पक गए। चालीस विभागों में पूरी जिंदगी

भर इन्हीं हाथों से पाखाना साफ किया है मैंने। काम खत्म होने पर हमेशा जूठन खाने वाले कुत्तों की तरह दुत्कार दी गई हूँ। हर जगह काम किया है और अंत में भगा देते हैं वे कभी परमानेंट नहीं बन पाई।'' (जंग लगी तलवार पृष्ठ- 68)

नहर निर्माण कार्य में लगे श्रमिकों का जीवन बेहाल हो गया था। कुत्ते और मनुष्य का खाना एक-सा ही हो गया, एक प्रकार से देखा जाए तो वे जंतु ही हो गए थे। फेंकने वाली कोई भी चीज उनसे बचती नहीं थी, जिसका उदाहरण इस उपन्यास में यत्र-तत्र मिलते हैं। वशुमति ने कुत्ते और बिल्लियों के लिए फेंकी गई रोटी को भी खाती थी। यह स्थिति सिर्फ वशुमति तक ही सीमित नहीं था, समस्त मेहतर श्रमिकों की यही हालत थी। वशुमति तथा मेहतर श्रमिकों के बच्चों द्वारा कुत्ते के लिए दी गई रोटी छीन कर खाना एक हृदय विदारक स्थिति को जागृत करती है। 'जंग लगी तलवार' उपन्यास में शास्त्री एक सुविधावादी चरित्र है। शास्त्री विभिन्न कौशल द्वारा श्रमिक यूनियन को आंदोलन करने का उपदेश भी देता है और कंपनी के साथ मिलकर श्रमिकों का शोषण भी करता है। अंत में कंपनी की तरफ से मोटी रकम लेकर अन्य जगह भाग जा जाता है और लगभग दो सालों के बाद सई नदी में काम करने वाले श्रमिक शास्त्री के घर तलवार लेकर पहुँच जाते हैं, क्योंकि उन्होंने पहले ही चेतावनी दे रखी थी कि अगर आंदोलन का कोई लाभदायक फल नहीं आया तो लीडरों को सई नदी के रेतों में गाड़ दिया जाएगा। इस उपन्यास में दलित श्रमिकों में यशोवंत शिक्षित श्रमिक है। वही एक ऐसा श्रमिक है, जो दलित श्रमिकों में मैट्रिक पास है, जिसके कारण श्रमिक उसे ज्यादा सम्मान देते थे। यशोवंत आंदोलन करने वाले श्रमिकों की यूनियन का एक मेंबर भी था और अन्य श्रमिकों की तरह शराब का सेवन नहीं करता था तथा किसी प्रकार के स्वार्थी भाव उसके चरित्र में दिखाई नहीं पड़ता है। जब आंदोलन असफल हो जाता है तो श्रमिक यूनियन के लोग जहाँ तहाँ भाग जाते हैं, लेकिन यशोवंत ने ऐसा नहीं किया, वह श्रमिकों के पास जाकर उनकी समस्याओं को अपनी समस्या समझा।

दलित श्रमिक के नेता यशोवंत ने बहुत ही आशा के साथ श्रमिक यूनियन का गठन किया, परंतु शास्त्री के कुपरामर्श के कारण सारा आंदोलन असफल हो जाता है। उस समय श्रमिक पूँजीवाद पर विश्वास करते थे, जिसका फायदा उठाकर बहुत लोग राजनीति करने लगे। शास्त्री अपने लीडरों से कहता है -''भाइयो, तुमलोगों के जी.एम. ने कहा है, पूँजीवाद के नारे लगाने से नेता बना जा सकता है, लोकतांत्रिक देश में ट्रेड यूनियन बनाई जा सकती है और मजदूरों को ठगकर चंदा वसूला जा सकता है।'' (जंग लगी तलवार पृष्ठ-68)

प्रस्तुत उपन्यास में शास्त्री एक अवसरवादी चरित्र है, जो लीडरों से कुछ और कहता है और श्रमिकों के भाषण में कुछ और कहता है। श्रमिकों की सुविधाओं को लेकर भाषण में दलित श्रमिक को उत्तेजित कर देता है, ''सुनो, तुमलोगों ने हरिजन को यूनियन में जगह देकर बहुत अच्छा काम किआ है...आजकल हरिजनों को राजनीति के मैदान में किस तरह घसीटा जा रहा है, देख रहे हो न? दिल्ली की सरकार ने हर हरिजन को पैंसठ वर्गफूत जमीन और पन्द्रह सौ रुपये का अनुदान दिया है। पंजाब सरकार 'हरिजन' नाम ही मिटा देना चाहती है और फिर विदेशों में पढ़ने जाने वाले हरिजनों को हर तरह का खर्चा दे रही है। वैसे हरिजनों के लिए एक अलग सुविधा चाहिए, जिससे वे चुनाव लड़ सके और .....'' (जंग लगी तलवार पृष्ठ-45)

शास्त्री के उक्त कथन द्वारा लेखिका इंदिरा गोस्वामी ने दलित समाज को लेकर विभिन्न प्रकार के राजननैतिक फायदा उठाने वाले लोगों की ओर एक जोरदार इशारा करती हुई दिखाई पड़ती हैं।

'जंग लगी तलवार' उपन्यास में दलित श्रमिक के बीच होने वाले नीति-रीति, पूजा-पाठ आदि का चित्रण बहुत ही सुंदर तरीके से इंदिरा गोस्वामी ने किया है। डॉनकान कंपनी में काम करने वाले दलित श्रमिक नारायण की पूजा करते हैं साथ ही दंतेश्वरी की भी पूजा इनके द्वारा की जाती है। आर्थिक दिशा से कमजोर होने के कारण यह पूजा छोटे में ही किया करते हैं और प्रसाद के रूप में गुड़ से सने हुए मूड़ी तथा पके हुए केले का प्रबंध

करते हैं। देवी की पूजा के लिए नारियल तथा देशी शराब भी चढ़ाया जाता है, लेकिन इन सभी के बीच में भी जात-पात का भेदभाव देखा जा सकता है। शंभू पासवान ने जब अन्य जाति के श्रमिकों को बुलाया तो उनमें से कोई भी श्रमिक पूजा में नहीं आया। शंभू इन सभी बातों को हमेशा से जानता था कि उसके रीति-नीति में अन्य ऊँच श्रेणी के श्रमिक या साहब नहीं आते हैं, तभी भी वह सभी को निमंत्रण देता है। इन सभी बातों को शंभू पासवान महत्व नहीं देता, जिसके बारे में इंदिरा गोस्वामी लिखती हैं -

''संपूर्ण जीवन दलित और वंचित होने के बाद शंभू पासवान इस गति धारा को सहज रूप में लेता था।'' (जंग लगी तलवार पृष्ठ-13)

इंदिरा गोस्वामी ने अपने इस उपन्यास के माध्यम से शोषित मजदूर वर्ग के सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। साहित्य इंदिरा गोस्वामी के यथार्थ जीवन का फल है। 'जंग लगी तलवार' उपन्यास में मजदूरों के जीवन संघर्ष का यथार्थ रूप में जिस प्रकार से वर्णन हुआ है, ऐसा अन्य किसी असमिया साहित्यकार ने भारत के दूसरे क्षेत्र के मजदूरों को लेकर उपन्यास की रचना नहीं की है।

**6. उपसंहार :**

मानव जीवन में होने वाले दैनिक कार्य समाजिक, राजनीति, आर्थिक, धार्मिक आदि विभिन्न प्रकार की समस्याओं का उजागर उपन्यास के माध्यम से होता आ रहा है। समाज के विभिन्न स्तरों की समस्या को उजागर करने का साथ-साथ श्रमिक जीवन का चित्रण भारतीय साहित्य में हुआ है। भारतवर्ष के विभिन्न स्थलों पर नहर बनाने वाले श्रमिकों के जीवन में होने वाली आर्थिक समस्या, शोषण के विविध रूप, राजनीति और धर्म, नीति-रीति आदि का वर्णन किया गया है। अत: हम कह सकते हैं कि भारतीय साहित्य में इंदिरा गोस्वामी नि:संदेह प्रखर लेखिका रही हैं। 'जंग लगी तलवार' उपन्यास में इंदिरा गोस्वामी का गहन चिंतन दिखाई पड़ता है। स्त्री श्रमिक की प्रतिवादी सत्ता को उजागर करने में भी इंदिरा गोस्वामी सफल रही हैं। स्त्री श्रमिक के गंभीर जीवन-बोध का नारायणी के जरिए प्रकाश हुआ है तथा इन उपन्यासों में स्त्री और पुरुष चरित्र श्रमिकों के जरिए भारतीय स्त्री और पुरुष श्रमिकों के चिंता-चेतना आदि का प्रवाह हुआ है। इंदिरा गोस्वामी इस उपन्यास द्वारा श्रमिकों के दुख-दर्द से भरे जीवन को उजागर करने में सफल रही हैं। ❑

**ग्रंथ सूची :**


1. गोस्वामी, इंदिरा : जंग लगी तलवार, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 2003,
2. भराली, हेमन्त कुमार(संपादक) : मामोनी रयसमर साहित्य संभार, असम प्रकाशन परिषद, गुवाहाटी, 2014
3. गोगोई, स्वर्ण बरुवा : लेखिका, असम लेखिका समारोह समिति, जोरहाट , 2012
4. बरदलै, सत्यंद्र और मोरान, निहारिका (संपा.): मामोनी रयसम गोस्वामीर उपन्यास आरू छुटीगल्पर पर्यालोचना, पुर्वायन प्रकाशन, गुवाहाटी, 2018
5. नाथ, डॉ. भनिता : मामोनी रयछम गोस्वामीर उपन्यास विचार- विश्लेषण, पुर्वायन प्रकाशन, गुवाहाटी, 2020
6. हुसैन, निकुमणि : रामांजलि, चन्द्र प्रकाश, गुवाहाटी, 2011
7. गोस्वामी, डॉ. त्रिदिव कुमार : तेजस्वनी मामोनी बाईदेउ, न्यू बुक स्टाल, गुवाहाटी, 2013

बौद्ध साहित्य

# पालि 'धम्मपद अट्ठकथा' में बौद्धकालीन लोक जीवन

**कृष्ण कुमार साह**

शोधार्थी, हिंदी विभाग
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
शिलांग, मेघालय, पिन-793022
मो. 8967445302
ईमेल : sahkrishna075@gmail.com

**शोध सार :**

प्रस्तुत शोध आलेख में पालि के प्रसिद्ध ग्रंथ 'धम्मपद अट्ठकथा' का बौद्धकालीन लोक जीवन के संदर्भ में अध्ययन किया गया है। आलेख में सर्वप्रथम 'ग्रंथ परिचय' द्वारा त्रिपिटक, धम्मपद एवं 'धम्मपद अट्ठकथा' के संकलन, रचनाकार एवं उसके रचना काल का सामान्य परिचय प्रस्तुत किया गया है। 'मूल आलेख' में पहले लोक शब्द को स्पष्ट किया गया है और बौद्धकालीन लोक जीवन में ग्रामों की स्थिति और उसके नामकरण आदि पर चर्चा की गई है। इसके बाद तत्कालीन लोक जीवन में कृषि, वर्ण व्यवस्था, विभिन्न जातियों एवं उसके पेशे, शिल्पकारों, पशुपालकों आदि के स्वरूप को धम्मपद अट्ठकथा के उद्धरणों के माध्यम से उजागर किया गया है। तत्पश्चात लोक संस्कार में-गर्भाधान, जातक संस्कार, विवाह एवं मृत्यु संस्कार एवं उत्सवों, लोक विश्वासों पर विशेष चर्चा की गई है। अंत में निष्कर्ष के माध्यम से प्रस्तुत शोध आलेख को वर्तमान के लोक जीवन से जोड़ने का प्रयास किया गया है। अत: प्रस्तुत शोध आलेख बौद्धकालीन लोक जीवन के स्वरूप को अभिव्यक्त करता है ।

**बीज शब्द :**

धम्मपद, धम्मपद अट्ठकथा, बौद्ध साहित्य, लोक जीवन, कृषि, पशुपालक, शिल्पकार, वर्ण व्यवस्था, जाति, लोक संस्कार, गर्भाधान, जन्म संस्कार, नाम संस्कार, मृत्यु संस्कार, विवाह, उत्सव, लोक विश्वास आदि ।

**ग्रंथ परिचय :**

बौद्ध धर्म एवं दर्शन त्रिपिटक में समाहित है। त्रिपिटक कोई स्वतंत्र ग्रंथ न होकर पालि बौद्ध धर्म एवं दर्शन के ग्रंथों का समूह है, जिसे विषय के आधार पर तीन भागों में सुत्तपिटक, विनयपिटक और अभिधम्मपिटक में बाँटा गया है। इसमें सुत्तपिटक के अंतर्गत पाँच निकाय- दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय, संयुक्तनिकाय, अङ्गुत्तरनिकाय, खुद्दकनिकाय हैं। इन पाँचों निकायों के अंतर्गत अनेक वग्ग (वर्ग), सुत्त (सूत्र) एवं स्वतंत्र ग्रंथ समाहित हैं। इनमें खुद्दकनिकाय का विशेष महत्व है, जिसमें सुत्तों के संग्रह के साथ-साथ छोटे-बड़े स्वतंत्र

ग्रंथ हैं । खुद्दकनिकाय में संग्रहीत ग्रंथों की संख्या 15 है। यह निकाय सुत्तपिटक के अन्य चार निकायों से भिन्न है । इसमें मुख्य रूप से पद्यात्मक और कुछ गद्य-पद्य मिश्रित रचनाएँ मिलती हैं। भाषा और शैली की दृष्टि से भी इसके ग्रंथ अन्य निकायों से अलग एवं वैविध्यपूर्ण हैं । इन स्वतंत्र ग्रंथों में धम्मपद का विशेष स्थान है। धम्मपद बौद्ध वांङ्मय की अमूल्य निधि है । इसमें समय-समय पर बुद्ध द्वारा दिए गए वचनों का संकलन है। बुद्ध ने परिनिर्वाण के बाद लगभग 45 वर्षों तक घूम-घूमकर उपदेश दिया। ये उपदेश अनेक कथानकों पर आधारित हैं एवं अनेक श्रोताओं को लक्ष्य करके कहे गए हैं। ये उपदेश बौद्ध धर्म के मूल हैं। बौद्ध धर्म एवं दर्शन का मूल सिद्धांत संक्षिप्त रूप में इसमें समाहित है।

'धम्मपदट्ठकथा' इसी लोक प्रसिद्ध ग्रंथ 'धम्मपद' पर लिखी गई अट्ठकथा है। इसे धम्मपद की व्याख्या कही जा सकती है। इसमें धम्मपद के प्रत्येक श्लोक को कथा के माध्यम से समझाया गया है। ''धम्म शब्द से धर्म, अनुशासन, नियम आदि का तात्पर्य लिया जाता है और पद का अर्थ वक्तव्य या पथ से किया जाता है । इस प्रकार धम्मपद का अर्थ सत्य-संबंधी वक्तव्य या सत्य का मार्ग है।''[1]

अट्ठकथा को 'अत्थवण्णना', अत्थसवण्णना' एवं 'वण्णना' भी कहा जाता है। त्रिपिटक में वर्णित अट्ठकथाओं के प्राचीन रूप को निद्देस एवं विभंग अट्ठकथा कहा जाता है। पालि अट्ठकथा से आशय अर्थ की कथाएँ, अर्थ की व्याख्या है। दीघनिकाय की अट्ठकथा 'सुमंगलविलासिन' की लक्खणसुत्तवण्णना में इसे स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि 'अत्थकथं ति अत्थयुत्तं कथं।' अत: जिस अर्थ में बुद्ध ने उपदेश दिया, उसे बताना तो अट्ठकथाओं का उद्देश्य है ही, परंतु सहायतार्थ वे उस परिस्थिति को, संदर्भ को, भी स्पष्ट करती हैं, जिसमें बुद्ध ने कभी किसी को कोई उपदेश दिया।''[2]

धम्मपदट्ठकथा में धम्मपद के 423 गाथाओं पर कथा है। ये कथाएँ जातक कथाओं के समान ही हैं। गाथाओं के संशय को दूर करने के लिए जातक कथा के समान ही धम्मपदट्ठकथा में गाथाओं की व्याख्या, पच्चूप्पन्नवत्थु, अतीतवत्थु, वैयाकरण एवं अनुसंधि दी हुई है। धम्मपदट्ठकथा की प्रत्येक कथा के पहले ही यह लिखा हुआ है कि बुद्ध ने यह गाथा एवं कथा अमुक समय, अमुक स्थान में, अमुक व्यक्ति को, अमुख घटना के संदर्भ में कही थी। इसके बाद कथा प्रारंभ होती है और कथा का अंत गाथाओं के साथ होता है, जिसमें स्वत: ही गाथाओं की व्याख्या हो जाती है। कथा के उपसंहार में यह कहा जाता है कि इस कथा एवं गाथा से हजारों व सैंकड़ों श्रोताओं को धर्म लाभ मिला तथा भिक्षुओं को उपसंपदा एवं अर्हत्व आदि की प्राप्ति हुई। इसकी अनेक कथाओं में कथा उत्पन्न होने के कारण से पूर्व अतीत की कथा कही गई है। बुलिंगम ने अपनी पुस्तक 'बुद्धिस्ट लीजेंड्स' की भूमिका में लिखा है कि ''वैदिक अथवा संस्कृत टीकाओं में कथा के उल्लेख का प्रयोजन, शब्दों और मूलपाठ की व्याख्या करना तथा उसके अर्थ को कथा के द्वारा उदाहरण देकर स्पष्ट करना होता है, और कथाभाग गौण होता है, किंतु बौद्ध अट्ठकथाओं में यह बिल्कुल उल्टा हो जाता है।''[3] धम्मपदट्ठकथा के रचनाकार आचार्य बुद्धघोष माने गए हैं। धम्मपदट्ठकथा के अंत में परिचयात्मक उपसंहार में स्पष्ट रूप से आचार्य बुद्धघोष को इस अट्ठकथा का रचयिता कहा गया है-

''विपुलविसुद्धबुद्धिना बुद्धघोस इति
कतायं धम्मपदट्ठकथा।''[4]

जी. पी. मललसेकर ने अपनी पुस्तक 'दि पालि लिटरेचर ऑफ सीलोन' में 'पूजावलिय' का उल्लेख करते हुए कहा है कि 'आचार्य बुद्धघोष ने धम्मपदट्ठकथा राजा सिरिनिवास और मंत्री महानिगम की प्रार्थना करने पर लिखा था।'[5] पाश्चात्य विद्वान बुलिंगम ने धम्मपदट्ठकथा के 'नरककुण्ड' की कथा का अंत:साक्ष्य देते हुए इसका समय 450 ई. निश्चित किया है।[6] बुलिंगम ने यह साक्ष्य बाल वग्ग के अन्यतर पुरुष की कथा के आधार पर दिया है। डॉ. शिवचरणलाल जैन धम्मपदट्ठकथा को 425 ई. से 430 ई. के बीच की रचना मानते हैं।[7] धम्मपदट्ठकथा में व्याख्या का महत्व गौण और कथा प्रमुख हो गई है। यह कथात्मक अट्ठकथाओं के समान नाम और अकार मात्र की अट्ठकथा है। वास्तव में यह पौराणिक एवं लोक कथाओं का वृहत संग्रह है। इन संग्रहों में बौद्धकालीन लोक जीवन संबंधी सामग्री प्राप्त होती है ।

**मूल आलेख :**

भारतीय संस्कृति का मूल बिंदु लोक है । 'लोक' शब्द का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। इससे पता चलता है कि लोक शब्द का प्रचलन वैदिक काल से ही रहा है। ऋग्वेद में लोक शब्द का प्रयोग 'जीव' एवं 'स्थान' के लिए हुआ है ।

''नाभ्या आसीदंतरिक्षं शिर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्द्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकां अकल्पयन्।।[8]

यहाँ 'लोक' शब्द का उल्लेख अनेक अर्थों में हुआ है, किंतु उसमें एक अर्थ जन साधारण भी लिया गया है। 'लोक' शब्द संस्कृत के लोक दर्शन धातु से बना है, जिसका अर्थ है देखने वाला। विद्वानों ने लोक को 'ग्राम' और 'जन' शब्दों का समानार्थी शब्द माना है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लोक शब्द का अर्थ इस संदर्भ में लेते हैं- 'लोक' शब्द का अर्थ 'जनपद' या 'ग्राम्य' नहीं है, बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है, जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचि संपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वालों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं।[9]

बौद्धकालीन समाज में मनुष्य नगर एवं ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में निवास करता था। धम्मपदट्ठकथा में नगरीय एवं ग्रामीण दोनों जीवन का स्वरूप देखा जा सकता है । तत्कालीन समाज में नगर एवं ग्रामीण दोनों ही जीवन लोक से जुड़े हुए थे, अपितु ग्रामीण क्षेत्र नगर के निकट ही बसे हुए थे और इसकी संख्या अधिक थी। समाज वर्णों में विभक्त था। वर्ण-व्यवस्था का प्रभाव ग्रामीण क्षेत्रों में देखा जा सकता है। ग्रामीण क्षेत्र में अनेक स्थलों में लोगों के नाम गाँवों के नाम पर रखे जाते थे। धम्मपदअट्ठकथा में ऐसे उल्लेख अनेक कथाओं में प्राप्त होते हैं। 'सारिपुत्रस्थविर' की कथा में राजगृह के उपतिष्य ग्राम एवं कोलित ग्राम के नाम पर दो ब्राह्मणी मित्र के पुत्रों का नाम रखा गया। दोनों का जन्म एक ही दिन हुआ था और नाम संस्कार भी एक ही दिन हुआ। यथा- ''नामग्गहणदिवसे सारिया ब्राह्मणिया पुत्तस्स उपतिस्सगामके जेट्ठकुलस्स पुत्तता उपतिस्स ति नामं करिंसु। इतरस्स कोलितगामे जेट्ठकुलस्स पुत्तता कोलितो ति नामं करिंसु।''[10] (अर्थात नाम संस्कार के दिन, सारिया ब्राह्मणी के पुत्र का नाम, उपतिष्यग्राम के ज्येष्ठ कुल का पुत्र होने के कारण 'उपतिष्य' नाम रखा गया और दूसरे का कोलितग्राम के ज्येष्ठ कुल के पुत्र होने के कारण 'कोलित' रखा गया।)

तत्कालीन समाज विभिन्न जातियों में विभक्त था। लोक में जाति के आधार पर कार्यों का विभाजन किया

गया था। कुंभकार एक प्रमुख जाति थी । तिष्यस्थविरकथा में कुंभकार एवं कुंभकार द्वारा बर्तन निर्मित करने की शाला 'कुंभकारशाला'[11] का उल्लेख भी हुआ है । मिट्टी के बर्तन के अलावा कुंभकार द्वारा मिट्टी के हाथी, घोड़ा आदि शिल्पकारी की जाती थी।[12] समाज में जुलाहा प्रमुख जाति के रूप में निवास करती थी, जिसका काम वस्त्र बनाना था। जुलाहे को पेसकार कहा जाता था। 'पेसकारधीतावस्तु' कथा में जुलाहे एवं उसकी वस्त्र निर्माणशाला का वर्णन हुआ है।[13]

तत्कालीन समाज में लकड़ी के कार्य करने वाले को बढ़ई कहा जाता था। बढ़ई का कार्य लकड़ी से विविध शिल्प तैयार करना होता था। धम्मपदअट्ठकथा की अनेक कथाओं में बढ़ई द्वारा अनोखे ढंग का शिल्प निर्माण करने के उल्लेख प्राप्त होते हैं। 'बोधिराजकुमारवस्तु' की कथा में बढ़ई द्वारा लकड़ी के द्वारा खास तरह के गरुड़ पक्षी के आकार का यंत्र निर्माण का वर्णन है, जो उड़ता भी था। कथा यह है कि एक राजकुमार अपने लिए ऐसे प्रासाद (भवन) का निर्माण करवाता है, जो अन्यत्र कहीं नहीं है। इस भय से कि वैसा भवन कोई दूसरा न बना ले, राजकुमार निर्माण करने वाले बढ़ई (शिल्पकार) को उसी के घर में बंद कर देता है और बाहर से सुरक्षा रख देता है। इससे परेशान होकर वह शिल्पकार एक ऐसे गरुड़ पक्षीनुमा काठ के यंत्र का निर्माण करता है, जिसमें वह अपनी पत्नी और बच्चों को लेकर सपरिवार उड़ जाए। और एक दिन वह प्रासाद की खिड़की से उस गरुड़ पक्षीनुमा काष्ठ यंत्र से उड़ जाता है। ''गब्भे निसीदित्वा तानि दारूनि तच्छेत्वा अत्तनो पुत्तदारस्स अन्तोनिसीदनयोग्गं गरुळसकुण कत्वा आहारवेलाय पन भारियं आह : गेहे विज्जमानकं सब्ब विक्कीणित्वा हिरञ्ञसुवण्णं गण्हाही' ति।.....भुत्तपातरासो पुत्तद्वारं सकुणस्स कुच्छियं निसीदपेत्वा वातपानेन निक्खमित्वा पलायि।''[14]

माँसाहरी भोजन बौद्धकालीन लोक जीवन में प्रचलित था। ग्रामीण क्षेत्र में बहुत से ऐसे सामान्य जन थे, जो माँस क्रय-विक्रय कर अपना जीवन यापन करते थे । पशुओं की हत्या कर उनके माँस क्रय-विक्रय करने वालों को 'गोघातक' कहा जाता था। ''सावत्थियं किर एको गोघातको गावो वधित्वा वरमंसानि गहेत्वा पचापेत्वा पुत्तदारकेहि सिंद्धि निसीदित्वा मंसं च खादति, मूलेन च विक्किणत्वा जीवितं कप्पेसि।''[15] (श्रावस्ती में निवास करने वाला एक वधक (कसाई) पशुओं को मारकर, उसका अच्छा माँस अपने परिवार में लाकर साथ में खाता तथा बाकी बचे माँस को बेचकर जीवनयापन करता था।) इसके अलावा मछुआरा प्रमुख जाति थी, जिसका कार्य मछली मारकर जीवन निर्वाह करना होता था। 'उपनन्दशाक्यपुत्तस्थविरवस्तु' की कथा में ऐसे मछुआरे के संदर्भ प्राप्त होते हैं-''अतीतस्मिं अनुतीरचारी च गम्भीरचारी चाति द्वे उद्दा महन्त रोहितमच्छं लभित्वा 'म्यहं सीसं होतु, तव नङ्गुट्ठं'।''[16] (अर्थात अतीत काल में अनुतीरचारी एवं गम्भीरचारी दो मछुआरे हुआ करते थे, उन दोनों को एक दिन बहुत बड़ी रोहू मछली मिली। उसके मिलने के बाद विवाद हो गया कि मैं इसका शिरोभाग लूँगा तू इसका पृष्ठ भाग ले।)

ग्रामीण क्षेत्र में मकान तृणाच्छादित एवं पर्णकुटी दो प्रकार के होते थे। तृणाच्छादित मकान के निर्माण के समय बीच-बीच में छिद्र छोड़ दिया जाता था, जिससे उसमें वर्षा का पानी आर-पार हो जाता था। वह वर्षा के पानी का आघात नहीं सह सकता था। पर्णकुटी वर्षा के अघात को सह सकता था।[17] ग्राम में रस्सी से बने खाट प्रचलित थे। अप्रमाद वर्ग के 'कुम्भघोषकश्रेष्ठी' की कथा में रस्सी से बने खाट का वर्णन हुआ है। खाट का निर्माण लकड़ी पर रस्सी को व्यवस्थित ढंग से लपेट कर किया जाता था। कुम्भघोषकश्रेष्ठी जब अथिति बन कर किसी महिला के घर में रहती है तो वह महिला अपने निजी स्वार्थ के लिए खाट के रस्सी को धीरे-धीरे काटने लगती है-''ति तत्थ वसमाना तिखिणेन सत्थेन तस्स मञ्चवाणं हेट्ठाअटनियं तहं तहं छिन्दि।''[18] (अर्थात उस खाट की रस्सियों को उसने बायीं तरफ से काट दिया।)

बौद्धकालीन ग्रामीण समाज में कृषि मुख्य कर्म था। खेत को हलों से जोत कर खेती की जाती थी। फसलों में धान की खेती मुख्य रूप से की जाती थी।[19] धान की अनेक किस्में भी हुआ करती थीं। सारिपुत्रस्थविर की कथा में महाकाल और चूलकाल दो भाइयों द्वारा विशाल

भूमि में धान की खेती करने का वर्णन प्राप्त होता है। ये दोनों भाई बुद्ध के अनुयायी थे। इन्होंने बुद्ध को धान दान देने का संकल्प लिया था। ''अथेकदिवसं चूळकालो सालिखेत्तं गन्त्वा एकं सालिगब्भं फालेत्वा खादि, तं अतिमधुरं अहोसि। सो बुद्धप्पमुखस्स सङ्घस्स सालिगब्भदानं दातुकामो हुत्वा।''[20] (अर्थात एक दिन चूलकाल धान के खेत में गया और वहाँ उसने धान की बाली तोड़ी, उसमें से अन्न का दाना निकाल उसे चखा, चखने पर उसे धान बहुत स्वादिष्ट लगा। उसने संकल्प किया की धान की बाली से अन्न का दाना निकालकर बुद्ध को दान करेगा।) कृषि उपयोगी सामग्री या औजारों का वर्णन भी धम्मपदट्ठकथा में आया है । 'अनभिरतभिक्षुवत्थु' की कथा में खेती की सामग्री के लिए कार्षापण (मुद्रा) के खर्चे का हिसाब करता युवा कहता है- ''पारिभोगत्थाय ताव पण्णासं ठपेहि। द्विन्नं गोणानं अत्थाय चतुवीसति, एत्तकं युगनङ्गलत्थाय, एत्तकं कुद्दालवासि फरसु अत्थाया।''[21] (अर्थात 50 कार्षापण भोजन सामग्री के लिए, 24 कार्षापण दो बैलों को खरीदने के लिए, इतना बीज के लिए, इतना हल आदि कृषि उपकरणों के लिए, इतना कुदाल, वासी, फरसा आदि के लिए।) धान की खेती कर ऊखल में कूटकर एवं उसे संग्रहीत कर कोठरी में रखा जाता था।[22]

ग्रामीण क्षेत्रों के बहुत से लोग पशु पालन करते थे । गौ पालन समाज में अत्यधिक प्रचलित था। गोपालकों को गोपालक परिवार कहा जाता था। ये गोपालक समय-समय पर उत्सव भी मनाते थे। धम्मपदअट्ठकथा के सामावतीवस्तु की कथा में गोपालकों द्वारा मनाया जाने वाला उत्सव 'धेनुमङ्गल' का वर्णन मिलता है- ''तं दिवसं च गोपालकस्स धेनुमङ्गलं होति गोपालकस्स गेहे निबंद्ध एको पच्चेक बुद्धो भुञ्जति। सो तं भोजेत्वा मङ्गलकासि। बहु पायसो पटियत्तो होती।''[23] (अर्थात इस दिन गौ पालक परिवार में धेनुमङ्गल उत्सव मना रहे थे। इस उत्सव में प्रत्येक बुद्ध उनके यहाँ भिक्षा ग्रहण करते थे। उत्सव में गोपालकों का परिवार बुद्ध को भोजन कराते हैं। इस अवसर पर खीर बहुत बनी थी।) यहाँ लोक प्रचलित उत्सव एवं लोक त्योहारों में बनने वाले स्वादिष्ट भोजनों में खीर प्रमुख था।

इसके अलावा पञ्चशतदारकवस्तु की कथा में ग्रामीण लोगों द्वारा छोटे स्तर पर मनाए जाने वाले उत्सवों का उल्लेख मिलता है।[24] उत्सवों के भोजन में मालपुआ सबसे प्रचलित भोजन था। धम्मपदअट्ठकथा की अनेक कथाओं में पुआ का उल्लेख मिलता है। साथ ही इसमें लोक प्रचलित उत्सवों, त्योहारों एवं खेलों का भी पर्याप्त उल्लेख मिलता है ।

लोक में संस्कार का विशेष महत्व है। संस्कार का सामान्य अर्थ शुद्धि अथवा स्वच्छता से है। भारत में प्राचीन काल से संस्कारों का संयोजित विधान रहा है। जीवन में इसका संयोजना मनुष्य के वैयक्तिक एवं सामाजिक विकास के लिए किया गया है। मनुष्य का आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन संस्कारों की निष्पन्नता से प्रभावित होता रहा है। अत: ''संस्कार का आधार धर्म है, जिसके माध्यम से मनुष्य अपने जीवन को उन्नत, परिष्कृत और सुसंस्कृत बनता है।''[25] मनुस्मृति (2/16) और न्यायस्मृति (1/15) के अनुसार संस्कारों की संख्या सोलह मानी जाती है। इसमें चार संस्कार का विशेष महत्व है- जन्म संस्कार, उपनयन संस्कार, विवाह संस्कार, अंत्येष्टि संस्कार। धम्मपदट्ठकथा की कथाओं में इन सभी संस्कारों का उल्लेख मिलता है। भारतीय लोक जीवन में शिशु के जन्म से पूर्व ही गर्भाधान संस्कार किया जाता है। स्त्री जब गर्भ धारण करती है, तब परिवार वाले उत्सव आदि मनाकर विविध विधान करते हैं, उसे ही गर्भाधान संस्कार कहा जाता है। धम्मपदट्ठकथा के 'वनवासिकतिस्ससामणेरवत्थु' की कथा में गर्भ धारण करने के बाद स्त्री की यह दोहद (गर्भवती स्त्री की इच्छा को पूर्ण की जाती थी) होती है कि वह अपने गर्भ संरक्षण के लिए पाँच सौ भिक्षुओं को भोजन पर निमंत्रण करें। ''तस्स अच्चुण्हअतिसीतअतिअम्बिलादिपरिभोगं वज्जेत्वा सुखेन गब्भं परिहरियमानाय एवरूपो दोहळो उप्पज्जि-'अहो वताहं सारिपुत्तत्थेरप्पमुखानि पञ्च भिक्खुसतानि निमन्तेत्वा असम्भिन्नखीरपायसं दत्वा सयं पि कासायवत्थानि परिदहित्वा सुवण्णसरकं आदाय आसनपरियन्ते निसीदित्वा एत्तकानं भिक्खूनं उच्छिट्ठपायसं परिभुञ्जेय्यं' ति।''[26] (अर्थात गर्भधारण के बाद माता ने अधिक उष्ण, अधिक शीतल, अधिक खट्टे खाद्य पदार्थ

को खाना छोड़ दिया। बच्चे अच्छे एवं सुख पूर्ण जन्म लें इसके लिए उसे यह दोहद उत्पन्न हुआ कि ''क्यों न मैं सारिपुत्र स्थविर के पाँच सौ भिक्षुओं को निमंत्रित करूँ एवं उसे घर में बैठाकर गाढ़े दूध की खीर आदि भोजन करने के लिए दूँ और स्वयं काषाय वस्त्र पहनकर, स्वर्ण पात्र लेकर भिक्षुओं के संग बैठकर उच्छिष्ट खीर खाऊँ।'' इसी कथा में आगे शिशु के जन्म के बाद जन्म संस्कार संबंधी वर्णन है।

जन्म संस्कार में नामकरण संस्कार प्रमुख है। शिशु के जन्म के पश्चात उसका नाम रखा जाता है। धम्मपदट्ठकथा की अनेक कथाओं में नामकरण संस्कार का वर्णन हुआ है। 'कुमारकाश्यपमातृस्थविरी' की कथा में तरुणी द्वारा पुत्रोत्पत्ति के बाद उसका नामकरण किया जाता है। ''नामगहणदिवसे चस्स 'कस्सपो' ति नामं कत्वा कुमारपरिहारेन वड्ढित्ता 'कुमारकस्सपो' ति सञ्ञानिंसु।''[27] (नामग्रहण संस्कार के दिन शिशु का नाम 'काश्यप' रखा गया तथा इस नाम के साथ 'कुमार' विशेषण लगाकर लोग उसे 'कुमार काश्यप' संज्ञा से बुलाने लगे।)

विवाह संस्कार सामाजिक दृष्टिकोण से लोक जीवन का महत्वपूर्ण संस्कार है। यह एक प्रकार से पारिवारिक उत्सव भी है। धम्मपदट्ठकथा की अनेक कथाओं में विवाह संस्कार का वर्णन हुआ है। तत्कालीन समाज में विवाह को उत्सव की तरह मनाया जाता था। 'विशाखावत्थु' की कथा में विवाह संस्कार के भव्य रूप में मनाए जाने का वर्णन हुआ है। 'मारधीतावत्थु' में अंतर्जातीय एवं सामान्य ढंग से विवाह संस्कार के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं।[29]

अंत्येष्टि संस्कार अंतिम संस्कार है, जो मृत्यु के बाद किया जाता है। धम्मपदट्ठकथा में मृत्यु के बाद किए जाने वाले संस्कारों के संदर्भ प्राप्त होते हैं। 'महाकालस्थविर' की कथा में व्याधि के कारण युवती की मृत्यु युवावस्था में ही हो जाती है। उसके परिवार वाले मृत्यु संस्कार के लिए सामग्री श्मशान में दे देते हैं- ''तमेनं ञातकादयो दारुतेलादीहि सद्धिं सायं सुसानं नेत्वा सुसानगोपिकाय- 'इमं झापेही'।''[30] (अर्थात युवती को मृत्यु के पश्चात उसके संबंधियों ने घी, तेल आदि के साथ सायंकाल में श्मशान घाट में सौंपकर कहा कि इसे जला दो।) धम्मपदट्ठकथा की अनेक कथाओं में ऐसे संदर्भ आए हैं, जहाँ बुद्ध यौवनावस्था में मृत्यु को प्राप्त सुंदर, युवती-युवक के शरीर को श्मशान घाट की रक्षिका को मृत शरीर को बिना संस्कार किए बहुत दिनों तक रखने के लिए कहते हैं। इसके पीछे बुद्ध का उद्देश्य अपने भिक्षु शिष्यों को अर्हत्व की शिक्षा देना है। वे प्रतिदिन अपने भिक्षुओं को उस मृत शरीर को दिखाते हैं, जिससे भिक्षु मृत शरीर में हो रहे बदलाव से परिचित हों और अपने रूप एवं शारीरिक सौंदर्य के प्रति अहंकार का भाव समाप्त कर, एकाग्र होकर सम्यक समाधि के लिए ध्यान कर सकें ।

तत्कालीन लोक जीवन की समस्याओं के स्वरूप भी धम्मपदट्ठकथा में प्राप्त होते हैं। बाढ़ तत्कालीन लोक जीवन की एक प्रमुख समस्या थी। अनेक कथाओं एवं गाथाओं में यह उल्लेख आया है कि बाढ़ के पानी से पूरा गाँव बह जाता था। बुद्ध द्वारा अपने भिक्षु शिष्यों को दिए गए उपदेशों में इसे देखा सकते हैं-

''तं पुत्तसुसम्मतंम, व्यासत्तमनसं नरं ।
सुत्तं गामं महोघो व, मुच्च आदाय गच्छती ।।''[31]

(अर्थात जिस प्रकार सोये हुए ग्राम को विशाल जलप्रवाह बहा ले जाता है, उसी प्रकार पुत्र और पशु धन में आसक्त मनुष्य को मृत्यु लेकर चली जाती है।)

लोक जीवन में लोक विश्वास एवं लोक मान्यताओं का विशेष महत्व है। तत्कालीन समाज में लोग भूत-प्रेत, जादू-टोना, चमत्कार[32], यक्ष-यक्षणी[33] आदि के अस्तित्व पर विश्वास करते थे। उनसे भयभीत भी रहते थे। वे वृक्ष देवता[34], गण देवता, नाग देवता[35], इंद्र देवता[36] आदि की पूजा भी करते थे और उनसे संतान उत्पत्ति आदि फल की कामना करते थे। तत्कालीन लोक में मान्यता थी कि जो व्यक्ति पाप कर्म करके मृत्यु को प्राप्त करता है वह भूत-प्रेत बन जाता है और उसे वर्षों तक ऐसे ही भटकना पड़ता है। भूत-प्रेत को पालि धम्मपदट्ठकथा में अमानुष कहा गया है। ऐसे अमानुषों का वर्णन अनेक कथाओं में हुआ है।[37]

अत: स्पष्ट है कि धम्मपदट्ठकथा में बौद्धकालीन लोक जीवन का स्वरूप परिलक्षित होता है। तत्कालीन लोक

जीवन में कृषि कर्म का विशेष महत्व था । समाज वर्णों एवं जातियों में विभक्त था और जातियों के आधार पर पेशे बँटे हुए थे।

वर्ण व्यवस्था का स्वरूप वर्तमान समाज में भी प्राप्त होता है एवं ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी लोग अपने जातिगत पेशे का कार्य करते हैं। विविध शिल्पकारों, कारीगरों द्वारा बहुमूल्य एवं अद्भुत शिल्पकारी के नमूने प्राप्त होते हैं। इसमें बढ़ई द्वारा पक्षीनुमा यान बनाने का उल्लेख महत्वपूर्ण है। तत्कालीन समाज में लोग भूत-प्रेत, चमत्कार आदि पर विश्वास करते थे। वृक्ष, नाग, इंद्र आदि देवताओं की पूजा की जाती थी, जो वर्तमान लोक जीवन में भी प्रचलित है। धम्मपदट्ठकथा की कथाओं में लोक प्रचलित संस्कारों जैसे- गर्भाधान, जातक संस्कार, नामसंस्कार, विवाह विधान एवं अंत्येष्टि के विधान का पर्याप्त वर्णन मिलता है।

ये परंपरा लोक जीवन से वर्तमान में भी जुड़ी हुई है। अत: कहा जा सकता है कि धम्मपदट्ठकथा में तत्कालीन जीवन संबंधी जो जानकारी मिलती है, वह ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक रूप से अत्यंत महत्वपूर्ण है । ❑

**संदर्भ :**


- डॉ. महेंद्रनाथ सिंह, बौद्ध तथा जैन धर्म : धम्मपद और उत्तराध्ययन सूत्र एक तुलनात्मक अध्ययन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, (संस्करण : 1990), पृ.- 16
- डॉ. भरत सिंह उपाध्याय, पालि साहित्य का इतिहास, हिंदी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग, (संस्करण : 2013), पृ.- 599
- ई. डब्लू. बुलिंगम, बुद्धिस्ट लीजेंडस, भूमिका से, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, (संस्करण = 1921), पृ- 14
- संपा. डॉ. परमानन्द सिंह, अनु. स्वामी द्वारिकादासशास्त्री, धम्मपदट्ठकथा, चतुर्थ भाग- 4, निगमनकथा, बौद्ध आकर ग्रंथमाला, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, (संस्करण: 2000), पृ.- 2098
- डॉ. जी. पी. मललसेकर, दि पालि लिटरेचर ऑफ सीलोन, एम. डी. गुनासेना एंड को. लिमिटेड, कोलोम्बो, (संस्करण: 1958), पृ.- 96
- ई. डब्लू. बुलिंगम, बुद्धिस्ट लीजेंडस, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, (संस्करण : 1921), भाग- 5, कथा 1
- डॉ. शिवचरणलाल जैन, आचार्य बुद्धघोष और उनकी अट्ठकथाएँ, अल्पना प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली, (संस्करण: 1968), पृ.- 394
- ऋग्वेद, 10, 90, 24
- हजारी प्रसाद द्विवेदी, जनपद, वर्ष 1, अंक- 1, पृ.- 65
- संपा. डॉ. परमानंद सिंह, अनु. स्वामी द्वारिकाप्रसादशास्त्री, धम्मपदट्ठकथा-प्रथम भाग, बौद्ध आकर ग्रंथमाला, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, (संस्करण : 2000), पृ.- 128
- वही, पृ.- 58
- वही, द्वितीय भाग, पृ.- 626
- वही, तृतीय भाग, पृ.- 1236
- वही, पृ.- 1170
- वही, पृ.- 1488
- वही, पृ.- 1178
- वही, पृ.- 174
- वही, प्रथम भाग, पृ.- 323
- वही, पृ.- 288
- वही, पृ.- 138
- वही, तृतीय भाग, 1336
- वही, पृ- 196
- वही, पृ.- 242
- वही, तृतीय भाग, पृ.- 1418
- जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, (संस्करण : 1974), पृ.- 254
- संपा. डॉ. परमानंद सिंह, अनु. स्वामी द्वारिकाप्रसादशास्त्री, धम्मपदट्ठकथा-द्वितीय भाग, बौद्ध आकर ग्रंथमाला, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, (संस्करण : 2000), पृ.- 720
- वही, तृतीय भाग, पृ. 1188
- वही, प्रथम भाग, पृ.- 540
- वही, तृतीय भाग, पृ.- 1268
- वही, प्रथम भाग, पृ.- 102
- वही, चतुर्थ भाग, पृ.- 1632
- वही, तृतीय भाग, पृ.- 1544
- वही, प्रथम भाग, पृ.- 68
- वही, द्वितीय भाग, पृ.- 628
- वही, पृ.- 612
- वही, पृ.- 682
- वही, तृतीय भाग, पृ.- 1672

आलेख

# हिंदी एवं मराठी काव्य में चित्रित राष्ट्रीय चेतना का
## तुलनात्मक अध्ययन : दिनकर एवं कुसुमाग्रज के विशेष संदर्भ में

**डॉ. संदीप रणभिरकर**

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
बान्दरसिंदरी, किशनगढ़- 305801
जिला-अजमेर (राजस्थान)
मो. 8503891642


भारतीय साहित्य में राष्ट्रीयता की भावना प्राचीन काल से ही चली आ रही है। प्राणी जिस स्थान पर रहता-बसता है, उस स्थान से उसे सहज ही प्रेम हो जाता है। 'विष्णुपुराण' में राष्ट्रीय भावना की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है -

**''किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमि भागे**
**स्वर्गापवर्गस्पद् भार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषः सुरघात।''**[1]

अर्थात जो लोग भारतभूमि पर जन्म लेते हैं वे धन्य हैं। देवता भी उनका कीर्तिगान करते हैं, क्योंकि भारत में जन्म लेकर ही स्वर्ग या अपवर्ग की प्राप्ति हो सकती है। स्वयं देवताओं को भी इसके लिए भारत आना पड़ता है। अतः भारतवासी स्वर्ग के देवताओं से भी अधिक भाग्यशाली हैं। रामचरित उपाध्याय ने भी इसी बात को इस प्रकार कहा है-

**''नहीं स्वर्ग की चाह मुझे है, नहीं नरक की भीति,**
**बढ़ती रहे सदा मेरी बस, जन्मभूमि में प्रीति।''**[2]

जाति, धर्म, संप्रदाय, भाषा और संस्कृति की विभिन्नताओं के बावजूद वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक भारत का राष्ट्रीय स्वरूप अखंडित रहा है। कभी-कभी इसकी भौगोलिक सीमाओं में फेरबदल अवश्य हुआ है, किंतु भिन्नता में एकता की अनुभूति भारत को एक सूत्र में बांधे हुए है। भारत में राष्ट्रीयता के विकास में भारत की प्राचीन सामाजिक सांस्कृतिक धरोहर, धार्मिक तथा ऐतिहासिक पहलू सहायक हुए हैं। अँग्रेजों के शासन से मुक्ति पाकर स्वतंत्र होने की आकांक्षा, जिसे हम सभी भारतीयों की समान राजनीतिक चेतना भी कह सकते हैं, यह स्वतंत्रता प्राप्ति और उसकी रक्षा की इच्छा ने भारतीय राष्ट्रीयता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। राष्ट्रीयता की भावना को साहित्य में विकसित करने में सभी भाषाओं के साहित्यकारों का महत्वपूर्ण योगदान है। भारत के संदर्भ में परतंत्रता को नष्ट करने और स्वतंत्रता को पाने की आकांक्षा से प्रेरित साहित्यकारों ने साहित्य में राष्ट्रीय-भावना को

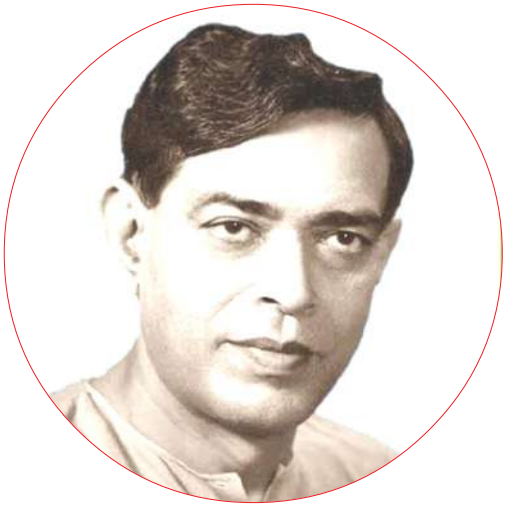

विकसित किया।

मराठी और हिंदी दोनों आर्य भाषाएँ होने के कारण दोनों में संरचना एवं साहित्य की दृष्टि से अनेक समानताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। हिंदी और मराठी काव्य प्रवृत्तियों में भी अनेक समानताएँ देखी जा सकती हैं। जहाँ तक राष्ट्रीयता का प्रश्न है- इन दोनों भाषाओं में राष्ट्रीय-भावना की विस्तृत परंपरा को देखा जा सकता है। हिंदी में अत्यंत प्राचीन काल से राष्ट्रीय-भावनाओं की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। आदिकाल में चारण कवियों में राष्ट्रीय भाव दृष्टिगोचर होते हैं। भक्ति काव्य में भले ही भक्ति का प्राधान्य हो, किंतु यह काव्यधारा राष्ट्रीयता से शून्य नहीं है। भक्त कवि न केवल राष्ट्रीय एकता हेतु कृतसंकल्प थे, अपितु निराश-हताश जन-सामान्य में इन कवियों ने आशा का संचार किया। आगे श्रृंगार रस से सराबोर रीतिकाल में भी भूषण जैसे कवियों की ओजस्वी वाणी में राष्ट्रीय भावना प्रस्फुटित होती है। आधुनिक काल में भारतेंदु, मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध, प्रसाद, पंत, निराला, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', दिनकर आदि के काव्य में राष्ट्रीय चेतना परिलक्षित होती है। दिनकर ने अपने पूर्ववर्ती कवियों से प्रेरणा ग्रहण कर राष्ट्रीय भावधारा को एक नूतन दिशा प्रदान की। दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय चेतना प्रखर रूप में दिखाई देती है । अपितु मैथिलीशरण गुप्त के बाद राष्ट्रीय भावनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति दिनकर के काव्य में देखी जा सकती है।

मराठी काव्य में भी प्रारंभ से ही नामदेव, तुकाराम, एकनाथ आदि संत कवियों ने राष्ट्रीय-भावना का अलख जगाया। मराठी संत कवियों का समूचा काव्य जनता के लिए समर्पित था। इन कवियों ने अपनी रचनाधर्मिता से न केवल जनता में राष्ट्रीय भावना का प्रस्फुटन किया, अपितु उन्हें जागरूक कर उनका पथ-प्रदर्शन भी किया। मराठी का आधुनिक काल भी राष्ट्रीय भाव एवं विचारों से भरा हुआ है। आधुनिक काल में सावरकर, केशवसूत, साने गुरूजी, गोविंदाग्रज, कुसुमाग्रज आदि कवियों में राष्ट्रीय-भावना प्रचुर मात्रा में दिखाई पड़ती है। आधुनिक कवियों ने राष्ट्रीय भावों से युक्त कविताओं का निर्माण कर जनमानस को राष्ट्रीय-भावनाओं से आंदोलित किया है। मराठी के प्राचीन तथा आधुनिक कवियों ने राष्ट्रप्रेम, राष्ट्र की एकता, देश का गौरवमयी इतिहास, सामाजिक न्याय, क्रांति की भावना, अँग्रेजों की दमन-नीति, अन्याय का विरोध आदि विषयों को आधार बनाकर राष्ट्रीय-भावना से ओत-प्रोत काव्य का सृजन किया है। फलत: मराठी काव्य में राष्ट्रीय-भावना से युक्त काव्य विपुल मात्रा में दिखाई देता है।

दिनकर हिंदी के तथा कुसुमाग्रज मराठी के श्रेष्ठ कवि हैं। दोनों कवि ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित हैं। दोनों के जन्म काल, रचना काल एवं रचनाधर्मिता में समानता है। दोनों कवियों की सशक्तता इसमें है कि दोनों ने

बाह्य-प्रभावों से अभिभूत होकर भी, कभी भी आंतरिक स्वरों को परिवर्तित नहीं होने दिया। साहित्य एवं जगत में आए विविध तूफानों की परवाह किए बगैर इन्होंने वादों एवं आंदोलनों से स्वयं को दूर कर, सामाजिक स्थिति को आधार बनाकर काव्य-सृजन किया। इन्होंने अपने काव्य में राष्ट्रीयता को प्रबल बनाने के लिए अतीत के गौरव, पराक्रम, शौर्य, संपन्नता आदि का स्मरण किया है। राष्ट्रीयता के विकास के लिए दोनों ने ही राष्ट्रीय एकता के महत्व को समझाया है। दोनों कवियों की काव्य यात्रा अत्यंत प्रदीर्घ रही है, जहाँ विषय की विविधता है। दोनों मुख्य रूप से ओज, पौरुष, क्रांति तथा संघर्ष के कवि हैं। उनका इस बात पर प्रबल विश्वास था कि आर्थिक वैषम्य ही अन्याय का सबसे बड़ा कारण है और इस अन्याय को मिटाने के लिए क्रांति की आवश्यकता है। एक ओर तो वे शोषित, पीड़ित वर्ग के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हैं, उनके प्रति जागरूक हैं तो दूसरी ओर भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं उसके गौरवशाली इतिहास के प्रति भी इनकी गहन आस्था है। इनका अटूट विश्वास है कि सच्चे कर्मयोगी में अंधकार में भी कर्मज्योति फैलाकर सब को जगा देने की क्षमता होती है। इनके काव्य के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि दोनों के अभिव्यक्ति का माध्यम (भाषाएँ) भले ही भिन्न हों, किंतु तत्कालीन भावधारा लगभग एक थी। अत: इन दो कवियों के काव्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना का तुलनात्मक अध्ययन अत्यंत आवश्यक प्रतीत होता है।

किसी भी राष्ट्र के वर्तमान उन्नत स्वरूप के मूल में उस राष्ट्र के गौरवशाली अतीत की जड़ें समाहित होती हैं। अतीत के स्मरण से वर्तमान देशवासियों को प्रेरणा मिलती है कि वे अपने अतीत वैभव को पुन: प्राप्त करने हेतु संघर्ष करें। राष्ट्रीय भावना को सबल और दृढ़ बनाने के लिए अतीत के महत्व प्रतिपादन की आवश्यकता होती है। अपने अतीत पर उचित गर्व, वर्तमान पर स्वस्थ विश्वास और उज्ज्वल भविष्य की सुंदर आशा ये सभी राष्ट्रीय-भावना को सजीव और सबल बनाते हैं। दिनकर और कुसुमाग्रज इन दोनों कवियों ने राष्ट्र निर्माण में अतीत की भूमिका का सुंदर बखान किया है। दिनकर अपने अतीत प्रेम का वर्णन करते हुए उसके महत्व को स्पष्ट करते हैं-

**''जब भी अतीत में जाता हूँ मुर्दों को नहीं जिलाता हूँ**
**पीछे हटकर फेंकता बाण, जिससे कम्पित हो वर्तमान।।''**[3]

अत: दिनकर केवल गड़े मुर्दे उखाड़ने के लिए अतीत का वर्णन नहीं करते, अपितु उनकी दृष्टि में अतीत वर्तमान को प्रभावित करता है, उसे संबल प्रदान करता है, उसे सही राह दिखाता है। वे अपने काव्य के माध्यम से भारत के गौरवशाली वैभव को पुन: स्थापित करने की प्रेरणा देते हैं और भूतकाल जैसा ही समृद्ध, शक्तिशाली भारत वर्तमान में बनाना चाहते हैं-

**''प्रियदर्शन इतिहास कंठ में आज ध्वनित हो काव्य बने,**
**वर्तमान की चित्रपटी पर भूतकाल संभाव्य बने।''**[4]

किंतु कोई भी राष्ट्र शक्तिशाली तब बनता है, जब उस राष्ट्र के नागरिक वीर, साहसी एवं पराक्रमी होते हैं और सदैव अपने राष्ट्र के लिए बलिदान देने के लिए तत्पर रहते हैं। दिनकर इतिहास के उज्ज्वल पन्ने खोलते हैं-

**''जिसका सारा इतिहास जगमग है,**
**वीरता विद्ध से भरी रग रग है,**
**जिसके इतने बेटे रण झेल चुके हैं,**
**शूली, किरीच, शोलों से खेल चुके हैं।''**[5]

इसी प्रकार कुसुमाग्रज भी अपनी कविताओं में स्वर्णिम अतीत के चित्र उकेरते हैं। साथ ही भारत के वीर पराक्रमियों को स्मरण करते हुए काबुल-कंदहार तक गाड़े गए उनके वीरता के झंडों का उल्लेख करते हुए युवा पीढ़ी के सम्मुख पराक्रम एवं शौर्य की गाथा प्रस्तुत करते हैं-

**''खड़क काळजी घोटुनी तुमचे मनगट बाहू घडलेले**
**कड़े कपारीमधील वणवे उरांत तुमच्या दडलेले**
**काबुल-कंदहार पथावर डंके तुमचे झडलेले**
**शिवतेजाची दीपमाळ पाठीशी आपुल्या पाजळते।''**[6]

कुसुमाग्रज शिवाजी महाराज की प्रेरणा युवाओं को देना चाहते हैं। दिनकर भी शिवाजी महाराज, महाराणा प्रताप, गुरु गोविंद सिंह, राणी लक्ष्मीबाई आदि के पराक्रम का स्मरण करते हैं। कवि कुसुमाग्रज दिनकर के समान ही देशवासियों को महाराणा प्रताप एवं राणी लक्ष्मीबाई के साहस, त्याग एवं स्वाभिमान का स्मरण दिलाते हैं-

**''शयन शिळेवर कदान्नसेवन, प्रतापने का वनी फिरावे,**

**महाल टाकुनि का राणीने गवताच्या गंजीत जळावे।''7**

दोनों ही कवियों ने विविध गौरवमयी अतीत के असंख्य सशक्त चित्र प्रस्तुत किए हैं और देशवासियों को त्याग, पराक्रम, शौर्य, बलिदान आदि की प्रेरणा दी है। किंतु कुसुमाग्रज की तुलना में दिनकर के अतीत गौरव गीत अधिक प्रभावपूर्ण हैं, जो संपूर्ण भारतीय इतिहास की झाँकी प्रस्तुत करते हैं।

राष्ट्रीयता का प्रधान उत्स मातृभूमि के प्रति प्रेम के रूप में दिखता है। भारत की विविध भाषाओं के काव्य में मातृभूमि के प्रति अगाध प्रेम के दर्शन होते हैं। दिनकर और कुसुमाग्रज दोनों के काव्य में भी मातृभूमि के प्रति प्रेमभाव की विविध छटाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। इन कवियों ने अपने वंदनागीतों के माध्यम से भारत के शक्ति, शौर्य, धन, वैभव, धर्म और भक्ति के साथ-साथ उसकी स्वाधीनता का जयघोष किया है।

भारत की स्वतंत्रता के लिए कृतसंकल्प इन दोनों कवियों की दृष्टि में मानव-जीवन का सरस एवं मधुर बसंत, जन्मभूमि के हित में प्राण न्योछावर करने में है। अत: देश पर अपने प्राणों को बलिदान करने वाले वीरों के प्रति ये कवि अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं। भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव, अशफाक आदि वीरों के बलिदान से भारत का ऐतिहासिक क्षितिज उज्ज्वल है। दिनकर इन वीरों का स्मरण करते हुए युवकों को बलिदान की प्रेरणा देते हैं और बलिदान की प्रेरणा खंडित न होने देने का आह्वान करते हैं-

**''जय हो, नव नेता गण ! आओ संग नई आहुतियाँ लाओ,**
**जो कुछ बने फेंकते जाओ, युद्ध जानता नहीं विराम।**
**फिर डंके पर चोट पड़ी है, मौत चुनौती लिए खड़ी है,**
**लिखने लगी आग, अम्बर पर लिखायेगा निज नाम,**
**आनेवालों, तुम्हे प्रणाम।''8**

कुसुमाग्रज के काव्य में भी लगभग यही भाव देखे जा सकते हैं। उनके अनुसार वर्तमान में दिया गया बलिदान ही भविष्य के सुखों की नींव रखेगा। बलिदानों का फल पूरी मानवजाति को निश्चित रूप से सुख-

समृद्धि के रूप में मिलेगा। इसीलिए वे युवकों को बलिदान हेतु प्रेरित करते हैं–

**''यज्ञ चालला हवे कराया दान जीविताचे**
**भविष्यकाळी मिळेल काही सौख्य मानवाला।''**[9]

दिनकर के समान कुसुमाग्रज भी शहीदों के प्रति श्रद्धा भाव व्यक्त करते हैं–

**''जिथे उभे तेथे समरांगन गर्जत करिती जीवन अर्पण**
**अहो, दिव्या बेहोशपणा हा-अभिवादन त्यांना।''**[10]

अँग्रेजों का अन्याय सहने वाले और स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए अनंत दुख झेलने वाले युवकों को भी वे विश्वास दिलाते हैं कि उनका बलिदान अब व्यर्थ नहीं जाएगा। साथ ही आशावाद प्रकट कर वे युवकों में जोश भर देते हैं और यह स्पष्ट कर देते हैं कि स्वतंत्रता की मंजिल अब दूर नहीं है–

**''लेना अनल किरीट भाल पर, ओ आशिक होनेवाले।**
**कालकूट पहले पी लेना, सुधा बीज बोनेवाले!**
**कल होगा इन्साफ यहाँ किसने क्या किस्मत पायी है?**
**मंजिल दूर नहीं अपनी, दु:ख का बोझ ढोनेवाले।''**[11]

जब अन्याय और अत्याचार बढ़ जाता है, स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लग जाते हैं, तब मुक्ति के लिए छटपटाते मनुष्य के मन में विद्रोह की भावना जन्म लेती है। यही विद्रोह क्रांति की शक्ल में प्रस्फुटित होता है। दिनकर एवं कुसुमाग्रज के काव्य में राजनीतिक एवं सामाजिक क्रांति के प्रखर स्वर गुंजायमान होते हैं। इन कवियों ने अपनी ओजस्वी वाणी से युवकों के हृदयों को स्फूर्ति से भर दिया। गांधीजी के सिद्धांतों के प्रति दिनकर की सहमति नहीं थी। भगत सिंह उनके आदर्श थे। अत: अन्याय के दमन हेतु वे हिंसा का समर्थन करते हैं। इस संदर्भ में डॉ. शिवाकांत गोस्वामी लिखते हैं–''कवि का विश्वास था कि विदेशी सत्ता को भारत से बहिष्कृत करने का एकमेव प्रभावी मार्ग क्रांति का मार्ग ही हो सकता है। कवि की यह मान्यता थी कि अनाचार का दमन अनाचार से संपन्न हो सकता है।''[12] भगवान की संतान जब भूख और दरिद्रता से विलखती है, तब रक्तपिपासु पूँजीपतियों को फूँक देने में, सृष्टि का ध्वंस करने में कवि को कोई परहेज नहीं है–

**''जरा तु बोल तो सारी धरा हम फूंक देंगे।**
**पडा जो पंथ में गिरि कर उसे दो टूक देंगे।।**
**कहीं कुछ पूछने बूढ़ा विधाता आज आया।**
**कहेंगे, हाँ तुम्हारी सृष्टि को हमने मिटाया।।''**[13]

दुर्गा माता अत्याचारियों का संहार करने के लिए शस्त्र उठाती है। दिनकर इसी कारण दुर्गा माता से भारतवासियों में शस्त्र उठाने की शक्ति जागृत करने की प्रार्थना 'पराजित पूजा' (हुँकार) में करते हैं। दिनकर के समान कुसुमाग्रज भी संहारक देवता दुर्गा की पूजा में विश्वास रखते हुए सशस्त्र क्रांति को समर्थन देते हैं। इस संबंध में मराठी के प्रसिद्ध साहित्यकार पु.ल. देशपांडे लिखते हैं–''कुसुमाग्रजांच्या प्रतिभेला त्या काळातल्या समीक्षकांनी धगधगत्या यज्ञातून प्रगटनारया असुर संहारिणी दुर्गेच्या स्वरूपात पाहिले।''[14] इस प्रकार आलोचकों ने कुसुमाग्रज की प्रतिभा को असुर संहारक दुर्गा के रूप में देखा, क्योंकि उनकी कविता में अत्याचार का विरोध सशस्त्र मार्ग से करने की प्रेरणा मिलती है। इनका 'विशाखा' काव्य संग्रह एवं 'क्रांति चा जयजयकार' कविता इसका प्रमाण है–

**''कशास आई, भिजविसी डोळे, उजळ तुझे भाल**
**रात्रीच्या गर्भात उद्याचा असे उष:काल**
**सरणावरती आज आमुची पेटतात प्रेते**
**उठतील त्या ज्वालांतुनी भावी क्रांतिचे नेते**
**लोहदंड तव पायामधले खळखळा तुटणार**
**गर्जा जयजयकार क्रांतिचा गर्जा जयजयकार।''**[15]

स्पष्ट है कि दोनों कवियों ने क्रांति का समर्थन करते हुए सशस्त्र आंदोलन पर विश्वास जताया है। साथ ही सुभाषचंद्र बोस, भगत सिंह आदि क्रांतिकारियों के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित की है। अपनी कविताओं के माध्यम से वे भारतीयों को क्रांतिकारियों के प्रति जागृत तथा कृतज्ञ रहने का संदेश देते हैं।

दिनकर एवं कुसुमाग्रज दोनों की राष्ट्रीय चेतना व्यष्टिपरक न होकर समष्टिपरक है, जो भारतीयता के प्राचीन आदर्श, विश्वप्रेम और वसुधैवकुटुम्बकम की भावना की कसौटी पर खरी उतरती है। अत: वे राष्ट्रीय एकात्मता को महत्वपूर्ण मानते हैं। दिनकर धर्म, संप्रदाय आदि किसी भी प्रकार

के विभाजन का विरोध करते हैं। स्वतंत्रतापूर्व विश्व हिंदू परिषद एवं मुस्लिम लीग के रवैये से वे व्यथित थे। उनका मानना था कि राष्ट्रीय एकता में दरार से स्वतंत्रता के स्वप्न पर प्रश्नचिह्न लग जाता है। अपनी व्यथा को शब्दबद्ध करते हुए वे लिखते हैं–

**''हाथ की जिसकी कड़ी टूटी नहीं,**
**पैरों में जिसके अभी जंजीर है।**
**बांटने को हाय, तोली जा रही,**
**बेहया उस कौम की तकदीर है।''**[16]

दोनों कवि समाज में व्याप्त जातीयता का विरोध करते हैं। अँग्रेजों ने भारत में धर्म, जाति, भाषा एवं संप्रदाय का विवाद बढ़ाकर राष्ट्रय एकात्मता को तहस-नहस किया था। अँग्रेजों ने ही हिंदू और मुसलमान के बीच खाई का निर्माण किया, दंगे भड़काए, घृणा–तिरस्कार का बीज बोया था। विभाजन के विवाद से हिंदू–मुसलमान में हुई हिंसा पर व्यथित हृदय से दिनकर लिखते हैं– ''जलाते हैं हिंदु–मुसलमान, भारत की आँखें जलती हैं।''[17] जातिवाद की संकीर्णता एवं धर्मांधता में हिंस्र पशु बनकर एक–दूसरे के खून के प्यासे बने नराधमों को संबोधित करते हुए दिनकर लिखते हैं–

**''ओ बदनसीब इस ज्वाला में आदर्श तुम्हारा जलता है,**
**समझाएं कैसे तुम्हें भारतवर्ष तुम्हारा जलता है।**
**ये छुरे नहीं चलते, छिदती जाती स्वदेश की छाती,**
**लाठी खाकर भारतमाता बे होश हुई जाती।।''18**

इसी प्रकार कुसुमाग्रज भी जातीयता पर व्यंग्य करते हैं। उनके अनुसार महापुरुषों का कार्य किसी जाति विशेष के लिए नहीं होता, अपितु उसमें समूचे राष्ट्रहित का भाव सन्नद्ध होता है। जातीयता के कारण महापुरुषों के कार्य एवं उनके विचारों को अपमानित होना पड़ता है। अत: वे राष्ट्रीय एकता के लिए जातिवाद को सबसे बड़ा खतरा मानते हैं। महापुरुषों के हृदय की वेदना को वाणी प्रदान करते हुए वे लिखते हैं–

**''ज्योतिबा म्हणाले, शेवटी मी झालो फक्त माळ्याचा**
**शिवाजी म्हणाले, मी फक्त मराठ्यांचा**
**आम्बेडकर म्हणाले, मी फक्त बौद्धांचा।''**[19]

राष्ट्र से प्रेम राष्ट्र में रहने वाले लोगों से भी प्रेम है। अत: दोनों कवि सामाजिक दायित्व के प्रति प्रतिबद्ध कवि हैं। इन कवियों की प्रतिबद्धता इनके काव्य में सर्वत्र व्याप्त है। ये कवि दीन, दलितों, श्रमिकों और कृषकों का उद्धार चाहते हैं। इनके मन में पददलित वर्ग का निर्मम शोषण देखकर करुण आक्रोश की ज्वाला धधकती है । इसलिए ये अपने समय के सबसे अधिक जागरूक कवि प्रतीत होते हैं। अत: समान रूप से इनके हृदय में जहाँ क्रांतिपूर्ण ज्वालाएँ प्रस्फुटित होती हैं, वहीं हृदय की अत्यंत कोमल भावनाओं का भी उद्‌गम देखा जा सकता है। शोषित वर्ग की अत्यंत दयनीय दशा को देखकर इनका करुणासिक्त हृदय गा उठता है–

**''श्वानों को मिलता दूध वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं,**
**माँ की हड्डी से चिपक, ठिठुर जाड़ों की रात बिताते हैं,**
**युवती के लज्जा-वसन बेच जब ब्याज चुकाए जाते हैं,**
**मालिक जब तेल-फुलेलों पर पानी सा द्रव्य बहाते हैं।**[20]

कुसुमाग्रज भी आर्थिक विपन्नता के ऐसे ही करुण चित्र प्रस्तुत करते हैं–

**''कुणी भिकारिन आली तेथे**
**नाव कशाचे ? - नाम मात्र ते**
**होती नवथर त्या नवतिला**
**झाकाया नाच वस्त्रही पुरते।''**[21]

समग्रत: दोनों कवियों ने व्यक्तिगत भावनाओं से अधिक राष्ट्रीय भावनाओं को ही अपने काव्य में ध्वनित किया है। दोनों कवियों ने अपनी रचनाओं में आत्मविश्वास एवं आशावाद को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। अटूट आत्मविश्वास एवं आशावाद के आधार पर ही इन्होंने भारतीय मन को प्रेरित करने का प्रयास किया है। वे स्वतंत्रता के लिए सशस्त्र क्रांति का आह्वान करते हैं। दोनों ने जातीयता पर व्यंग्य किया और राष्ट्रीय एकता पर बल दिया तथा भारत के गौरवशाली इतिहास को उद्धृत करते हुए जन–मानस में प्रेरणा जगाने का कार्य किया। दोनों के विचारों के केंद्र में सामाजिक चेतना रही है, अत: दोनों ने सामाजिक दायित्व के प्रति अपनी प्रतिबद्धता का निर्वाह किया।

दिनकर ने जहाँ राष्ट्रीय महापुरुषों का अत्यंत व्यापक रूप में चित्रण किया, वहीं कुसुमाग्रज चुनिंदा महापुरुषों का वर्णन करते हैं। दिनकर राष्ट्र विकास के लिए 'साझी संस्कृति' की बात करते हैं तो कुसुमाग्रज किसी 'साझी

संस्कृति' का उल्लेख नहीं करते। दिनकर की राष्ट्रीय चेतना विकसित होकर अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप धारण करती है, अत: उनकी राष्ट्रीयता में न केवल भारत, अपितु समस्त विश्वकल्याण की भावना निहित है। किंतु दिनकर की तुलना में कुसुमाग्रज की राष्ट्रीय-भावना का स्वरूप सीमित दिखाई देता है। कमोबेश अंतरों को यदि नजरअंदाज किया जाए तो निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि दिनकर एवं कुसुमाग्रज राष्ट्रीय चेतना के सफल संवाहक हैं। अंत में हम इतना ही कह सकते हैं कि दोनों कवियों ने जनमानस में समभाव, आशावाद निर्माण करते हुए एक दिव्य राष्ट्रीय-भावना की ज्योति प्रज्ज्वलित की है। दिनकर के शब्दों में-

**''नए प्रात के अरुण ! तिमिर-उर में मरीचि संधान करो।**
**युग के मूक शैल जागो हुंकारों, कुछ गान करो।।''**[22] ❑

**संदर्भ सूची :**


1. विष्णु पुराण : 2/3/24
2. रामचरित उपाध्याय, राष्ट्रभारती, (राष्ट्रीय विनय) पृ.2
3. दिनकर, मृत्ति तिलक, चक्रवाल प्रकाशन, पटना, सं.1964, पृ.68
4. दिनकर, मंगल आवाहन, सं. रेणुका, उदयाचल प्रकाशन, पटना, सं.1960, पृ.25
5. दिनकर, परशुराम की प्रतीक्षा, उदयाचल प्रकाशन, पटना, सं.1968, पृ.17
6. कुसुमाग्रज, आवाहन, सं. हिमरेषा, देशमुख आणि कंपनी, पुणे, सं. 1964, पृ.31
7. कुसुमाग्रज, कशाला ?, सं. हिमरेषा, देशमुख आणि कंपनी, पुणे, सं. 1964, पृ.68
8. दिनकर, प्रणति, सं. हुँकार, उदयाचल प्रकाशन, पटना, सं.1960, पृ.56
9. कुसुमाग्रज, सैनिक, सं. किनारा, कोंटीनेंटल प्रकाशन, पुणे, सं. 1952, पृ.61
10. कुसुमाग्रज, मेघांची सेना, सं. किनारा, कोंटीनेंटल प्रकाशन, पुणे, सं. 1952, पृ.125
11. दिनकर, अनल किरीट, सं. चक्रवाल, उदयाचल प्रकाशन, पटना, सं.1956, पृ.55
12. डॉ. शिवाकांत गोस्वामी, दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना, प्रगति प्रकाशन, आगरा, 1985, पृ.199
13. दिनकर, दिगंबरी, सं. हुँकार, उदयाचल प्रकाशन, पटना, सं.1960, पृ.26
14. पु.ल. देशपांडे (सं), विशाखाचे दिवस, कुसुमाग्रज गौरव ग्रंथ, प्रकाशक सार्वजनिक वाचनालय, नाशिक, सं.1996, पृ.170
15. कुसुमाग्रज, क्रांति चा जयजयकार, सं. विशाखा, कोंटीनेंटल प्रकाशन, पुणे, सं. 1993, पृ.41
16. दिनकर, तकदीर का बँटवारा, सं. हुँकार, उदयाचल प्रकाशन, पटना, सं.1960, पृ.86
17. दिनकर, सामधेनी, उदयाचल प्रकाशन, पटना, सं.1975, पृ.31
18. वही, पृ.29
19. कुसुमाग्रज, अखेर कमाई, सं. मुक्तायन, पॉपुलर प्रकाशन, मुंबई, सं. 2000, पृ.109
20. दिनकर, हुँकार, उदयाचल प्रकाशन, पटना, सं.1960, पृ.73
21. कुसुमाग्रज, किनारा, कोंटीनेंटल प्रकाशन, पुणे, सं. 1952, पृ.45
22. दिनकर, हुँकार, उदयाचल प्रकाशन, पटना, सं.1960, पृ.2

अवलोकन

# गुरदयाल सिंह के उपन्यास 'परसा' में सामाजिक यथार्थ का विश्लेषण

**श्यामसुंदर**

शोधार्थी, हिंदी विभाग,
पंजाब केंद्रीय विश्वविद्यालय,
बठिंडा-151001, मो. 8875507560
ईमेल : sshyamsunder575@gmail.com

**डॉ. राजेंद्र कुमार सेन**

सह प्रोफेसर व शोध निर्देशक,
हिंदी विभाग भाषाएँ, साहित्य
एवं संस्कृति विद्यापीठ
पंजाब केंद्रीय विश्वविद्यालय,
बठिंडा-151001, मो. 09888618975
ईमेल : rajinderkumar.sen@gmail.com

**सारांश :**

साहित्य मानवीय जीवन का सक्रिय प्रतिबिंब होने के साथ-साथ जीवन के विश्लेषण का आधार भी है। साहित्य के द्वारा तत्कालीन समाज के विविध आयामों का तथ्यपरक मूल्यांकन भी किया जा सकता है। साहित्य में घटनाओं एवं पात्रों के द्वारा साहित्यकार समाज के सच को यथार्थपरक दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। पंजाबी साहित्य में गुरदयाल सिंह यथार्थपरक लेखन में एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। पंजाबी कथा साहित्य एवं आलोचना में गुरदयाल सिंह का अपना विशिष्ट स्थान है। ज्ञानपीठ अलंकरण से पुरस्कृत गुरदयाल सिंह ने अपने लेखन द्वारा पंजाब के मालवा अंचल के पंजाबी जीवन के यथार्थ को उभारने का कार्य किया है। इनके उपन्यासों में 'परसा' एक प्रमुख उपन्यास है, जिसके पात्र मालवा अंचल के तत्कालीन समाज को उद्घाटित करते हैं। प्रस्तुत शोध पत्र गुरदयाल सिंह के उपन्यास 'परसा' में सामाजिक यथार्थ से संबंधित है, जिसमें मालवा अंचल के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक आयामों का यथार्थ चित्रण करने का प्रयास किया है।

**कुंजी शब्द :** समाज, यथार्थ, परंपरा, धर्म, संस्कृति आदि।

**मूल आलेख :**

समाज मनुष्य के पारस्परिक संबंधों की व्यवस्था होती है, जो समय एवं परिस्थिति के अनुसार बदलती रहती है। इन पारस्परिक संबंधों से समाज के स्वरूप का निर्धारण होता है। समाज में रहते हुए प्रत्येक मनुष्य अपनी आवश्यकता को पूरा करने के लिए अन्य व्यक्तियों से संबंध स्थापित करता है। प्रत्येक मनुष्य जीवन पर्यंत समाज में रहकर उनके अनुरूप व्यवहार करता है। समाज में रहकर ही मनुष्य अपने जीवन के बहुतायत कार्य व्यापारों से परिचित एवं पारंगत होता है। मनुष्य समाज की समस्त क्रियाओं एवं घटनाओं का भाषा के माध्यम से जो संवेदनात्मक चित्रण करता है, वह सामाजिक यथार्थ कहलाता है। लेखक भी समाज का एक अंग होता है, परंतु वह अपनी विवेक बुद्धि, ज्ञान, अनुभव, सहृदय भावनाओं एवं कल्पना शक्ति के कारण अन्य व्यक्तियों से समाज में अपना अलग व्यक्तित्व बनाए रखता है। लेखक

अपना संबंध किसी विशेष वर्ग, जाति एवं समुदाय के प्रति पूर्वाग्रही न होकर संपूर्ण समाज की अपनी सूक्ष्म दृष्टि से अभिव्यक्ति करता है। सामाजिक यथार्थ के अंतर्गत लेखक समाज के विविध आयामों जैसे- सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक आदि पक्षों का चित्रण करता है। समाज में प्रत्येक व्यक्ति की अपनी योग्यता, क्षमता एवं रुचि के अनुसार भूमिका होती है। समाज के बिना व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं है तथा व्यक्ति के बिना समाज अस्तित्वहीन है। विद्वानों ने अपने चिंतन के आधार पर समाज को परिभाषित किया है। डॉ. नगेंद्र के अनुसार,-''समाज से अभिप्राय सामुदायिक जीवन की ऐसी अनवरत एवं नियामक अवस्था है, जिसका निर्माण व्यक्ति पारस्परिक हित तथा सुरक्षा के निमित्त जाने-अनजाने कर लेता है।''[1] मेकाइवर और पेज ने समाज को परिभाषित करते हुए कहा है- ''समाज रीतियों तथा कार्यप्रणालियों की, अधिकार तथा पारस्परिक सहयोग की, अनेक समूहों और विभागों की, मानव व्यवहार के नियंत्रण और स्वतंत्रताओं की एक व्यवस्था है। इस सतत, परिवर्तनशील व्यवस्था को समाज कहते हैं।''[2] इसी को उन्होंने आगे संक्षिप्त रूप से कहा है, ''यह सामाजिक संबंधों का एक जाल है, जो सदैव बदलता रहता है।'' इस प्रकार हम कह सकते हैं कि समाज से तात्पर्य मनुष्य के मध्य पारस्परिक सहयोग, सुरक्षा तथा सौहार्द्र की भावना से है, जिसमें प्रत्येक मनुष्य एक-दूसरे से जुड़ा हुआ है। मनुष्य का विकास समाज के बिना तथा समाज की संकल्पना मनुष्य के बिना संभव नहीं है। अत: समाज एवं मनुष्य का अन्योन्याश्रित संबंध है।

यथार्थवाद से अभिप्राय यथार्थ के अंकन से है। अँग्रेजी के रियलिज्म का शाब्दिक अर्थ-वस्तु संबंधी विचारधारा से है। अत: यथार्थवाद वस्तु के अस्तित्व को स्वीकार करता है और वस्तु की वास्तविकता पर जोर देता है। यथार्थवाद भौतिक जगत को सत्य मानता है। यथार्थवाद संसार की संपूर्ण वस्तुओं को उसी रूप में स्वीकार करता है, जिस रूप में वे दिखाई देती है। यह जीवन की सच्ची अनुभूति को स्वीकार करता है। यह वस्तु की स्वतंत्र सत्ता को महत्व देता है तथा सिद्धांतों की अपेक्षा भौतिक जगत की वस्तुओं अथवा पदार्थों को महत्व प्रदान करता है। यथार्थवाद जगत में मौजूदा अच्छाइयों व बुराइयों पर पर्दा न डालकर उसको वास्तविक रूप में समाज के सामने लाता है। यह समाज में घटित-घटना का वर्णन सामाजिक परिवेश में उसी रूप में करता है, जिस रूप में वह घटित होती है। यह जीवन को वास्तविक कसौटी पर उतारता है। हमारे मस्तिष्क में यह उसी रूप में विद्यमान रहता है, जिस रूप में हमारे चेतना में आने से पूर्व होता है। यथार्थवाद समाज की सीमित पक्ष के बजाय उसके समग्र पक्षों का वर्णन करता है। यह वस्तु जगत में घटित प्रत्येक घटना को वास्तविक रूप में प्रकट करता है। कुछ विद्वानों ने यथार्थवाद को इस प्रकार परिभाषित किया है- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, ''यथार्थवाद का मूल सिद्धांत है, वस्तु को उसके यथार्थ रूप में चित्रित करना। न तो उसे कल्पना के द्वारा विचित्र रंगों में अनुरंजित करना और न किसी धार्मिक या नैतिक आदर्श के लिए काँट- छाँट कर उपस्थित करना।''[3] नेक ने यथार्थवाद को परिभाषित करते हुए कहा है-''यथार्थवाद आत्मगत आदर्शवाद का प्रतिकार है, जो सत्य का निवास मानव मस्तिष्क मानता है। सब यथार्थवादी इस बात से सहमत हैं कि सत्य और वास्तविकता का अस्तित्व है, और रहेगा भले ही किसी व्यक्ति को उसका ज्ञान न हो।''[4] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि यथार्थवाद मानव मस्तिष्क की काल्पनिक उड़ान न होकर वास्तविक जगत की वस्तुओं को उसके सत्य रूप का समाज के सामने उद्घाटित करना है।

सामाजिक यथार्थ से आशय समाज की वास्तविक स्थिति का चित्रण करना है। सामाजिक यथार्थ मानव की अपेक्षा समाज के महत्व पर अधिक बल देता है। सामाजिक यथार्थ मानव का समाज से संबंध न तोड़कर उसे और

अधिक प्रगाढ़ बनाता है। सामाजिक यथार्थ का मुख्य गुण हमेशा परिवर्तनशील रहना है। सामाजिक यथार्थ के माध्यम से समाज की वर्तमान परिस्थितियों के अनुरूप समाज एवं व्यक्ति के संबंधों का मूल्यांकन एवं विस्तृत व्याख्या कर सामाजिक जीवन मूल्यों की स्थापना करना है। सामाजिक यथार्थ मानव जीवन का सामाजिक दृष्टि से देखता, परखता, विश्लेषण करता है। यह समाज में व्याप्त रीति-रिवाजों, सामाजिक परंपराओं, नैतिक मूल्यों एवं अन्य सामाजिक समस्याओं का हूबहू चित्रण कर समाज के सामने प्रकट करता है। सामाजिक यथार्थ को स्पष्ट करते हुए कुछ विद्वानों ने निम्न परिभाषाएँ दी हैं- डॉ. गणेशन के मत अनुसार-''सामाजिक यथार्थवाद व्यक्ति से अधिक समाज को महत्व देता है। क्रमश: परिवर्तन होने वाले संबंधों तथा चेतना के बीच का संघर्ष ही कला की प्रेरक शक्ति है। वस्तुत: कला स्वच्छंद आत्मा की अभिव्यक्ति नहीं है और न ही उसका सामाजिकृत रूप ही है। वह सामाजिक संबंधों की पृष्ठभूमि में आत्मनिष्करण मात्र है।''[5] सामाजिक यथार्थ को यथार्थ के अन्य रूपों से गतिशील एवं परिवर्तनशील मानते हुए मैनेजर पांडेय कहते हैं-''सामाजिक यथार्थ, यथार्थ के दूसरे रूपों से अधिक गतिशील, परिवर्तनशील और इतिहासबद्ध होता है।''[6] अत: सामाजिक यथार्थ व्यक्ति की सामाजिक संबंधों का गतिशील, परिवर्तित एवं सामाजिकृत रूपों की आत्माभिव्यक्ति है।

हिंदी साहित्य में सामाजिक यथार्थ की शुरुआत बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में एक विचारधारा के रूप में हुई। सामाजिक यथार्थ साहित्य के क्षेत्र में स्वच्छंदतावाद और आदर्शवाद के ठीक विपरीत माना जाता है। सामाजिक यथार्थ समाज की वास्तविक स्थिति को साहित्य में दर्शाता है। साहित्य में साहित्यकार वस्तु का चित्र कैमरे द्वारा न लेकर अपने अनुभव एवं कल्पना के समन्वय से उकेरता है। साहित्य में सामाजिक यथार्थ के उदय का मूल कारण समाज में होने वाले निरंतर परिवर्तन जैसे देश में आर्य समाज की स्थापना, मार्क्सवादी विचारधारा का उदय, विश्व स्तर पर समाज में होने वाले वैज्ञानिक परिवर्तन, शिक्षा का प्रसार, सर्वांगीण जीवन दृष्टि एवं औद्योगिक क्रांति आदि मूलभूत कारण थे। सामाजिक यथार्थ के कारण साहित्य में आदर्शवाद का स्थान यथार्थवाद ने ले लिया। इसके आने के बाद साहित्य में समाज के पिछड़े एवं दलित वर्ग के लोगों की समस्याओं को सामान्य एवं दलित वर्ग के नायकों के माध्यम से समाज के सामने उजागर किया है। यथार्थवादी साहित्य समाज में फैली अच्छाइयों एवं बुराइयों को अनुभूति के चित्र पटल पर रख देता है। कुछ विद्वानों द्वारा सामाजिक यथार्थ को साहित्य की दी गई परिभाषाओं द्वारा समझा जा सकता है। रामस्वरूप चतुर्वेदी यथार्थ को पद्धति और दृष्टिकोण दोनों रूपों में स्वीकार करते हैं। ''साहित्य की एक विशिष्ट चिंतन पद्धति, जिसके अनुसार कलाकार की अपनी कृति में जीवन के यथार्थ रूप का अंकन करना चाहिए। यह दृष्टिकोण वस्तुत: आदर्शवाद का विरोधी माना जाता है।''[7] डॉ. चमनलाल यथार्थ को निरंतर अवस्था के अनुकूल परिवर्तित होता हुआ मानते हैं-''महान यथार्थवादी कलाकार यथार्थ को प्रस्तुत करने के लिए जीवन की सच्चाई को पकड़ने का प्रयत्न करते हैं, उस जीवन सत्य को, जो सदैव गतिमान है, जड़ नहीं है, जिसमें सदैव कुछ न कुछ पुराना नष्ट होता रहता है व कुछ न कुछ नया उभरता रहता है।''[8] इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि यथार्थवादी साहित्य यथार्थ को प्रकट करने के लिए जीवन की वास्तविक सच्चाई का वर्णन करता है, जो आदर्शवादी न होकर समाज में घटित होने वाली घटनाओं का वास्तविक चित्रण करता है। कई बार ऐसा भी होता है कि किसी घटना का चित्रण वास्तविकता की सीमा को पार भी कर जाता है। ऐसा इसलिए होता है कि पाठक उस तरह की घटना को लेकर अपने हृदय की संवेदना को उद्धुत कर सके ।

सामाजिक यथार्थ का चित्रण करने में आंचलिक उपन्यास का विशेष महत्व है। आंचलिक उपन्यासकार अंचल से जुड़े होने के कारण उसे नजदीक से जानता है और उपन्यास में सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन का यथार्थ चित्रण करता है। आंचलिक उपन्यास की रचना करने वालों में पंजाब के उपन्यासकार गुरदयाल सिंह का विशेष स्थान है। इनके उपन्यासों में पंजाब के मालवा (क्षेत्र)अंचल के समाज के विविध पक्षों का चित्रण मिलता है। गुरदयाल सिंह का जन्म पंजाब राज्य के

जिला बठिंडा के गाँव भैणी फतेह में 10 जनवरी, 1933 को हुआ। ये पंजाबी साहित्य के प्रमुख लेखकों की श्रेणी में अग्रणी रहे हैं। इनका पंजाबी साहित्य में बहुत बड़ा योगदान रहा। इनकी रचनाओं से पंजाबी साहित्य की रूपरेखा ही बदल गई। इन्होंने पंजाबी साहित्य में कई दशकों तक रचनाएँ कीं। गुरदयाल सिंह पंजाबी साहित्य के यथार्थवादी उपन्यासकार हैं। गुरदयाल सिंह अनेक पुरस्कारों यथा- ज्ञानपीठ पुरस्कार, साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा पद्मश्री आदि से अलंकृत हुए। इन्होंने अपनी रचनाओं में छोटे किसान, खेतिहर मजदूरों, शोषित एवं दलित वर्ग के चित्रण द्वारा समाज के यथार्थ को चित्रित किया है। इन्होंने पंजाबी साहित्य में अनेक विधाओं जैसे बाल साहित्य, नाटक, उपन्यास कहानी-संग्रह और गद्य रचनाएँ कीं। इन्होंने 10 उपन्यासों का प्रणयन किया जैसे- मढ़ी का दीवा (1964), अन्होए, रेते दी इक मुठी, कुवेला, अद्ध चाननी रात, आथण उग्गण, अंधे घोड़े का दान, पहु फुटाले तो पहिलां, परसा तथा आहन। इनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं- सच्ची फुल्ल, चन्न दा बूटा, कुत्ता ते आदमी, ओपरा घर, मस्ती बोटा, रूखे मिस्से बंदे, बेगाना पिंड, चुनिंदा कहानियाँ, पक्का ठिकाना, करीर दी धीनरी व मेरी प्रतिनिधि रचनाएँ। इनके द्वारा रचित नाटक-फरीदा राती वड्डियां, विदैगी तों पिछों, निक्की मोटी गल प्रमुख हैं। बाल साहित्य में भी गुरदयाल सिंह ने अपना स्थान बनाया। बाल साहित्य से संबंधित इनकी प्रमुख कृतियां हैं- बकलद खुद, टुक्क खोह लए कांवां, लिखतम बाबा, गप्पीयां दा पिओ, महाभारत, धरत सुहानी, तीन कदम धरती, खट्टे मीठे लोक, जीवन दासी गंगा-भाग-2, कालू कौतकी, ढाई कदम धरती आदि। गुरदयाल सिंह ने 'परसा' उपन्यास में पंजाब के मालवा अंचल के सामाजिक यथार्थ के विविध पहलुओं को चित्रित किया है।

इस उपन्यास में पंजाब के मालवा अंचल के समाज का यथार्थ चित्रण किया है। 'परसा' पंजाबी उपन्यास साहित्य में कलात्मक दृष्टि से एक उत्तम कृति है, जहाँ मढ़ी का दीवा का कथानक मानवीय अस्तित्व के तनाव को दुखांत की दृष्टि से चित्रित करता है, वहीं परसा में निहित स्थिति जटिल कलात्मक बोध और चेतनता का प्रतीक है।[9] गुरदयाल सिंह ने वर्तमान समाज में व्याप्त अनेक समस्याओं को उजागर किया है। इन्होंने समाज में फैले आडंबरों, रीति-रिवाजों, धार्मिक अंधविश्वासों, परंपरागत रूढ़ियों, जाति- प्रथा का सशक्त चित्रण किया है। 'परसा' उपन्यास में समाज की गली-सड़ी परंपराओं का विरोध कर समाज में नई चेतना जागृत करने का प्रयास किया है। उन्होंने समाज को पतन की ओर ले जाने वाले कारणों का पता लगा कर समाज के उत्थान की वकालत की है। इन्होंने समाज में फैली बुराइयाँ, अत्याचार, जुल्म को पाठक वर्ग के सामने प्रस्तुत किया है। विवेच्य उपन्यास में सामाजिक व्यवस्था में हो रहे परिवर्तनों को नई पीढ़ी व पुरानी पीढ़ी में वैचारिक मतभेदों के माध्यम से व्यक्त किया है। जब परसराम के दोनों लड़के अमृतसर से सिर के केस कटवाकर घर आए तो परसा अपने लड़कों को कहता है- ''तुम पहले यह बताओ कि केस क्यों कटवाये हैं? किस्से पूछकर यह करतूत की?'' पोहले ने भी उसी रुखी भाषा में, उसी तरह उत्तर दिया-''अपनी मर्जी से अच्छे नहीं लगे****कटवा दिए। जब जी चाहेगा, फिर बढ़ा लेंगे।''[10] यहाँ पिता-पुत्र की बातों से स्पष्ट है कि परसराम ब्राह्मण होते हुए भी सिख धर्म की धार्मिक मान्यताओं, रहन सहन तथा वेशभूषा से जुड़ा हुआ था। परसा अपने पुत्रों को भी सामाजिक संस्कारों से जोड़े रखना चाहता है, इसीलिए वह अपने पुत्रों द्वारा केस कटवाने का विरोध करता है। वर्तमान समाज में तीव्र गति से बदलते दौर में दो पीढ़ियों के मध्य विचारों, वेशभूषा, रहन-सहन खानपान संबंधी आदि में अंतर्द्वंद्व अथवा टकराव का होना प्रत्येक भारतीय समाज की सच्चाई है। मालवा क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं है। इस टकराव को लेखक ने अपने उपन्यास 'परसा' में दर्शाया है।

'परसा' उपन्यास में एक स्थान पर परसा के लड़कों द्वारा विदेशों में जाकर खेलों में नाम रोशन करने पर विद्यालय के प्रधानाध्यापक को परसा कहता है कि ''आदमी वही है जिससे अपनी कमाई का गर्व है। दूसरे के सहारे जीने वाली अमरबेल कब तक हरी भरी रह सकेगी भला?''[11] इससे स्पष्ट है कि वर्तमान समाज में लोग कामयाब होने के लिए कड़ी मेहनत न करके दूसरे

का सहारा लेते हैं और नैतिक व अनैतिक किसी भी तरह से सफल होना चाहते हैं। परंतु परसराम के विचार में व्यक्ति को खुद मेहनत करके सफलता की ऊँचाई को छूना चाहिए तथा उसे किसी भी प्रकार की सफलता के लिए अन्य लोगों पर निर्भर नहीं होना चाहिए। उपन्यास के केंद्रीय पात्र परसराम के तीन बेटे हैं। परसा का अपने सबसे छोटे बेटे बसंता से बहुत प्रेम है, क्योंकि वह परसा की इच्छा का सम्मान करता है, परंतु दोनों बड़े लड़के अपने मन की करते हैं। परसा अपने दोनों बड़े बेटों की अवहेलना इसलिए करता है कि वह अपने सही रास्ते अर्थात मानवता की मुक्ति के रास्ते से दूर हो गए हैं। वह समाज को न बदल स्वयं समाज की व्यवस्था के अनुरूप परिवर्तित हो गए। आधुनिक सभ्यता की चमक-दमक के प्रपंचों में फँस अपनी अमीर विरासत को भुला देते हैं। परसा ऐसी भेड़चाल को पसंद नहीं करता है, जो अपनी प्रतिष्ठा समाज में बनाए रखने के लिए समय-समय पर मुखौटे बदले। वह चाहता है कि उसके बेटे एक मॉडल बनें, आदर्श बनें समाज के लिए।[12] राजेन्द्र सिंह के अनुसार-''परसा को अपने बेटों की भेड़चाल वाली कार्यवाही पसंद नहीं है। वह चाहता है कि उसके बेटे समय मॉडल बनें, न कि नक्लची।''[13] इसलिए हम कह सकते हैं कि परसा मानवता का पुजारी है, वह जरूरतमंद व्यक्ति की मदद करने को हमेशा तैयार रहता है। वह आधुनिक सभ्यता के प्रपंच से दूर रहता है, परंतु उसके दोनों लड़के समाज में हो रहे बदलाव के साथ-साथ परिवर्तित हो रहे हैं तथा उनके लिए पैसा ही सब कुछ है। वो मानवता का शोषण करने के साथ-साथ गुलामी भी करते हैं और पैसों के लिए कोई भी रास्ता अपनाने को तैयार रहते हैं। इसलिए परसा उनके व्यवहार तथा गुलामी से सहमत न होकर उनका विरोध करता है।

गुरदयाल सिंह ने समाज में फैली हुई जाति-प्रथा एवं अस्पृश्यता जैसी विकृतियों का कड़ा विरोध किया गया है। जाति के नाम पर होने वाली इस शोषण व्यवस्था का कड़ा विरोध इनके साहित्य में देखने को मिलता है। ''गुरदयाल सिंह ने इस शोषण की प्रस्तुति अपने उपन्यासों में की है। उन्होंने ऐसी बहुत सारी घटनाएँ अपने उपन्यासों में बयान की है, जिनसे दलित स्त्री और पुरुष दोनों के शोषण की तस्वीर सामने आती है।''[14] जब परसा अपने सीरी (कृषि कार्यों में सहायता करने वाला व्यक्ति) टिंडी से रोटी पकवाने लगता है तो सारे गाँव में इस बात की चर्चा होने लगी कि पहली बार किसी चूड़े चमार से ब्राह्मण के घर रोटी पकाई जाती है तो दूसरा व्यक्ति कहता है कि ''हां...आं। पर अब तो सभी एक होती जा रही है, दुनिया! यह जो 'कोमनष्ट' हैं यह तो कहते हैं कि 'रब' नहीं होता और यह जात-पात ऊँच नीच है ही सब ब्राह्मणों का पाखंड।''[15] नहामे बाबा ने कहा है- ''पाखंड-वाखंड का तो पता नहीं, पर अभी तो ब्राह्मण सारी दुनिया को गधीगेड़ में पाए फिरते हैं। अपना सारा गांव इनके पीछे लगकर बूढ़े बूढ़ियों के हाड़ उठाकर हरिद्वार चला जाता है।''[16] परसा न सिर्फ व्यक्तिगत स्तर पर, अपितु सामाजिक स्तर पर समाज में मौजूद बुराइयों का घोर विरोध करता है। वह ब्राह्मण होते हुए भी छुआछूत, अस्पृश्यता एवं ऊँच नीच के भेद को नहीं मानता है एवं समाज के सभी लोगों को समान दृष्टि से देखता है। परसा समाज में फैले जातिवाद के जहर को मिटा देना चाहता है। वह किसी की परवाह नहीं करता और निम्न जाति के लड़के टिंडी एवं उसकी माता से अपने घर भोजन बनवाना शुरू कर देता है।

लेखक ने मालवा अंचल की नारी की जीवटता, उसके साहस, परिश्रम और पितृसत्ता का विरोध के भावों को भी प्रमुखता से उभारा है। 'परसा' में नारी पात्र सामाजिक व्यवस्था से टकराते हुए नजर आती है, लेकिन समाज के कायदे कानून उनकी आवाज को दबा देते हैं। आज भी नारी की समाज में अच्छी स्थिति नहीं है, इसलिए सामान्य जीवन की जरूरतों के लिए भी उसे संघर्ष करना पड़ता है। इस उपन्यास में मुख्तयार कौर के रूप में एक निडर और हिम्मत रखने वाली औरत का चित्रण हुआ है। पति के मरने के बाद अपने कुल वंश को आगे बढ़ाने की खातिर वह लड़के के लिए सब मर्यादाओं की अवहेलना कर परसा से शारीरिक संबंध स्थापित करती है। इसके लिए किसी लोकलाज और सामाजिक विधानों की परवाह नहीं करती। ''मुखत्यारो केवल साहसी ही नहीं कुछ खुद्दार औरत भी थी, जो

किसी की सहायता और सहानुभूति की निर्भरता स्वीकार नहीं कर सकती थी।''[17] अत: समाज में नारी की स्थिति अच्छी नहीं है। वह समाज के नियमों कायदों में जकड़ी हुई थी। वह अपनी मर्जी से किसी भी कार्य के लिए समाज के खिलाफ नहीं जा सकती थी। वर्तमान समय में नारी शिक्षित होने के बावजूद भी सामाजिक रूढ़ियों में जकड़ी हुई है तथा उसे अपने घर वालों के अधीन होकर जीना पड़ता है। इस व्यवस्था का इस उपन्यास में घोर विरोध किया गया है।

गुरदयाल सिंह कर्मशील व्यक्ति थे और अपनी रचनाओं के द्वारा भी वे कर्म के सिद्धांत का ही प्रचार करते रहे। मालवा अंचल में लोग भाग्यवाद पर अधिक विश्वास करते हैं। वे अपने प्रत्येक कार्य को भाग्य पर छोड़ देते हैं और कुछ बिगड़ जाने पर भाग्य को ही दोष देते हैं। लेखक ने अपने प्रतिशील विचारों वाले नायकों द्वारा कर्मशील विचारों का प्रचार किया है। परसा के लड़के बसंता का रिश्ता टूट जाने पर उसके पिता परसराम और पूरन के बीच हुई बातचीत को सुन कर बसंता शाम को रोटी पकाते हुए अचानक हँसते हुए अपने बापू से कहता है-''बापू मुझे तो इसलिए हँसी आ गई कि हम चार-चार हाथ लंबे 'मर्द-बच्चे' रोटियाँ खुद सेंकते हैं। हमारे साथ क्या किया भलीमानस विधमाता ने। कुछ तो सोच लेती।.....पर औरत जात ठहरीं, मर्दों के बारे में क्यों सोचेगी। बस बस। तुम्हें कई बार समझाया है कि बुरी बात कहने से जीभ अपवित्र हो जाती है। बुरा शब्द कभी मत बोलो, चाहे कुछ भी हो जाए।''[18] अत: परसा अपने कर्मों के लिए विधाता को दोषी न मानकर समाज द्वारा बनाई गई व्यवस्था को उत्तरदायी मानता है। वर्तमान समाज में लोग कठोर परिश्रम न कर अच्छे भाग्य के लिए भगवान को कोसते हुए उसका मजाक उड़ाते हैं। ऐसे लोग परसा को पसंद नहीं हैं तथा वह उन्हें सीख देता है कि कितना भी कठोर परिश्रम करना पड़े, परंतु अपनी जिह्वा से अपवित्र शब्द नहीं बोलना चाहिए। वह मनुष्य की समस्या के लिए मनुष्य को जिम्मेदार मानता है न कि किसी दैवीय शक्ति को।

गुरदयाल सिंह ने देश की राजनीति और उसके सामान्य जन पर पड़ने वाले प्रभावों का अपनी रचनाओं में उल्लेख किया है। राजनेताओं के दोगलेपन, पाखंड और झूठे व्यवहार पर लेखक ने कटाक्ष किया है। 'परसा' उपन्यास में भी समकालीन राजनीतिक उठापटक का उल्लेख मिलता है। नहामी बाबा कहता है कि ''तुम तो इसी बात को अपनी ताकत, बड़ाई समझते फिर रहे हो कि देखो राजा-वजीर भी हमारे घर वोट मांगने आता है। तो 'बड़े' तो हम हो गए। वह भिखारी हैं और हम 'शाह'। यह आज तक नहीं समझ पाए कि आज तक यह 'भिखारी' राजा-वजीर कैसे भेड़-बकरी बना कर उसी रास्ते हांकते आ रहे जिस रास्ते चलते तुम्हें पता भी नहीं लगने देते कि कब तुम्हारी ऊन मूँड लेते हैं। पहले राजा डंडे से हांक लेते थे, आज नीले पीले सौ-पचास के नोट दिखाकर, शराब की बोतल सामने रखकर, या पांव छूकर, जात-बिरादरी का वास्ता देकर ऐसे बोट बटोर लेते हैं जैसे तुम बकरी को हरी घास दिखाकर 'में में' कराते पीछे भगा लेते हो। उसके बाद कभी कोई साला पूछने आता है कि तुम्हारे तालाब में भी पानी सूख गया कि पशुओं के पीने का है भी ?....और गंदे गंधले तालाब में जांघे गारे से सनाते फिरते हो आज तक। तुम्हें ठगने वाले आगे के आगे और तुम भेड़ों के रेवड़ की तरह मेंह- हं हं करते पिछे के पिछे !..... ।''[19] भारतीय राजनीति में जातिवाद, भ्रष्टाचार, सांप्रदायिकता एवं वैमनस्य की भावना मौजूद है, जो भारतीय राजनीति की सच्चाई है। गुरदयाल सिंह ने नहामी बाबा के माध्यम से कहलवाया है कि देश के राजनेता दिनों दिन भ्रष्ट एवं अनैतिक होते जा रहे हैं। उनकी कथनी और करनी में बहुत बड़ा अंतर है। वोट प्राप्त करने के लिए वे किसी भी हद तक असामाजिक हथकंडों का प्रयोग करने से पीछे नहीं हटते हैं। इस प्रकार की राजनीति करने वाले राजनेताओं के चरित्र को उपन्यास के जरिए प्रदर्शित किया है।

गुरदयाल सिंह ने किसान और किसानी से संबंधित समस्याओं को भी अपनी रचनाओं में प्रमुखता के साथ चित्रित किया है। भयंकर बारिश और ओलावृष्टि होने पर खेतों में फसल बर्बाद हो जाने पर किसानों की दयनीय स्थिति का चित्रण किया है। प्रधाना गेहूँ बेचने मंडी ले गया और बोली न लगने के कारण रात को उसे वहीं रुकना पड़ा तो वह रात को अपने आप ही बोलने

लगा। ''लो अब क्या करें पंडित जी। गेहूँ तो खैर कम-ज्यादा दामों पर भी बिक जाएगी, पर साल भर पशुओं के लिए भूसा कहाँ से लाएँगे। इस बार एक तो बैल खरीदना है। हमारा बड़ा बैल अब काम का नहीं रहा, बूढ़ा हो गया है। यह देख ले सारी गेहूँ छह-सात क्विंटल भी न होगी। यहाँ तक बैलगाड़ी लाते भी दोपहर कर दी, पाँव ही नहीं उठाता। रात भी आधीरात को घर से चले थे। अब और कितनी देर ऐसे गुजारा होगा भला...। तू जानता है कबीलदारी तो ऐसे ही सुली की सेज होती है, जिस ओर भी करवट बदलो बस काँटे ही काँटे चुभेंगे। पर अपने अपने भाग्य हैं भई। कई तो ऐसे करते हैं, रब याद नहीं। और कईयों को सारी उम्र पल भर भी आराम नहीं मिलता। फिर क्या करे कोई... और कई अपनी....।''[20] अधिकांश भारतीय किसान अपना जीवन यापन गरीबी में गुजारता है। वह कठोर परिश्रम करने के बाद भी अपनी स्थिति में सुधार नहीं कर पाता। वह कृषि के लिए ऋण लेता है। फसल को बेचकर वह ऋण चुकाता है और अगली फसल के लिए पुन: ऋण लेता है, इस प्रकार वह ऋण के दुश्चक्र में ही फँसा रहता है। अत: गुरदयाल सिंह ने भारतीय किसान की मूलभूत समस्याओं को अपने उपन्यास के माध्यम से उजागर किया है। वह खेती करने के बावजूद कर्जदार बना रहता है तथा अपना व अपने परिवार का जीवन यापन बड़ी मुश्किल से करता है।

गुरदयाल सिंह ने समाज में व्याप्त परंपरागत रूढ़ियों पर 'परसा' उपन्यास के माध्यम से सशक्त प्रहार किया है। परसराम की पत्नी बिरो की मृत्यु हो जाने पर ताई द्वारा रोने धोने पर डाँटते हुए परसा कहता है-''बस बस रहने दे। ऐसा रोना धोना नहीं करना मेरे घर में।'' ताई परसराम को वीरों के शव को चारपाई से धरती पर न लेटाने पर अनर्थ एवं वीरों की गति न होने की बात कहती है तो परसराम उसे डाँटते हुए कहता है-''ताई अब तू चली जा। या फिर चुपचाप बैठ जा।और कुछ कहना सुनना मत।''[21] परसराम की पत्नी का दाह संस्कार करने के लिए जाते समय बीच रास्ते में हंडिया फोड़ने की रस्म का परसा विरोध करते हुए कहता है कि- ''उसका सभी कुछ मेरे पास है पंडित जी महाराज।...अभी उसका कुछ भी समाप्त नहीं हुआ है। इसलिए इस रस्म की कोई जरूरत नहीं है। मैं नहीं करने दूँगा।''[22] भारतीय समाज अनेक परंपरागत रूढ़ियों एवं धार्मिक अंधविश्वास से घिरा हुआ है। आम आदमी आज भी इन कुरीतियों में जकड़ा हुआ है। विवेच्य उपन्यास में पंजाब के मालवा अंचल के माध्यम से भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों का चित्रण किया गया है। उपन्यास का पात्र 'परसा' इन कुरीतियों को गलत मान कर विरोध करता है। उसकी पत्नी बिरो की मृत्यु हो जाने पर वह ब्राह्मण एवं गाँव वालों के कहने पर भी इन कुरीतियों को करने के लिए मना कर देता है। परसा मानवीय मूल्यों से समृद्ध एक मजबूत पात्र है, ''गुरदयाल सिंह ने परसा को एक अधेड़ उम्र के जाट-ब्राह्मण के रूप में प्रस्तुत किया है, जो कि किसी भी तरह के भ्रम से, डर, कृत्रिम रिश्तों से दूर एक बहुत ही मजबूत इंसान है। जिंदगी की मुश्किलें उसका रास्ता नहीं रोक सकती और वह हमेशा अटल रहता है। उसकी पत्नी की शीघ्र मृत्य के उपरांत अपने तीनों पुत्रों को वह स्वयं पालता है और उनको किसी प्रकार की कमी महसूस नहीं होने देता।''[23]

गुरदयाल सिंह ने धार्मिक तीर्थ स्थानों पर पंडों एवं ठगी करने वाले लोगों का भी यथार्थ वर्णन किया है। परसा के माध्यम से इन पाखंडों पर लेखक ने कटाक्ष किया है। परसा कहता है कि- ''बस यह इन पंडों की छिना-झपटी बहुत बुरी लगती हैं। कोई खुशी से आए चाहे गमी में आए, यह उस पर चिलों की भांति झपट पड़ेंगे।'' इन्दरसिंह बोलने लगा, ''अगर आदमी भक्ति-भाव से आये तो ठीक है, नहीं तो बस इससे बड़ी 'चोर- नगरी' और 'ठग-पूरा' और कहीं नहीं मिलेगा। जीतने भोले-भाले लोग यहाँ धार्मिक निश्चय से आते हैं, यह पंडे और यहाँ के ठग-चोर उनके निश्चय-विश्वास को तो बकरी की मेंमनों की भाँति बिखेर देते हैं।''[24]

अत: कहा जा सकता है कि मनुष्य विचार एवं व्यवहार की दृष्टि से परिवर्तनशील है। इसके परिणामस्वरूप उससे जुड़े सामाजिक संगठन एवं व्यवस्था में भी परिवर्तन होता रहता है। इस परिवर्तन का एक बड़ा कारण व्यक्ति और समाज के अंत:संबंधों से उत्पन्न होने वाला साहित्य है। जब कोई रचनाकार

साहित्य रचता है तो वह अपने समाज, अपने परिवेश से अलग होकर नहीं लिखता, उसका समय और समाज उसे जो अनुभव देता है उसी को वह अपने शब्दों में ढालकर समाज को लौटा देता है। 'परसा' में गुरदयाल सिंह ने सामाजिक यथार्थ के विभिन्न आयामों जैसे सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि पर अपनी दृष्टि केंद्रित की। उनका ध्यान मुख्यत: समाज, राजनीति, धर्म आदि क्षेत्रों में व्याप्त कुरीतियों, भ्रष्टाचार, आर्थिक असमानता और रूढ़ियों पर है। इनके चित्रण द्वारा वह अपने समय की भयावह सच्चाई पाठक के सामने लाते हैं और उन्हें जागरूक करने का कार्य करते हैं। इस उपन्यास के माध्यम से समाज में व्याप्त जातिवाद, अस्पृश्यता, अंधविश्वास, सामाजिक कुरीतियों, आर्थिक असमानताओं पर कड़ा प्रहार किया गया है। उपन्यास में ऐसे पात्रों को प्रमुखता से उभारा गया है, जिनमें दया, करुणा, प्रेम जैसे मानवीय गुण विद्यमान हैं। विवेच्य उपन्यास यथार्थ के सभी बिंदुओं को उजागर करने वाली रचना है, जिसके पात्र समाज के विविध विशिष्ट वर्गों पर आधारित हैं, जो समाज का सच्चा स्वरूप प्रकट करते हैं। ❑

**सदंर्भ :**


1. डॉ. नगेन्द्र, नगेंद्र ग्रंथावली( भाग 4 ), पृष्ठ संख्या 227
2. व्यास, डॉ. मीनाक्षी, समकालीन भारतीय समाज समस्याएँ और समाधान, पृष्ठ संख्या 71
3. हजारी प्रसाद द्विवेदी, ग्रंथावली भाग 3,पृष्ठ संख्या 492
4. व्यास, डॉ. मीनाक्षी, समकालीन भारतीय समाज समस्याएँ और समाधान, पृष्ठ संख्या 76
5. डॉ. गणेशन, हिंदी उपन्यास साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ संख्या 354
6. मैनेजर पांडे, साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, पृष्ठ संख्या 241
7. हिंदी साहित्य कोश, भाग-1( सं) धीरेन्द्र शर्मा, पृष्ठ संख्या 666
8. डॉ. चमन लाल, साहित्य संस्कृति का प्रगतिशील समाज शास्त्रीय अवलोकन, पृष्ठ संख्या 94
9. गुरदयाल सिंह दा ब्रितान्तक पैराडायम, ग्रेसिअस बुक्स, पृष्ठ संख्या 51
10. सिंह, गुरदयाल, परसा, पृष्ठ संख्या 50
11. वही, पृष्ठ संख्या 49
12. सिंह, कुलवंत, गुरदयाल और नागार्जुन के उपन्यास (सामाजिक यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में) पृष्ठ संख्या 53
13. गुरदयाल सिंह दा ब्रितान्तक पैराडायम, ग्रेसिअस बुक्स, पृष्ठ संख्या 112
14. सिंह, राजेन्द्र, नावलकार गुरदयालसिंह की त्रासद-दृष्टि, पृष्ठ संख्या 230
15. सिंह, गुरदयाल, परसा, पृष्ठ संख्या 221
16. वही, पृष्ठ संख्या 221
17. सिंह डॉक्टर कुलवंत, गुरदयाल सिंह और नागार्जुन के उपन्यास (सामाजिक यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में), पृष्ठ संख्या 78
18. सिंह, गुरुदयाल, परसा,पृष्ठ संख्या 68
19. वही, पृष्ठ संख्या 229
20. वही, पृष्ठ संख्या 296
21. गुरदयाल सिंह दा ब्रितान्तक पैराडायम, ग्रेसिअस बुक्स, पृष्ठ संख्या 144
22. सिंह, गुरदयाल, परसा,पृष्ठ संख्या 14
23. वही, पृष्ठ संख्या 15
24. वही, पृष्ठ संख्या 183

# सद्‌गति

✍ प्रेमचंद

*साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज में जो कुछ भी घटित होता है, उसका प्रतिबिंब साहित्य में दिखाई देता है। इस लिहाज से हिंदी कहानी-जगत अत्यंत समृद्ध है। महान रचनाकारों प्रेमचंद, भारतेंदु हरिश्चंद्र, महादेवी वर्मा आदि ने जब अपनी कलम चलाई तो उससे निकले पात्र मानो जी उठे। द्विभाषी राष्ट्रसेवक ने अपने हर अंक में आपके लिए देशी-विदेशी लेखकों की ऐसी एक प्रतिनिधि कहानी प्रकाशित करने का निश्चय किया है ताकि समाज और समाज के बीच एक सेतु बना रहे और रोजमर्रा की व्यस्त जिंदगी में भी आप साहित्य रस का आनंद उठा पाएँ। इस क्रम में इस बार प्रस्तुत है प्रेमचंद की कहानी 'सद्‌गति'।*

*-संपादक*

**दुखी** चमार द्वार पर झाड़ू लगा रहा था और उसकी पत्नी झुरिया घर को गोबर से लीप रही थी। दोनों अपने-अपने काम से फुर्सत पा चुके थे तो चमारिन ने कहा, तो जाके पंडित बाबा से कह आओ न। ऐसा न हो कहीं चले जाएं।

दुखी- हां जाता हूं, लेकिन यह तो सोच, बैठेंगे किस चीज पर?

झुरिया- कहीं से खटिया न मिल जाएगी? ठकुराने से मांग लाना।

दुखी- तू तो कभी-कभी ऐसी बात कह देती है कि देह जल जाती है। ठकुराने वाले मुझे खटिया देंगे! आग तक तो घर से निकलती नहीं, खटिया देंगे! कैथाने में जाकर एक लोटा पानी मांगूँ तो न मिले। भला खटिया कौन देगा! हमारे उपले, सेंठे, भूसा, लकड़ी थोड़े ही हैं कि जो चाहे उठा ले जाएँ। ले अपनी खटोली धोकर रख दे। गरमी के तो दिन हैं। उनके आते-आते सूख जाएगी।

झुरिया- वह हमारी खटोली पर बैठेंगे नहीं। देखते नहीं कितने नेम-धरम से रहते हैं।

दुखी ने जरा चिंतित होकर कहा हाँ, यह बात तो है। महुए के पत्ते तोड़कर एक पत्तल बना लूं तो ठीक हो जाए। पत्तल में बड़े-बड़े आदमी खाते हैं। वह पवित्तर है। ला तो डंडा, पत्ते तोड़ लूँ।

झुरिया- पत्तल मैं बना लूँगी, तुम जाओ। लेकिन हाँ, उन्हें सीधा भी तो देना होगा। अपनी थाली में रख दूँ ?

दुखी- कहीं ऐसा गजब न करना, नहीं तो सीधा भी जाए और थाली भी फूटे ! बाबा थाली उठाकर पटक देंगे। उनको बड़ी जल्दी विरोध चढ़ आता है। किरोध में पंडिताइन तक को छोड़ते नहीं, लड़के को ऐसा पीटा

कि आज तक टूटा हाथ लिये फिरता है। पत्तल में सीधा भी देना, हाँ। मुदा तू छूना मत।

झुरिया- गोंड़ की लड़की को लेकर साह की दुकान से सब चीजें ले आना। सीधा भरपूर हो। सेर भर आटा, आधा सेर चावल, पाव भर दाल, आधा पाव घी, नून, हल्दी और पत्तल में एक किनारे चार आने पैसे रख देना। गोंड़ की लड़की न मिले तो भुर्जिन के हाथ-पैर जोड़कर ले जाना। तू कुछ मत छूना, नहीं तो गजब हो जाएगा।

इन बातों की ताकीद करके दुखी ने लकड़ी उठाई और घास का एक बड़ा-सा गट्ठा लेकर पंडितजी से अर्ज करने चला। खाली हाथ बाबाजी की सेवा में कैसे जाता। नजराने के लिए उसके पास घास के सिवाय और क्या था। उसे खाली देखकर तो बाबा दूर ही से दुत्कारते। पं. घासीराम ईश्वर के परम भक्त थे। नींद खुलते ही ईशोपासन में लग जाते। मुँह-हाथ धोते आठ बजते, तब असली पूजा शुरू होती, जिसका पहला भाग भंग की तैयारी थी। उसके बाद आधा घंटे तक चंदन रगड़ते, फिर आईने के सामने एक तिनके से माथे पर तिलक लगाते। चंदन की दो रेखाओं के बीच में लाल रोरी की बिंदी होती थी। फिर छाती पर, बाँहों पर चंदन की गोल-गोल मुद्रिकाएँ बनाते। फिर ठाकुरजी की मूर्ति निकालकर उसे नहलाते, चंदन लगाते, फूल चढ़ाते, आरती करते, घंटी बजाते। दस बजते-बजते वह पूजन से उठते और भंग छानकर बाहर आते। तब तक दो-चार जजमान द्वार पर आ जाते ! ईशोपासन का तत्काल फल मिल जाता। वही उनकी खेती थी। आज वह पूजन-गृह से निकले, तो देखा दुखी चमार घास का एक गट्ठा लिये बैठा है। दुखी उन्हें देखते ही उठ खड़ा हुआ और उन्हें साष्टांग दंडवत करके हाथ बांधकर खड़ा हो गया। यह तेजस्वी मूर्ति देखकर उसका हृदय श्रद्धा से परिपूर्ण हो गया! कितनी दिव्य मूर्ति थी। छोटा-सा गोल-मटोल आदमी, चिकना सिर, फूले गाल, ब्रह्मतेज से प्रदीप्त आँखें। रोरी और चंदन देवताओं को प्रतिभा प्रदान कर रहे थे। दुखी को देखकर श्रीमुख से बोले-आज कैसे चला रे दुखिया ?

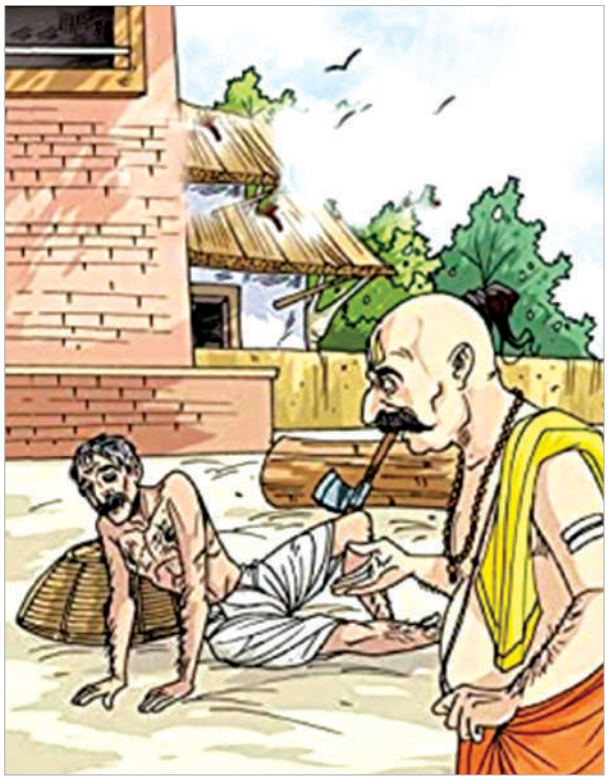

दुखी ने सिर झुकाकर कहा, बिटिया की सगाई कर रहा हूँ महाराज। कुछ साइत-सगुन विचारना है। कब मर्जी होगी?

घासी- आज मुझे छुट्टी नहीं। हाँ, साँझ तक आ जाऊँगा।

दुखी- नहीं महराज, जल्दी मर्जी हो जाए। सब सामान ठीक कर आया हूँ। यह घास कहाँ रख दूँ?

घासी- इस गाय के सामने डाल दे और जरा झाड़ू लेकर द्वार तो साफ कर दे। यह बैठक भी कई दिन से लीपी नहीं गई। उसे भी गोबर से लीप दे। तब तक मैं भोजन कर लूँ। फिर जरा आराम करके चलूँगा। हाँ, यह लकड़ी भी चीर देना। खलिहान में चार खांची भूसा पड़ा है। उसे भी उठा लाना और भुसौली में रख देना।

दुखी फौरन हुक्म की तामील करने लगा। द्वार पर झाड़ू लगाई, बैठक को गोबर से लीपा। तब बारह बज गए। पंडितजी भोजन करने चले गए। दुखी ने सुबह से कुछ नहीं खाया था। उसे भी जोर की भूख लगी; पर वहाँ खाने को क्या धरा था। घर यहाँ से मील भर था। वहाँ खाने

चला जाए, तो पंडितजी बिगड़ जाएँ। बेचारे ने भूख दबाई और लकड़ी फाड़ने लगा। लकड़ी की मोटी-सी गाँठ थी; जिस पर पहले कितने ही भक्तों ने अपना जोर आजमा लिया था। वह उसी दम-खम के साथ लोहे से लोहा लेने के लिए तैयार था। दुखी घास छीलकर बाजार ले जाता था। लकड़ी चीरने का उसे अभ्यास न था। घास उसके खुरपे के सामने सिर झुका देती थी। यहाँ कस-कसकर कुल्हाड़ी का भरपूर हाथ लगाता; पर उस गाँठ पर निशान तक न पड़ता था। कुल्हाड़ी उचट जाती। पसीने में तर था, हाँफता था, थककर बैठ जाता था, फिर उठता था। हाथ उठाए न उठते थे, पाँव काँप रहे थे, कमर न सीधी होती थी, आँखों तले अंधेरा हो रहा था, सिर में चक्कर आ रहे थे, तितलियाँ उड़ रही थीं, फिर भी अपना काम किए जाता था। अगर एक चिलम तम्बाकू पीने को मिल जाती, तो शायद कुछ ताकत आती।

उसने सोचा, यहाँ चिलम और तम्बाकू कहाँ मिलेगी। बाह्मनों का पूरा है। बाह्मन लोग हम नीच जातों की तरह तम्बाकू थोड़े ही पीते हैं। सहसा उसे याद आया कि गाँव में एक गोंड़ भी रहता है। उसके यहाँ जरूर चिलम-तमाखू होगी। तुरंत उसके घर दौड़ा। खैर मेहनत सुफल हुई। उसने तमाखू भी दी और चिलम भी दी; पर आग वहाँ न थी। दुखी ने कहा, आग की चिंता न करो भाई। मैं जाता हूँ, पंडितजी के घर से आग मांग लूँगा। वहाँ तो अभी रसोई बन रही थी। यह कहता हुआ वह दोनों चीजें लेकर चला आया और पंडितजी के घर में बरौठे के द्वार पर खड़ा होकर बोला, मालिक, रचिके आग मिल जाए, तो चिलम पी लें।

पंडितजी भोजन कर रहे थे। पंडिताइन ने पूछा, यह कौन आदमी आग मांग रहा है?

पंडित- अरे वही ससुरा दुखिया चमार है। कहा है थोड़ी-सी लकड़ी चीर दे। आग तो है, दे दो।

पंडिताइन ने भौवें चढ़ाकर कहा, तुम्हें तो जैसे पोथी-पत्रो के फेर में धरम-करम किसी बात की सुध ही नहीं रही। चमार हो, धोबी हो, पासी हो, मुँह उठाए घर में चला आए। हिंदू का घर न हुआ, कोई सराय हुई। कह दो दाढ़ीजार से चला जाए, नहीं तो इस लुआठे से मुँह झुलसा दूँगी। आग मांगने चले हैं।

पंडितजी ने उन्हें समझाकर कहा, भीतर आ गया, तो क्या हुआ। तुम्हारी कोई चीज तो नहीं छुई। धरती पवित्र है। जरा-सी आग दे क्यों नहीं देती, काम तो हमारा ही कर रहा है। कोई लोनिया यही लकड़ी फाड़ता, तो कम-से-कम चार आने लेता।

पंडिताइन ने गरजकर कहा, वह घर में आया क्यों!

पंडित ने हारकर कहा, ससुरे का अभाग था और क्या!

पंडिताइन- अच्छा, इस बखत तो आग दिए देती हूँ, लेकिन फिर जो इस तरह घर में आएगा, तो उसका मुँह ही जला दूँगी।

दुखी के कानों में इन बातों की भनक पड़ रही थी। पछता रहा था, नाहक आया। सच तो कहती हैं। पंडित के घर में चमार कैसे चला आए। बड़े पवित्तर होते हैं यह लोग, तभी तो संसार पूजता है, तभी तो इतना मान है। भर-चमार थोड़े ही हैं। इसी गाँव में बूढ़ा हो गया; मगर मुझे इतनी अकल भी न आई। इसलिए जब पंडिताइन आग लेकर निकलीं, तो वह मानो स्वर्ग का वरदान पा गया। दोनों हाथ जोड़कर जमीन पर माथा टेकता हुआ बोला, पड़ाइन माता, मुझसे बड़ी भूल हुई कि घर में चला आया। चमार की अकल ही तो ठहरी। इतने मूरख न होते, तो लात क्यों खाते।

पंडिताइन चिमटे से पकड़कर आग लाई थीं। पाँच हाथ की दूरी से घूँघट की आड़ से दुखी की तरफ आग फेंकी। आग की बड़ी-सी चिनगारी दुखी के सिर पर पड़ गई। जल्दी से पीछे हटकर सिर के झोटे देने लगा। उसने मन में कहा, यह एक पवित्तर बाह्मन के घर को अपवित्तर करने का फल है। भगवान ने कितनी जल्दी फल दे दिया। इसी से तो संसार पंडितों से डरता है। और सबके रुपए मारे जाते हैं बाह्मन के रुपये भला कोई मार तो ले! घर भर का सत्यानाश हो जाए, पाँव गल-गलकर गिरने लगे। बाहर आकर उसने चिलम पी और फिर कुल्हाड़ी लेकर जुट गया। खट-खट की आवाजें आने लगीं। उस पर आग पड़ गई, तो पंडिताइन को उस पर कुछ दया आ गई। पंडितजी भोजन करके उठे, तो बोलीं इस चमरवा को भी कुछ खाने को दे दो, बेचारा कब से काम कर रहा है। भूखा होगा।

पंडितजी ने इस प्रस्ताव को व्यावहारिक क्षेत्र से दूर

समझकर पूछा, रोटियाँ हैं ?

पंडिताइन दो-चार बच जाएँगी।

पंडित दो-चार रोटियों में क्या होगा ? चमार है, कम से कम सेर भर चढ़ा जाएगा।

पंडिताइन कानों पर हाथ रखकर बोलीं, अरे बाप रे ! सेर भर! तो फिर रहने दो।

पंडितजी ने अब शेर बनकर कहा, कुछ भूसी-चोकर हो तो आटे में मिलाकर दो ठो लिट्टा ठोंक दो। साले का पेट भर जाएगा। पतली रोटियों से इन नीचों का पेट नहीं भरता। इन्हें तो जुआर का लिट्टा चाहिए।

पंडिताइन ने कहा, अब जाने भी दो, धूप में कौन मरे।

दुखी ने चिलम पीकर फिर कुल्हाड़ी संभाली। दम लेने से जरा हाथों में ताकत आ गई थी। कोई आधा घंटे तक फिर कुल्हाड़ी चलाता रहा। फिर बेदम होकर वहीं सिर पकड़ के बैठ गया। इतने में वही गोंड़ आ गया। बोला, क्यों जान देते हो बूढ़े दादा, तुम्हारे फाड़े यह गाँठ न फटेगी। नाहक हलकान होते हो।

दुखी ने माथे का पसीना पोंछकर कहा, अभी गाड़ी भर भूसा ढोना है भाई !

गोंड़- कुछ खाने को मिला कि काम ही कराना जानते हैं। जाके मांगते क्यों नहीं ?

दुखी कैसी बात करते हो चिखुरी, बाह्मन की रोटी हमको पचेगी !

गोंड़- पचने को पच जाएगी, पहले मिले तो। मूँछों पर ताव देकर भोजन किया और आराम से सोए, तुम्हें लकड़ी फाड़ने का हुक्म लगा दिया। जमींदार भी कुछ खाने को देता है। हाकिम भी बेगार लेता है, तो थोड़ी-बहुत मजूरी देता है। यह उनसे भी बढ़ गए, उस पर धर्मात्मा बनते हैं।

दुखी- धीरे-धीरे बोलो भाई, कहीं सुन लें तो आफत आ जाए।

यह कहकर दुखी फिर संभल पड़ा और कुल्हाड़ी की चोट मारने लगा। चिखुरी को उस पर दया आई। आकर कुल्हाड़ी उसके हाथ से छीन ली और कोई आधा घंटे खूब कस-कसकर कुल्हाड़ी चलाई; पर गाँठ में एक दरार भी न पड़ी। तब उसने कुल्हाड़ी फेंक दी और यह कहकर चला गया तुम्हारे फाड़े यह न फटेगी, जान भले निकल जाए।

दुखी सोचने लगा, बाबा ने यह गाँठ कहाँ रख छोड़ी थी कि फाड़े नहीं फटती। कहीं दरार तक तो नहीं पड़ती। मैं कब तक इसे चीरता रहूँगा। अभी घर पर सौ काम पड़े हैं। कार-परोजन का घर है, एक-न-एक चीज घटी ही रहती है; पर इन्हें इसकी क्या चिंता। चलूँ जब तक भूसा ही उठा लाऊँ। कह दूँगा बाबा, आज तो लकड़ी नहीं फटी, कल आकर फाड़ दूँगा। उसने झौवा उठाया और भूसा ढोने लगा। खलिहान यहाँ से दो फरलांग से कम न था। अगर झौवा खूब भर-भर कर लाता तो काम जल्द खत्म हो जाता; फिर झौवे को उठाता कौन। अकेले भरा हुआ झौवा उससे न उठ सकता था। इसलिए थोड़ा-थोड़ा लाता था। चार बजे कहीं भूसा खत्म हुआ। पंडितजी की नींद भी खुली। मुँह-हाथ धोया, पान खाया और बाहर निकले। देखा, तो दुखी झौवा सिर पर रखे सो रहा है। जोर से बोले अरे, दुखिया तू सो रहा है ? लकड़ी तो अभी ज्यों की त्यों पड़ी हुई है। इतनी देर तू करता क्या रहा ? मुट्ठी भर भूसा ढोने में संझा कर दी ! उस पर सो रहा है। उठा ले कुल्हाड़ी और लकड़ी फाड़ डाल। तुझसे जरा-सी लकड़ी नहीं फटती। फिर साइत भी वैसी ही निकलेगी, मुझे दोष मत देना! इसी से कहा है कि नीच के घर में खाने को हुआ और उसकी आँख बदली।

दुखी ने फिर कुल्हाड़ी उठाई। जो बातें पहले से सोच रखी थीं, वह सब भूल गया। पेट पीठ में धँसा जाता था, आज सबेरे जलपान तक न किया था। अवकाश ही न मिला। उठना ही पहाड़ मालूम होता था। जी डूबा जाता था, पर दिल को समझाकर उठा। पंडित हैं, कहीं साइत ठीक न विचारें, तो फिर सत्यानाश ही हो जाए। जभी तो संसार में इतना मान है। साइत ही का तो सब खेल है। जिसे चाहे बिगाड़ दें। पंडितजी गाँठ के पास आकर खड़े हो गए और बढ़ावा देने लगे हाँ, मार कसके, और मार कसके, मार अबे जोर से मार, तेरे हाथ में तो जैसे दम ही नहीं है, लगा कसके, खड़ा सोचने क्या लगता है, हाँ, बस फटा ही चाहती है! दे उसी दरार में! दुखी अपने होश में न था। न-जाने कौन-सी गुप्तशक्ति उसके हाथों को चला रही थी। वह थकान, भूख, कमजोरी सब मानो भाग गई। उसे अपने बाहुबल पर स्वयं आश्चर्य हो रहा

था। एक-एक चोट वज्र की तरह पड़ती थी। आधा घंटे तक वह इसी उन्माद की दशा में हाथ चलाता रहा, यहाँ तक कि लकड़ी बीच से फट गई और दुखी के हाथ से कुल्हाड़ी छूटकर गिर पड़ी। इसके साथ वह भी चक्कर खाकर गिर पड़ा। भूखा, प्यासा, थका हुआ शरीर जवाब दे गया।

पंडितजी ने पुकारा, उठके दो-चार हाथ और लगा दे। पतली-पतली चैलियाँ हो जाएँ। दुखी न उठा। पंडितजी ने अब उसे दिक करना उचित न समझा। भीतर जाकर बूटी छानी, शौच गए, स्नान किया और पंडिताई बाना पहनकर बाहर निकले! दुखी अभी तक वहीं पड़ा हुआ था। जोर से पुकारा अरे क्या पड़े ही रहोगे दुखी, चलो तुम्हारे ही घर चल रहा हूँ। सब सामान ठीक-ठीक है न? दुखी फिर भी न उठा।

अब पंडितजी को कुछ शंका हुई। पास जाकर देखा, तो दुखी अकड़ा पड़ा हुआ था। बदहवास होकर भागे और पंडिताइन से बोले, दुखिया तो जैसे मर गया।

पंडिताइन हकबकाकर बोलीं वह तो अभी लकड़ी चीर रहा था न?

पंडित- हाँ, लकड़ी चीरते-चीरते मर गया। अब क्या होगा?

पंडिताइन ने शांत होकर कहा होगा क्या, चमरौने में कहला भेजो मुर्दा उठा ले जाए।

एक क्षण में गाँव भर में खबर हो गई। पूरे में ब्राह्मनों की ही बस्ती थी। केवल एक घर गोंड़ का था। लोगों ने इधर का रास्ता छोड़ दिया। कुएँ का रास्ता उधर ही से था, पानी कैसे भरा जाए ! चमार की लाश के पास से होकर पानी भरने कौन जाए। एक बुढ़िया ने पंडितजी से कहा, अब मुर्दा फेंकवाते क्यों नहीं? कोई गाँव में पानी पीएगा या नहीं। इधर गोंड़ ने चमरौने में जाकर सबसे कह दिया खबरदार, मुर्दा उठाने मत जाना। अभी पुलिस की तहकीकात होगी। दिल्लगी है कि एक गरीब की जान ले ली। पंडितजी होंगे, तो अपने घर के होंगे। लाश उठाओगे तो तुम भी पकड़े जाओगे। इसके बाद ही पंडितजी पहुँचे; पर चमरौने का कोई आदमी लाश उठाने को तैयार न हुआ, हाँ दुखी की स्त्री और कन्या दोनों हाय-हाय करती वहाँ चलीं और पंडितजी के द्वार पर आकर सिर पीट-पीटकर रोने लगीं। उनके साथ दस-पाँच और चमारिनें थीं। कोई रोती थी, कोई समझाती थी, पर चमार एक भी न था। पंडितजी ने चमारों को बहुत धमकाया, समझाया, मिन्नत की; पर चमारों के दिल पर पुलिस का रोब छाया हुआ था, एक भी न मिनका। आखिर निराश होकर लौट आए।

आधी रात तक रोना-पीटना जारी रहा। देवताओं का सोना मुश्किल हो गया। पर लाश उठाने कोई चमार न आया और ब्राह्मन चमार की लाश कैसे उठाते ! भला ऐसा किसी शास्त्र-पुराण में लिखा है? कहीं कोई दिखा दे। पंडिताइन ने झुँझलाकर कहा, इन डाइनों ने तो खोपड़ी चाट डाली। सभों का गला भी नहीं पकता। पंडित ने कहा, रोने दो चुड़ैलों को, कब तक रोएँगी। जीता था, तो कोई बात न पूछता था। मर गया, तो कोलाहल मचाने के लिए सब की सब आ पहुँचीं।

पंडिताइन- चमार का रोना मनहूस है।

पंडित- हाँ, बहुत मनहूस।

पंडिताइन- अभी से दुर्गंध उठने लगी।

पंडित- चमार था ससुरा कि नहीं। साध-असाध किसी का विचार है इन सबों को।

पंडिताइन- इन सबों को घिन भी नहीं लगती।

पंडित- भ्रष्ट हैं सब।

रात तो किसी तरह कटी; मगर सबेरे भी कोई चमार न आया। चमारिनें भी रो-पीटकर चली गईं। दुर्गंध कुछ-कुछ फैलने लगी। पंडितजी ने एक रस्सी निकाली। उसका फंदा बनाकर मुरदे के पैर में डाला और फंदे को खींचकर कस दिया। अभी कुछ-कुछ धुँधलका था। पंडितजी ने रस्सी पकड़कर लाश को घसीटना शुरू किया और गाँव के बाहर घसीट ले गए। वहाँ से आकर तुरंत स्नान किया, दुर्गापाठ पढ़ा और घर में गंगाजल छिड़का।

उधर दुखी की लाश को खेत में गीदड़ और गिद्ध, कुत्ते और कौए नोच रहे थे। यही जीवन-पर्यंत की भक्ति, सेवा और निष्ठा का पुरस्कार था। ❑

গৱেষণা পত্র

# অসমৰ ভাষিক পৰিস্থিতি ঃ এক বিশ্লেষণ

ড° সেউজী শর্মা

ভাষাতত্ব বিভাগ
গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়,
গুৱাহাটী-৭৮১০১৪
ম'বাইল ঃ ৯৮৬৪২২১০৭৩

**১.০ আৰম্ভণি ঃ**

মানৱ মনৰ ভাব আদান-প্রদানৰ সর্বোৎকৃষ্ট মাধ্যম হৈছে ভাষা। ভাষা কেবলমাত্র দুজন ব্যক্তিৰ মাজৰ পাৰস্পৰিক মত বিনিময় তথা সংযোগ স্থাপনৰ আহিলা নহয়, ই ভিন্ ভিন্ সমাজৰ ভিন্ ভিন্ লোকৰ মাজত সংযোগ স্থাপনৰো এক অন্যতম আহিলা। যেতিয়া বহু ভাষা-ভাষী লোকৰ মাজত ভাষাৰ মাধ্যমেৰে সংযোগ ঘটে, তেতিয়া সেই পৰিস্থিতিক ভাষিক সংযোগ বা ভাষা সংযোগ বোলা হয়। কোনো এক নির্দিষ্ট ভাষাৰ ব্যক্তিসকলৰ বাবে নিজৰ ভাষাটো বোধগম্য হয়। কিন্তু পাৰস্পৰিক বোধগম্যতা অবিহনেও ভিন্ন ভাষা-ভাষী লোকৰ মাজত ভাষা সংযোগ ঘটা দেখা যায়। এনে ভাষা সংযোগ ভিন্ ভিন্ কাৰণত ঘটিব পাৰে—(ক) দুটা ভিন্ন ভাষাৰ মানুহৰ মাজত যোগাযোগৰ ফলত ভাষিক সংযোগ ঘটে। (খ) দুটা নিম্নস্তৰীয় ভাষাৰ মাজত যোগাযোগৰ ফলত ভাষা-সংযোগ হ'ব পাৰে। উদাহৰণস্বৰূপে, অৰুণাচল প্রদেশত প্রায় ২৬ টা ভাষিক গোষ্ঠী আৰু ৭২ টা উপ-গোষ্ঠী (subtribes) আছে। এই ৭২ টা উপ-গোষ্ঠীৰ মাজত ভাবৰ আদান-প্রদান কৰিবলৈ একাধিক ভাষাৰ শব্দৰ মিশ্রণ ঘটে। ফলত ই একধৰণৰ ভাষা-সংযোগৰ পৰিস্থিতিৰ সৃষ্টি কৰে। (গ) ঠাই বিশেষে দাস প্রথাৰ প্রচলনো এক অন্যতম কাৰণ। (ঘ) যুদ্ধ-বিগ্রহত অংশ গ্রহণৰ বাবে অন্য দেশৰপৰা অনা সৈন্যৰ ভাষা প্রয়োগৰ ক্ষেত্রত ই সম্ভৱ হ'ব পাৰে। (ঙ) বিভিন্ন ধৰণৰ অভিযান, আবিষ্কাৰৰ কাৰণে হোৱা প্রব্রজনৰ ফলতো ভাষা-সংযোগ ঘটা দেখা যায়। এনেধৰণে ভাষা সংযোগৰ অন্তৰালত বিভিন্ন কাৰকে ক্রিয়া কৰিব পাৰে।

**২.০ ভাষা-সংযোগৰ প্রতিক্রিয়া ঃ**

যেতিয়া একাধিক ভাষাৰ মাজত সংযোগ ঘটে, তেতিয়া কেতবোৰ প্রতিক্রিয়াৰ সৃষ্টি হয়। এই প্রতিক্রিয়াসমূহে বিভিন্ন ভাষাভাষী লোকৰ মাজত ভাষা ব্যৱহাৰৰ ক্ষেত্রত প্রভাব পেলায়। এই ভাষিক প্রতিক্রিয়াসমূহক কেতবোৰ নির্দিষ্ট ভাগত ভাগ কৰিব পাৰি। সেই ভাগসমূহ হৈছে— ১। ভাষা মিশ্রণ বা সংমিশ্রণ, ২। ভাষা সঞ্চৰণ, ৩। নতুন ভাষাৰ সৃষ্টি, ৪। ভাষিক পৰিবর্তন।

১। **ভাষা মিশ্রণ ঃ** দ্বিভাষিক বা বহুভাষিক পৰিবেশত ভাষাৰ মিশ্রণ ঘটা দেখা যায়। কেতিয়াবা ভাষিক প্রয়োজন পূৰণ কৰিবলৈ আৰু কেতিয়াবা কোনো ভাষাক নিজৰ ভাষাতকৈ উচ্চ মর্য্যদা দিলেও ভাষা মিশ্রণ হ'ব পাৰে। ভাষা বিশ্লেষণৰ সকলো স্তৰতে এই পৰিঘটনা সম্ভৱপৰ হ'লেও ধ্বনিগত আৰু ৰূপগত দিশত ইয়াক প্রধানকৈ দেখা যায়।

২। **ভাষা সঞ্চৰণ ঃ** ই ভাষাৰ ঋণ প্রক্রিয়াৰ লগত জড়িত। এনে কার্য্যত

জড়িত ব্যক্তিৰ দুয়োটা ভাষাতে সমানে দক্ষতা থাকে। শব্দ, খণ্ডবাক্য, বাক্যাংশৰ স্তৰত ভাষাৰ সঞ্চৰণ বেছিকৈ হোৱা দেখা যায়। সাধাৰণতে দেখা যায় যে এটা ভাষাত কথা কৈ থকা ব্যক্তি এজনে হঠাতে আন এটা ভাষালৈ গতি কৰিলে এনে পৰিস্থিতিৰ উদ্ভৱ হয়।

৩। **নতুন ভাষাৰ সৃষ্টি ঃ** ভাষা সংযোগৰ ফলত নতুন ভাষাৰ সৃষ্টি হ'ব পাৰে। এনে নতুন ভাষা সামাজিক, ৰাজনৈতিক, অৰ্থনৈতিক আদি বিভিন্ন কাৰণত হ'ব পাৰে। এই নতুন ভাষাৰ ৰূপ দুটা— পিজিন (Pidgin) আৰু ক্ৰেঅ'ল (Creole)। পাৰস্পৰিক বোধগম্যতা নথকা দুটা ভাষাৰ লোকে যেতিয়া যোগাযোগৰ বাবে এটা নতুন ভাষাৰ সৃষ্টি কৰে, তেতিয়া তাক পিজিন বোলে। আনহাতে যেতিয়া কোনো এক নতুন সংযোগী ভাষা মাতৃভাষা অথবা প্ৰথমভাষা হিচাপে স্বীকৃত আৰু ব্যৱহৃত হয়, তেতিয়াই সি ক্ৰেঅ'লৰ মৰ্য্যদা পায়। উদাহৰণস্বৰূপে— নাগামিজ এটা ক্ৰেঅ'ল। প্ৰথমতে নাগালেণ্ডৰ লোকসকলে নিজৰ বিভিন্ন ভাষিক গোষ্ঠী আৰু অসমীয়াৰ মাজত ভাষা সংযোগৰ মাধ্যমৰূপে ইয়াক ব্যৱহাৰ কৰিছিল। তেতিয়া ই আছিল এটা পিজিন। কিন্তু ক্ৰমান্বয়ে বিদ্যালয়, অফিচ আদিলৈও নাগামিজৰ ভাষিক ব্যৱহাৰৰ সম্প্ৰসাৰণ ঘটিল। ফলস্বৰূপে ই প্ৰথম ভাষা হিচাপে স্বীকৃত হৈ ক্ৰেঅ'লৰ স্থান পালে।

৪। **ভাষাপৰিৱৰ্তন ঃ** ভাষাৰ পৰিৱৰ্তন বহুভাষিক পৰিস্থিতিত সংঘটিত হয়। ভাষা পৰিৱৰ্তন দুটা ক্ষেত্ৰত হোৱা দেখা যায়— (ক) ক্ষুদ্ৰ ভাষিক সম্প্ৰদায় এটাই নিজৰ ভাষাৰ সলনি আন প্ৰভাৱশালী ভাষাৰ শব্দ গ্ৰহণ কৰিলে ই হ'ব পাৰে। (খ) ভাষিক বোধগম্যতা অবিহনে সৃষ্টি হোৱা পিজিন এটা ক্ৰেঅ'ল হ'লেও ভাষা পৰিৱৰ্তন হয়। ভাষাৰ এনে পৰিৱৰ্তন প্ৰাকৃতিক বা স্বাভাৱিকভাৱে অথবা অস্বাভাৱিকভাৱেও হ'ব পাৰে।

ভাষা পৰিৱৰ্তনে কেতিয়াবা কোনো ভাষাৰ অস্তিত্ব বিপদাপন্ন কৰি তুলিব পাৰে। ফলত বিপন্ন ভাষা (endangered language) আৰু অতি সংকটজনক ভাষা (Critically endangered language)ৰ সৃষ্টি হ'ব পাৰে। ভাষা এটা বিপন্ন হয় নে নহয়, সেয়া জানিবলৈ ভাষাটোৰ জনসংখ্যা কিমান আৰু সৰ্বমুঠ জনসংখ্যাৰ ভিতৰত সেই ভাষা কোৱা লোকৰ সংখ্যা কিমান জানিব লাগে। কোনো এটা ভাষা যদি সেই নিৰ্দিষ্ট ভাষা-গোষ্ঠীৰ ভিতৰত কেৱল ৪০ বছৰ বয়সৰ ঊৰ্দ্ধৰ লোকে ব্যৱহাৰ কৰে, তেনেহ'লে সেইটো ভাষাক সংকটজনক ভাষা বুলি ক'ব পাৰি। যদি ভাষাটো কোৱা লোকৰ বয়স ৭০ বছৰৰ ওপৰ হয়, তেন্তেই অতি সংকটজনক ভাষা বুলি পৰিচিত হয়। এনে পৰিস্থিতিত ভাষা একোটাৰ মৃত্যুও হ'ব পাৰে।

**৩.০ অসমৰ ভাষিক পৰিস্থিতি ঃ**

ভাষাৰ ক্ষেত্ৰত অসম বৈচিত্ৰময়। বৰ্তমান ভৌগোলিক ক্ষেত্ৰৰ অসমখন বিভিন্ন জনগোষ্ঠীৰে ভৰা আৰু সেই জনগোষ্ঠীয় ভাষাৰে সমৃদ্ধ। যিকোনো জনগোষ্ঠী অথবা ভাষিক সম্প্ৰদায়ৰ স্বকীয় সামাজিক, সাংস্কৃতিক বৈশিষ্ট্যসমূহৰ প্ৰতিফলন ঘটে সেই জনগোষ্ঠীটোৰ ভাষাত। অসম বিভিন্ন জনগোষ্ঠীৰ মিলনভূমি। এই জনগোষ্ঠীসমূহে পৃথিৱীৰ ভিন্ ভিন্ ভাষা পৰিয়ালৰ ভাষিক বৈশিষ্ট্য কঢ়িয়াই আনিছে। অসমৰ প্ৰধান ভাষা অসমীয়া মূলতঃ প্ৰাচীন ভাৰতীয় আৰ্য্য ভাষাৰ পৰা ওলাইছে। যদিওবা অসমীয়া ভাষাৰ উৎপত্তি সম্পৰ্কে বিভিন্ন মত দেখিবলৈ পোৱা যায়, গ্ৰিয়াৰ্ছন, ড° সুনীতি কুমাৰ চেটাৰ্জী, ড° বাণীকান্ত কাকতি আদি গৱেষক পণ্ডিতৰ মতে অসমীয়া ভাষা মাগধী প্ৰাকৃতৰ পৰা ওলাইছে। আকৌ বেণীমাধৱ বৰুৱা, ডিম্বেশ্বৰ নেওগ আদিৰ মতে অসমীয়া ভাষাৰ উৎস হৈছে কামৰূপী প্ৰাকৃত। ভাষাবিদ কালিৰাম মেধিৰ মতে, অসমীয়া ভাষা প্ৰাচ্য আৰু পাশ্চাত্য অপভ্ৰংশৰ সংমিশ্ৰণ। অসমীয়া ভাষাৰ আন এগৰাকী গৱেষক কনকলাল বৰুৱাই অসমীয়া ভাষাৰ উৎপত্তি পৈশাচী প্ৰাকৃতৰ পৰা হোৱা বুলিহে বিশ্বাস কৰে। এনেধৰণে, অসমীয়া ভাষাৰ উৎপত্তি সম্পৰ্কে মতভিন্নতা থাকিলেও ইয়াৰ গাথনিক ৰূপ সংস্কৃত অনুসৃত। সেয়েহে ক'ব পাৰি যে অসমীয়া ভাষা এক সংস্কৃতমূলীয় ভাষা।

অসম বিভিন্ন ভাষিক গোষ্ঠীৰ বসতিস্থল। ইয়াত পৃথিৱীৰ বিভিন্ন ভাষা-পৰিয়ালৰ অন্তৰ্ভুক্ত ভালেকেইটা ভাষিক সম্প্ৰদায় আছে। ২০০১চনৰ ভাষা সমীক্ষা অনুসৰি অসমত ভাৰতীয় আৰ্যভাষাৰ অন্তৰ্গত বাৰটা ভাষাৰ প্ৰচলন আছে। সেই সমূহ হ'ল— অসমীয়া, বাংলা, নেপালী, হিন্দী, উড়িয়া, পঞ্জাবী,বিষ্ণুপুৰী মণিপুৰী, গুজৰাটী, উৰ্দু, মাৰাঠী, সিন্ধি আৰু কোংকনী। অসমৰ ৰাজ্যভাষা অসমীয়াত কেৱল আৰ্য্যমূলীয় উপাদানেই নহয়, বিভিন্ন আৰ্য্যভিন্ন ভাষাৰ কেতবোৰ ধ্বনিতাত্ত্বিক, ৰূপতাত্ত্বিক আৰু শব্দসম্বন্ধীয় বৈশিষ্ট্যও দেখা যায়। যদিওবা ভাষা সমীক্ষা অনুসৰি বাৰটা ভাষা আৰ্যমূলীয় ভাষাৰূপে অসমৰ কোনো কোনো অঞ্চলত প্ৰচলিত, তথাপি অসমত প্ৰচলিত ভাৰতীয় সংবিধানৰ অনুসূচী অন্তৰ্ভুক্ত প্ৰধান ভাষা কেইটা হৈছে— অসমীয়া, নেপালী, বড়ো, বাংলা, আৰু মেইতেই (মণিপুৰী)। এইসমূহ প্ৰধান ভাষাৰ উপৰিও আন বহুকেইটা ভাষা অসমত অঞ্চলবিশেষে কম-বেছি পৰিমাণে প্ৰচলিত। যেনে — আইতন (টাই ভাষাগোষ্ঠী), টাই-আহোম, আম্ৰি কাৰ্বি, ককবৰক (চীন-তিব্বতীয়), কচ'কৰ'

(চীন-তিব্বতীয়), কন্যাক (তিব্বতবর্মীয়), খড়িয়া (মুণ্ডা শ্রেণীৰ ভাষা), খাছী (অষ্ট্রিক গোষ্ঠী), খাম্‌টি (টাই গোষ্ঠী), গাৰো (তিব্বতবর্মীয়), গাল', চাওৰা, চাক্‌দা, চিংফৌ (তিব্বতবর্মীয়), টাই-খাময়াং, টাই-ফাকে, টাই-টুৰুং, টাংছা (চীন-তিব্বতীয়), টেনিদি, ডিমাছা (তিব্বতবর্মীয়), তিৰা, দেউৰী (তিব্বতবর্মীয়), থাপা, নিছি, পাইতে, (তিব্বতবর্মীয়), বিষ্ণুপ্রিয়া মণিপুৰী, মৰাণ (বড়োমূলীয়), মিচিং (তিব্বতবর্মীয়), মুমডাৰী (অষ্ট্রিক) ৰাজবংশী (নব্যভাৰতীয় আর্যভাষা) ৰেংমা, সোণোৱাল কছাৰী, হাজং (তিব্বতবর্মীয়), হো (অষ্ট্রিক) আদি।

এক বৃহত্তৰ অসমীয়া ভাষা সম্প্রদায় গঢ় লৈ উঠাৰ ক্ষেত্রত অসমীয়া ভাষাৰ শব্দসম্ভাৰ বিভিন্ন আর্য্য আর্য্যভিন্ন ভাষাৰ শব্দৰে পৰিপুষ্ট হৈ উঠিছে। অসমীয়া ভাষাত ব্যৱহৃত অধিকাংশ শব্দৰ উৎস হৈছে সংস্কৃত। এই শব্দবোৰে ধ্বনি পৰিৱর্তনৰ নিয়ম মানি প্রাকৃতৰ মাজেদি পৰিৱর্তন হৈ থলুৱা অসমীয়া ৰূপ লৈছে, যিবোৰক তদ্ভৱ শব্দ বোলা হয়। যেনে— হাত, কাণ, সাপ, হাতী, মাছ আদি। এইসমূহৰ উপৰিও আন ভাষাগোষ্ঠী কেতবোৰৰ পৰাও বিভিন্ন ধৰণৰ শব্দ অসমীয়া ভাষাৰ শব্দভাণ্ডাৰত সোমাইছে। উদাহৰণস্বৰূপে— কাৰৌ, কিংখাপ, খামোচ, ডিঙা, জঞ্জাল,নোদোকা, চোকোৰা আদি বহুল প্রচলিত অসমীয়া শব্দ অষ্ট্রিকমূলীয়। ঠিক তেনেদৰে, কোল বা মুণ্ডা ভাষাগোষ্ঠীৰ পৰা অহা বুলি অনুমান কৰা কিছুমান শব্দ হৈছে— আটোম টোকাৰী, ডঙুৱা,হুটা, লাটুম, মাই, মাইকী, মুগা, এলাইবাদু, গোহাৰি, যুগুত আদি। অসমীয়া ভাষাত কেতবোৰ শব্দ তিব্বত-বর্মীয় ভাষাগোষ্ঠীৰ পৰা আহিছে। এই উপাদানসমূহ ঘাইকৈ বড়োমূলীয় আৰু টাইমূলীয় বুলি ঠাৱৰ কৰা হৈছে। বড়োমূলীয় বুলি ধাৰণা কৰা শব্দ কিছুমান হৈছে— হাফলু, মাইহাং, হেমাহি, হোজা, হোলোঙা, বোন্দা, চাং আদি। ঠিক তেনেদৰে টাই ভাষাগোষ্ঠীৰ পৰাও খাং, পোখা, জান, ডেকা, জেঙা, ঠোঙা, কাৰেং আদি শব্দ অসমীয়া ভাষালৈ আহিছে বুলি অনুমান কৰা হৈছে।

### ৩.১ অসমীয়া ভাষা গঠনত উপভাষাৰ ভূমিকা ঃ

অসমীয়া ভাষা ব্যৱহাৰৰ ক্ষেত্রত বিচিত্রতা প্রতিফলিত হোৱা এক অন্যতম দিশ হৈছে অসমীয়া ভাষাৰ উপভাষাসমূহ। উপভাষা হৈছে ভাষা একোটাৰ আঞ্চলিক সামাজিক ৰূপ। ভাষাৰ সামগ্রিক ৰূপৰ বহিঃপ্রকাশ ঘটে উপভাষাসমূহৰ জৰিয়তে। মান্যভূক্তিকৰণ (Standardization) পদ্ধতিৰ জৰিয়তে কোনো এক নির্দিষ্ট উপভাষাই ভাষাৰ স্বীকৃতি পায়। Wardhangh ৰ মতে, 'Standardization refers to the process by Which a languge has been codified in some way. That process usually involves the development of such things as grammars, spelling books, and dictionaries, and possibly a literature.' (An Introduction to Sociolinguistics:p.33)' অসমীয়া ভাষাৰ মান্যৰূপটো শিৱসাগৰৰ আঞ্চলিক ৰূপৰ ওপৰত প্রতিষ্ঠিত, যিটো ভাষিক ৰূপ অসমৰ শিক্ষা, প্রশাসন ব্যৱস্থা সকলোতে প্রচলিত আৰু সর্বজনস্বীকৃত। কিন্তু অসমৰ ভৌগোলিক ক্ষেত্রলৈ দৃষ্টি নিক্ষেপ কৰিলে দেখা যায় যে অসমৰ পূব প্রান্তৰ পৰা পশ্চিম প্রান্তলৈ বৃহত্তৰ অসমীয়া ভাষাৰ কথিত ৰূপ ভিন্ ভিন্। ভাষাৰ এই আঞ্চলিক ৰূপবোৰেই হৈছে ইয়াৰ উপভাষা। অসমীয়া ভাষাৰ উপভাষাসমূহক প্রধানকৈ দুটা ভাগত ভগাব পাৰি— পূব অঞ্চলৰ উপভাষা আৰু পশ্চিম অঞ্চলৰ উপভাষা। ড° বিশ্বজিত দাসৰ মতে, পূব অঞ্চলৰ অসমীয়াৰ দুটা ভাগ—

(ক) শিৱসাগৰীয়া অসমীয়া আৰু (খ) মধ্য অসমৰ উপভাষা। সেইদৰে পশ্চিম অঞ্চলৰ অসমীয়াকো দুটা ভাগত ভাগ কৰা হৈছে— (ক) কামৰূপী উপভাষা (অবিভক্ত কামৰূপ জিলাত প্রচলিত) আৰু (খ) গোৱালপৰীয়া উপভাষা (অবিভক্ত গোৱালপাৰা জিলাত প্রচলিত)। (অসমীয়া আৰু অসমৰ ভাষাঃ পৃ. ৩১)। অসমীয়া ভাষাৰ প্রখ্যাত গৱেষক পণ্ডিত ড° বাণীকান্ত কাকতিৰ মত অনুসৰি, "Assamese may be divided dialectically into Eastern Assamese and western Assamese. The language from Sadiya the easternmost frontier down to guwahati enhibits a certain homogeneity and hardly presents any notable point of difference from the spoken dialect of sibsagar, the capital of the late Alom kings. And for the purposes of literature this dialect is genenally regarded as the standard language." (Assamese, its formation and Development, p.18) শিৱসাগৰীয়া উপভাষাটোৰ লগত উজনি অসমৰ প্রায়বোৰ অঞ্চলৰে কথিত ভাষাৰ যথেষ্ট মিল থকা দেখা যায়। কিন্তু পশ্চিম বা নামনি অসমৰ প্রধান উপভাষা দুটা কামৰূপী আৰু গোৱালপৰীয়া উপভাষাৰ বহুত সংখ্যক স্থানীয় ৰূপ আছে। যিদৰে উজনি অসমৰ উপভাষাসমূহৰ মাজত ভাষাগত সাদৃশ্য বিৰাজমান, নামনি অসমৰ উপভাষাসমূহৰ মাজত এনে সাদৃশ্যতা যথেষ্ট কম পৰিমাণেহে দেখা যায়। গোৱালপৰীয়া উপভাষাত ৰাজবংশী শব্দৰ বহুল প্রয়োগ দেখা যায়। ঠিক তেনেদৰে, কামৰূপী মূল উপভাষাটোৰো নলবৰীয়া, বৰপেটীয়া আদি বিভিন্ন স্থানীয় ৰূপ দেখা যায়। আনকি নলবাৰী অঞ্চলৰ ভাষিক ৰূপটোও আঞ্চলিক বিভাজনৰ ভিত্তিত পূব নলবাৰী আৰু পশ্চিম নলবাৰী হিচাপে দুটা ভাগত ভগোৱা হয়। অসমীয়া ভাষাৰ সামগ্রিক গঠনত এই উপভাষাসমূহৰ অৱদান যথেষ্ট। বিভিন্ন উপভাষাভাষী লোকৰ বাবে অসমীয়া ভাষাৰ মান্যৰূপটো বোধগম্য হয়, কাৰণ

মান্যভাষাটোৰ শব্দ, বাক্যগাথনি আদিৰ ওপৰত উপভাষাসমূহৰ শব্দ, বাক্য গাথনি আদি নির্ভৰ কৰে। কিন্তু তথাপিও অসমীয়া ভাষাৰ মান্যৰূপটো আৰু ইয়াৰ প্রধান উপভাষাসমূহৰ ধ্বনিগত, ৰূপগত আৰু বাক্যগত বৈসাদৃশ্যও কিছু কিছু ক্ষেত্রত পৰিলক্ষিত হয়। শব্দভাণ্ডাৰৰ ক্ষেত্রত সাধাৰণতে এনে অমিল বেছিকৈ দেখা যায় পশ্চিমৰ উপভাষা আৰু মান্য অসমীয়া ভাষাৰূপৰ মাজত। ধ্বনিগত পৰিৱর্তনো যথেষ্ট ভাৱে দেখা যায়। উদাহৰণস্বৰূপে, মান্য অসমীয়া 'ভেকুলী' দৰঙীয়া উপভাষাত ভকেলী, পশ্চিম অসমৰ উপভাষাত 'ভেক্‌লি' বুলি জনাজাত। ঠিক তেনেদৰে, মান্য অসমীয়া 'জলকীয়া' শব্দটো নামনি অঞ্চলত ঠাইবিশেষে 'জালা' 'ভজলুক' আদি বুলিও কোৱা হয়।

**৩.২ ভাষা সঞ্চৰণ আৰু অসমীয়া ভাষা ঃ**

অসমীয়া ভাষা ব্যৱহাৰৰ ক্ষেত্রত বর্তমান পৰিলক্ষিত হোৱা এক গুৰুত্বপূর্ণ দিশ হৈছে ভাষা সঞ্চৰণ। বিশ্বায়নৰ ফলশ্রুতিত পৃথিৱীৰ অন্যান্য ভাষালৈ পৰিৱর্তন অহাৰ দৰে অসমীয়া ভাষালৈও কেতবোৰ পৰিৱর্তন আহিছে। বহুভাষিকতা আজিৰ অসমীয়া সমাজৰ এক চিনাকি বৈশিষ্ট্য। অসমীয়া ভাষা কোৱা নতুন প্রজন্মৰ মাজত ইংৰাজী আৰু হিন্দী ভাষাৰ শব্দৰ সঘন প্রচলন দেখা যায়। উদাহৰণস্বৰূপে—

১। মই তেওঁক directly কথাটো কম।

২। তুমি মোবাইলটো যিমান দিন মন যায় use কৰা, পিছত মোক return দি দিবা।

৩। দিনটো Office duty কৰি ৰাতি Kitchen যাবলগীয়া হ'লে মই যে কেনেকুৱা tired feel কৰো।

৪। সি যে ইমান নিকম্মাঙ্গ

৫। তই ইমান কিয় চিপ্‌কি থাক?

সাধাৰণতে নতুনচাম অসমীয়াভাষী লোকৰ মাজত ভাষা মিশ্রণ বা ভাষা সলনিকৰণৰ প্রৱণতা বেছি দেখা যায়। সপোন দুৱৰাই অভিমত আগবঢ়াইছে যে — 'ভাষা মিশ্রণৰ ধাৰণাটোৱে এনে এক ভাষিক ব্যৱহাৰৰ সূচনা কৰে য'ত বক্তা এগৰাকীয়ে যি ভাষাত ভাৱ বিনিময় কৰিছে; সেই ভাষাটোত তেওঁ প্রচুৰ পৰিমাণৰ অন্য ভাষাৰ শব্দৰ মিশ্রণ কৰে। (ভাষা আৰু সমাজঃ পৃ. ৮৭)। এটা ভাষাৰ পৰা আন এটা ভাষালৈ গতি কৰাৰ অন্তৰালত সাধাৰণতে ব্যক্তি এজনৰ মানসিক অৱস্থাই ক্রিয়া কৰা দেখা যায়। বর্তমান অসমীয়া ভাষা-সম্প্রদায়টোৰ শিক্ষিত অর্ধশিক্ষিত প্রায়ভাগ লোকেই অন্য ভাষাৰ পৰা আমদানিকৃত শব্দ ব্যৱহাৰ কৰে।

**৪.০ সামৰণি ঃ**

ভাষা পৰিৱর্তনশীল। সময় আৰু পৰিবেশ সাপেক্ষে ভাষাই নিজৰ কেতবোৰ স্বকীয়তা হেৰুৱায়, আন ভাষাৰ পৰাও নজনাকৈয়ে কিছুমান বৈশিষ্ট্য পৰিগ্রহণ কৰে। অসমীয়া ভাষাৰ ক্ষেত্রতো ভাষাৰ এই সার্বজনীন লক্ষণ প্রযোজ্য হোৱা দেখা যায়। সময়ৰ গতিত অসমীয়া ভাষাইও নিকটবর্ত্তী অন্যান্য ভাষিক সম্প্রদায়ৰ লগত শব্দ বিনিময় কৰিছে, শব্দ ঋণ কৰিছে আৰু নিজৰো কিছু শব্দ আনভাষাই গ্রহণ কৰিছে। এনে ধৰণৰ দিয়া-লোৱা কৰা কার্য্যত ভাষা সলনি প্রক্রিয়াটো অসমীয়া ভাষা ব্যৱহাৰকাৰীৰ ক্ষেত্রত এক স্বাভাৱিক প্রক্রিয়া ৰূপে পৰিগণিত হৈছে। এই ক্ষেত্রত সপোন দুৱৰাৰ বক্তব্য প্রনিধানযোগ্য—

'দৰাচলতে ভাষা সলনি এটা স্বাভাৱিক প্রথা। বাস্তৱ জীৱনত এজন বক্তাই বিভিন্ন পৰিস্থিতিত ভাষা ব্যৱহাৰ কৰিব লগা হয়। এই পৰিস্থিতিসমূহে ব্যক্তিক ভাষা ব্যৱহাৰ বা ভাষা সলনিৰ বাবে অনুপ্রেৰণা যোগায়।' (ভাষা আৰু সমাজ, পৃ. ৮৯)

গতিকে ক'ব পাৰি যে অসমৰ ভাষিক ব্যৱস্থা কেৱল এটা ভাষা-সম্প্রদায়ৰ দ্বাৰাই গঠিত নহয়, ভিন্ ভিন্ সময়ত ভিন্ ভিন্ ভাষাগোষ্ঠীৰ অৱদানেৰেও ই সমৃদ্ধ। ভাষা মিশ্রণ প্রক্রিয়াৰ জৰিয়তে ভাৰতৰ অন্যান্য প্রান্তৰ ভাষাৰ বিভিন্ন উপাদানেও ইয়াক ঐশ্বর্য্যশালী কৰি তুলিছে। ❑


**সহায়ক গ্রন্থপঞ্জী ঃ**

১। দাস, ড° বিশ্বজিত আৰু ড° ফুকন চন্দ্র বসুমতাৰী (২০১০) 'অসমীয়া আৰু অসমৰ ভাষা' আঁক-বাক

২। দুৱৰা, সপোন ঃ (২০০২) 'ভাষা আৰু সমাজ' ষ্টুডেণ্টচ্ ষ্টৰ্চ, গুৱাহাটী

৩। ভৰালী, ড° বিভা আৰু ড° বনানি চক্রৱর্ত্তী (২০১৩)'অসমৰ ভাষা', বনলতা প্রকাশন।

৪। Kakati, Banikanta (2021, 4th Edition) : 'Assamese its Formation and Development' LBS Publications, Assam.

৫। Wardhaugh, Ronald and Janet M. Fuller (2015, Seventh Edition) An Introduction to Sociolinguistis, Wiley Blackwell.

গৱেষণা পত্ৰ

# লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ গল্পত নাৰী চৰিত্ৰ ঃ 'ভদৰী' আৰু 'ললিতী কাকতী' গল্পৰ বিশেষ উল্লিখনেৰে

ড° স্বপ্নালী দাস

সহকাৰী অধ্যাপিকা
অসমীয়া বিভাগ,
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী
ম'বাইল ঃ ৯৩৬৫৫৭০৬৪০
ইমেইল ঃ swapnalidasghy@gmail.com

**সংক্ষিপ্ত সাৰ ঃ**

অসমীয়া সাহিত্যৰ ইতিহাসত 'সাহিত্যৰথী' বিভূষণেৰে বিভূষিত হোৱা অমল ব্যক্তিত্বৰ অধিকাৰী লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱা আছিল এটা যুগৰ স্ৰষ্টা। বেজবৰুৱাৰ হাততে অসমীয়া চুটিগল্পই জন্ম লাভ কৰে। 'জোনাকী'ৰ চতুৰ্থ বছৰ, চতুৰ্থ সংখ্যাত 'সেউতী' নামৰ প্ৰথমটো চুটিগল্প ৰচনাৰ জৰিয়তে বেজবৰুৱাই এগৰাকী গল্পকাৰৰূপে আত্মপ্ৰকাশ কৰে আৰু পাছলৈ চুটিগল্পৰ জনকৰূপে খ্যাতি অৰ্জন কৰিবলৈ সক্ষম হয়। তেওঁ 'সুৰভি', 'কেঁহোকলি' আদি কেইবাখনো গল্পপুথি প্ৰণয়ন কৰি অসমীয়া গল্প সাহিত্যৰ ভঁৰাল চহকী কৰি থৈ গৈছে। তেওঁৰ গল্পৰ গঢ় আৰু প্ৰকৃতি বিভিন্ন আৰু বিচিত্ৰ। সমাজৰ ভিন্ন স্তৰৰ পুৰুষ-নাৰীৰ সুখ-দুখ, হা-হুতাশ, আবেগ-অনুভৱ, ভুল-ত্ৰুটি, দোষ-গুণ আদিৰ চিত্ৰ তেওঁৰ গল্পত দেখা যায়। নাৰী চৰিত্ৰকেন্দ্ৰিক বহুকেইটা গল্প বেজবৰুৱাই প্ৰণয়ন কৰিছে— যিবোৰ গল্পই ঊনবিংশ শতিকাৰ সমাজ ব্যৱস্থাত নাৰীৰ সামাজিক স্থিতি কি আছিল তথা নাৰীয়ে কি কি পৰিস্থিতিৰ মুখামুখি হ'বলগা হৈছিল, সেই ইংগিত বহন কৰে। তদুপৰি নাৰীৰ পৰম্পৰাগত চিন্তা-চৰ্চা, পুৰুষপ্ৰধান সমাজ ব্যৱস্থাত নাৰীৰ স্থান, নাৰীৰ মনস্তাত্ত্বিক ধ্যান-ধাৰণা আদিৰ নিৰ্মোহ বিশ্লেষণ বেজবৰুৱাৰ নাৰীকেন্দ্ৰিক গল্পসমূহত পৰিলক্ষিত হয়। এই আলোচনা পত্ৰখনত বেজবৰুৱাৰ গল্পত নাৰী চৰিত্ৰৰ কোনবোৰ দিশ তুলি ধৰিছে তাৰ বিশ্লেষণ কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে। বেজবৰুৱাৰ বিশেষ দুটা গল্প 'ভদৰী' আৰু 'ললিতী কাকতী'ৰ আধাৰত আলোচনা দাঙি ধৰা হ'ব।

**বীজ শব্দ ঃ** অসমীয়া, সাহিত্য, বেজবৰুৱা, চুটিগল্প, নাৰী, পুৰুষ, সমাজ।

**০.০০ অৱতৰণিকা ঃ**

আধুনিক অসমীয়া ভাষা-সাহিত্যৰ ভেটি নিৰ্মাণত বলিষ্ঠ পদক্ষেপ আগবঢ়োৱা সাহিত্যিকসকলৰ অন্যতম আছিল লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱা। ভাষা-সাহিত্যৰ এক সংকটপূৰ্ণ মুহূৰ্তত এইজন পুৰোধা ব্যক্তিয়ে কাপ-মৈলাম হাতত তুলি লৈছিল। ১৮৮৯ চনত কলিকতাত প্ৰকাশ পোৱা 'জোনাকী'ৰ পাততেই বেজবৰুৱাই এগৰাকী সাহিত্যিকৰূপে আত্মপ্ৰকাশ আৰু আত্মপ্ৰতিষ্ঠা লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হয়। তেওঁ কেৱল এজন সাহিত্যিকেই নাছিল; আছিল এক জাতীয় সত্তা। তেওঁৰ বিশাল ব্যক্তিত্বৰ ফলতেই গঢ় লৈ উঠিছিল এক মহৎ সাহিত্য আন্দোলনৰ। 'জোনাকী'ৰ প্ৰথম বছৰ প্ৰথম সংখ্যাত ধেমেলীয়া নাটক 'লিতিকাই'ৰে (১৯০১) লেখক জীৱন আৰম্ভ কৰা

বেজবৰুৱাই নিৰবচ্ছিন্নভাৱে লিখি গৈছিল এখনৰ পিছত এখন মূল্যৱান গ্ৰন্থ। প্ৰথম অসমীয়া চুটিগল্পয়ো বেজবৰুৱাৰ হাততেই প্ৰাণ পাই উঠে।

সাহিত্যৰ মেটমৰা বোজাৰে অসমীয়া সাহিত্যৰ ৰথখনৰ মুখ্য চালকৰ ভূমিকা পালন কৰা বেজবৰুৱা আছিল যথার্থতে সাহিত্যৰথী। তেওঁ আছিল একাধাৰে কবি, প্ৰবন্ধকাৰ, নাট্যকাৰ, ঔপন্যাসিক, সাধুকথা লেখক, ব্যঙ্গ লেখক, শিশু সাহিত্যিক, তত্ত্বকথাৰ লেখক, জীৱনী লেখক আৰু এজন সুদক্ষ গল্পকাৰ। সাহিত্যৰ প্ৰতিটো বিভাগতে বেজবৰুৱাই দক্ষতা আৰু কৃতিত্বৰ পৰিচয় দিছিল। তদুপৰি তেওঁ এজন কার্টুনিষ্ট আৰু বুদ্ধিদীপ্ত সাংবাদিক আছিল।

বেজবৰুৱাৰ বিশাল সাহিত্য সম্ভাৰৰ মাজৰ গল্পসমূহে নিজস্ব বৈশিষ্ট্যৰে জিলিকি আছে। সামাজিকভাৱে দায়ৱদ্ধ লেখক হিচাপে বেজবৰুৱাৰ গল্পত সমাজৰ বিভিন্ন দিশৰ পৰিচয় পোৱা যায়। অসমীয়া মানুহৰ চাৰিত্ৰিক বৈশিষ্ট্যবোৰ তেওঁৰ গল্পৰ মাজত প্ৰত্যক্ষ কৰিব পাৰি। সমাজৰ এক অবিচ্ছেদ্য অংগ হৈছে নাৰী। এখন সুস্থ সমাজ গঢ় দিয়াত পুৰুষ-নাৰী উভয়ৰে অৱদান অনস্বীকার্য। সেয়ে পুৰুষৰ সমানেই মর্যাদা লাভ কৰাটো নাৰীৰ জন্মস্বত্ব অধিকাৰ। কিন্তু কার্যতঃ তেনে হোৱা দেখা নাযায়। পুৰুষপ্ৰধান সমাজ ব্যৱস্থাত বহু ক্ষেত্ৰত নাৰীৰ সামাজিক মর্যাদা অৱনমিত হোৱা পৰিলক্ষিত হয়। বিশেষকৈ ভাৰতীয় সমাজ ব্যৱস্থাত নাৰীয়ে উপযুক্ত সন্মান আৰু আত্মমর্যাদাৰে জীৱন ধাৰণা কৰা দেখা নাযায়। অসমীয়া সমাজতো বিভিন্ন সময়ত পুৰুষ সমাজৰ দ্বাৰা নাৰী লাঞ্ছিত, বঞ্চিত হৈ অহা দেখা যায়। নাৰীৰ সন্মানৰ প্ৰতি সচেতন বেজবৰুৱাই তেওঁৰ বহুকেইটা গল্পত নাৰী চৰিত্ৰৰ বিভিন্ন দিশ উপস্থাপন কৰিছে। তেওঁৰ গল্পত নাৰী চৰিত্ৰৰ বৈচিত্ৰ্য আৰু যথাযথ প্ৰকাশ লক্ষ্য কৰা যায়। ঊনবিংশ শতিকাৰ অসমীয়া সমাজত নাৰীয়ে কি কি সমস্যাৰ সন্মুখীন হ'ব লগা হৈছিল, কেনেদৰে নির্যাতিত, অৱহেলিত হৈ জীৱন কটাবলগীয়া হৈছিল তাৰ স্পষ্ট আভাস বেজবৰুৱাৰ গল্পত ফুটি উঠা দেখা যায়।

**০.০১ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ**

লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ গল্পত নাৰী চৰিত্ৰই বিভিন্ন দিশেৰে উজ্বলি উঠিছে। নাৰীৰ পৰম্পৰাগত চিন্তা, সুখ-দুখ, হা-হুতাশ, সামাজিক স্থিতি, হাঁহি-কান্দোন আদিৰ ছবি বেজবৰুৱাৰ গল্পত কেনেদৰে প্ৰতিফলিত হৈছে তাক আলোক-সম্পাত কৰাই এই অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য।

**০.০২ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ**

আলোচনা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰিবৰ বাবে বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হ'ব।

**০.০৩ অধ্যয়নৰ উৎস ঃ**

আলোচনা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰিবৰ বাবে বেজবৰুৱাৰ দুটা উল্লেখযোগ্য গল্প 'ভদৰী' আৰু 'ললিতী কাকতী'ক মুখ্য উৎস হিচাপে গ্ৰহণ কৰাৰ উপৰিও গৌণ উৎসৰো সহায় লোৱা হৈছে।

**১.০০ মূল বিষয়বস্তু ঃ**

লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ গল্পসমূহ আছিল বহুমাত্ৰিক। ঊনবিংশ শতিকাৰ এজন লেখক হিচাপে তেওঁ সমসাময়িক সমাজখনক চকুৰ আগত ৰাখিছিল। সমাজৰ বিভিন্ন স্তৰৰ পুৰুষ-নাৰীৰ জীৱনৰ বিভিন্ন সমস্যা, সুখ-দুখ, হাঁহি-কান্দোন, প্ৰেম-ভালপোৱা, দোষ-ত্ৰুটি, শোষণ-নিপীড়নৰ ছবি তেওঁৰ গল্পৰ মূল উপজীব্য। বেজবৰুৱাৰ দৃষ্টিত পুৰুষ আৰু নাৰীয়ে সদায়েই সমানে স্থান লাভ কৰি আহিছে। তাৰ আভাস তেওঁৰ সাহিত্যৰাজিৰ মাজত দেখা যায়। তেওঁৰ বিশাল সাহিত্যসম্ভাৰৰ মাজত নাৰী চৰিত্ৰক হেয় প্ৰতিপন্ন কৰা বা নাৰীৰ মর্যাদা অৱনমিত হোৱা এযাৰ বাক্যও ক'তো প্ৰয়োগ কৰা নাই, বৰঞ্চ নাৰীৰ আত্মসন্মানৰ হকেহে তেওঁ মাত মতা পৰিলক্ষিত হয়।

বেজবৰুৱাৰ গল্পৰ নাৰী চৰিত্ৰসমূহ ভিন্নমুখী। কোনোবা পতিব্ৰতা আৰু ক্ষমাশীল, কোনোবা মুখৰা, কোনোবা আনন্দময়ী প্ৰাণচঞ্চলা; আনহাতে কোনোবা তীব্ৰ প্ৰতিবাদী।

বেজবৰুৱাৰ নাৰী চৰিত্ৰ প্ৰকাশক গল্পসমূহৰ ভিতৰত 'ভদৰী' এটা উৎকৃষ্ট গল্প। ভাৰতীয় নাৰীৰ পৰম্পৰাগত চিন্তা-চেতনাৰে ভদৰী চৰিত্ৰ গঢ় লৈ উঠিছে। এগৰাকী বিবাহিত নাৰীৰ বাবে স্বামীৰ ঘৰখনেই স্বৰ্গ আৰু স্বামীয়েই সৰ্বস্ব। এনে পৰম্পৰাগত চিন্তা ভদৰীৰ মন-মগজুত সোমাই আছে। নাৰী চৰিত্ৰৰ সহনশীলতা, মহানুভৱতা, ক্ষমাশীল আদি গুণবোৰ 'ভদৰী' গল্পত সুন্দৰকৈ প্ৰতিফলিত হৈছে। শিশুৰামৰ পত্নী ভদৰীয়ে স্বামীৰ হাতৰ চৰটো, গোৰটো, ভুকুটো খোৱাটো তাইৰ বিবাহিত জীৱনৰ অপৰিহাৰ্য অংগ বুলি গণ্য কৰি আহিছে। "বাস্তৱিক পক্ষতে ভদৰীৰ এনে বিশ্বাস হৈ গৈছিল যে ভুকুটো-ঢকাটো, চৰটো-গোৰটো, কাঠখৰি আৰু ঢেঁকীথোৱাৰ মাৰটো, উঠা-বহা, খোৱা-লোৱাৰ লগতে বিবাহিত জীৱনৰ অপৰিহাৰ্য্য অংগ।" আমাৰ সমাজত এনে বহু মহিলা আছে, যিয়ে বিবাহিত জীৱনত স্বামীৰ দ্বাৰা এনেদৰে প্ৰহৃত হৈ আহিছে, অথচ মুখেৰে এযাৰ মাত দিয়াৰো প্ৰয়োজনবোধ নকৰে। ভদৰী চৰিত্ৰই এনে নাৰীৰে প্ৰতিনিধিত্ব কৰিছে। সংসাৰৰ জ্বালা-যন্ত্ৰণাত খিংখিঙীয়া হৈ উঠা শিশুৰামৰ খং নিবাৰণৰ একমাত্ৰ আহিলা হ'ল তাৰ তিৰোতা ভদৰী। হালৰ পৰা ভোকে-লঘোণে উধাতু খাই অহা শিশুৰামে সময়মতে ভাতমুঠি নাপায় খঙত অগ্নিশৰ্মা হৈ বেচেৰী ভদৰীৰ ওপৰতে চিঞৰি উঠল। আনহাতে গেৰেহা কেঁচা খঁৰি ফুৰাওঁতে ফুৰাওঁতে হাৰা-শাস্তি হোৱা ভদৰীৰো সহ্যৰ সীমা চেৰাই গ'ল। তাই শিশুৰামৰ ওপৰত চিঞৰি উঠিল "মোৰ মূৰটোৰে ভাত ৰান্ধি দিম নেকি? খৰি এডাল বুলিবলৈ নাই।" ঘৈণীৰ বৰ মাত শুনাতো শিশুৰামৰ পক্ষে অসহ্যকৰ। খঙৰ ভমকত হিতাহিত জ্ঞান হেৰুৱাই শিশুৰামে মৈদাখনেৰে ভদৰীৰ পিঠিত ওপৰা-উপৰিকৈ দোকোপ মাৰিলে। অৱশ্যে ভদৰী বাচিল। কিন্তু পুলিচে গ্ৰেপ্তাৰ কৰা শিশুৰামক ৰক্ষা কৰিবৰ কাৰণে ভদৰীয়ে বিচাৰকৰ আগত মিচা মাতি নিজে মৈদাত পৰিহে তাইৰ গা কাটিছে বুলি সাক্ষ্যদান দিলে। ভদৰীৰ চৰিত্ৰৰ বৈশিষ্ট্য ইয়াতেই প্ৰকাশ পাইছে। ক্ষমা, ধৈর্য আৰু ত্যাগেৰে ভদৰী মহীয়ান হৈ উঠিছে। এগৰাকী অতি সাধাৰণ নাৰী হৈও তাই অসাধাৰণ কার্য সম্পাদন কৰিলে, যাৰ ফলত শিশুৰামৰ দৰে উগ্ৰ স্বভাৱৰ ব্যক্তিৰো হৃদয় বিগলিত নহৈ নাথাকিল। দাম্পত্য জীৱনৰ গভীৰ অর্থবোধে ভদৰীক মহানুভৱ কৰি তুলিছে। বেজবৰুৱাই নাৰীৰ হৃদয়ত অন্তঃসলীলা হৈ থকা সীমাহীন স্নেহৰ সন্ধান দিছে ভদৰী চৰিত্ৰ যোগেদি। নাৰী শিলতকৈও কঠোৰ আৰু ফুলতকৈও কোমল। প্ৰথম অৱস্থাত মুখৰা, দন্দুৰী তিৰোতাৰূপে আত্মপ্ৰকাশ কৰা ভদৰী পিছত গভীৰ স্বামীগত প্ৰাণা তিৰোতা হিচাপে ধৰা দিছে। হাস্পতালত থকা ভদৰীয়ে আচামীৰূপে স্বামীক দেখা পাই স্বামীয়ে জেল-হাজোতত ভাত-পানী খাবলৈ পাইছে নে নাই তাৰ খবৰ লৈছে। যিজন স্বামীৰ চোকা অস্ত্ৰৰ প্ৰহাৰত তাই হাস্পতাল পালেগৈ, সেইজন স্বামীৰ প্ৰতি তাই চিন্তিত আৰু অনুৰক্ত হৈ উঠিছে। এয়া ভাৰতীয় পৰম্পৰাগত নাৰীৰ মমতাময়ী ৰূপৰ বাহিৰে আন একো নহয়। চৰিত্ৰটিৰ মহত্ত্বও ইয়াতেই ফুটি উঠিছে। নাৰীয়ে ক্ষমা, দয়া আৰু প্ৰেমেৰে কঠোৰ মনৰ স্বামীকো সঠিক পথলৈ আনিব পাৰে। 'ভদৰী' গল্পত বেজবৰুৱাই সেই দিশটোও দাঙি ধৰিছে।

বেজবৰুৱাৰ আন এটা উল্লেখযোগ্য গল্প হ'ল 'ললিতী কাকতী'। 'ভদৰী' আৰু 'ললিতী কাকতী' দুয়োটা গল্পৰ বৈপৰীত্য মন কৰিবলগীয়া। ললিতী ভদৰীৰ দৰে সহি-সহি জীৱন কটোৱা নাৰী নহয়। তাই পুৰুষৰ দ্বাৰা বঞ্চিত, লাঞ্ছিত হৈ জীৱন কটোৱাৰ পক্ষপাতী নহয়। কাকতী আৰু কাকতীয়নীৰ একমাত্ৰ আদৰৰ কন্যা ললিতীয়ে আত্মসন্মান কি বুজি পায়। গল্পকাৰে ললিতীৰ বিষয়ে প্ৰথমেই উল্লেখ কৰিছে যে, "ললিতী নগৰত থাকি বালিকা স্কুলত লিখা-পঢ়া শিকা ছোৱালী আৰু আজিকালিৰ নব্য ধৰণৰ; ধান বনা, পানী অনা, চোতাল সৰা ইত্যাদি কামত তাই একেবাৰেই অনভ্যস্ত। ইয়াৰ পৰাই অনুমান কৰিব পাৰি যে ললিতীয়ে গাঁৱৰ আন দহজনী ছোৱালীৰ দৰে ডাঙৰ হোৱা নাই। তাই নগৰৰ স্কুলত পঢ়া এজনী শিক্ষিতা ছোৱালী। সেয়ে তাই স্বাভিমানী আৰু সৎ সাহসী। শিক্ষিতা আৰু সুন্দৰী ললিতীক পিতৃয়ে এজন উচ্চ শিক্ষিতা চৰকাৰী উচ্চপদস্থ বিষয়ালৈ বিয়া দিছিল যদিও তাই বিবাহিত জীৱনৰ সুখ ভোগ কৰিবলৈ নাপালে। শিক্ষিত স্বামীৰ পৰা মৰম-আদৰ পোৱাৰ পৰিৱর্তে উপর্যুপৰি শাৰীৰিক মানসিক নির্যাতনহে ভোগ কৰিব লগা হ'ল। অকল ইমানেই নহয় অৱশেষত তাইক পিতৃগৃহলৈ পঠিয়াই দিলে আৰু নিজে দ্বিতীয়, তৃতীয় বিবাহ কৰালে। স্বামীৰ এনে কু-কার্যই ললিতীৰ আত্মসন্মানত প্ৰচণ্ড আঘাত হানিলে আৰু তাই সকলো ক্ষোভ উজাৰি স্বামীক ধিক্কাৰ দি এখন পত্ৰ লিখিলে। সেই পত্ৰখনতেই ললিতীৰ যুক্তিবাদী মন আৰু সাহসৰ পৰিচয় পোৱা যায়। নাৰীৰ পৰম্পৰাগত চিন্তাৰ পৰা ললিতী এই ক্ষেত্ৰত আঁতৰি আহিছে। তাই লিখিছে "পুৰুষে

তিৰোতাৰ স্বভাৱ-চৰিত্ৰ নিৰ্মল হৈ থাকিবৰ নিমিত্তে দেখোন বৰ কটকটীয়া বিধি-বিধান দিয়ে, কিন্তু তেওঁলোকৰ নিজৰ ফালে তেনে বিধানৰ বান্ধোনবোৰ ঢিলা, সোলোকা কৰি লয় কিয়? তেওঁলোকে তিৰোতাৰ পৰা যেনে নিৰ্মল শুদ্ধ চৰিত্ৰ বিচাৰে, তিৰোতাইও তেওঁলোকৰ পৰা তেনে বিচাৰিব নোৱাৰে কিয়? কৰ্তব্য এফলীয়া একপক্ষীয় কেনেকৈ, কেতিয়াৰ পৰা হ'ল!" পূৰ্বৰ পৰা চলি অহা একপক্ষীয় সমাজ ব্যৱস্থা ললিতীয়ে মানি ল'ব নিবিচাৰে। পুৰুষ আৰু নাৰী সমাজৰ দুটা অবিচ্ছেদ্য অংগ, অথচ সমাজত নাৰীয়ে সম অধিকাৰ নাপায় কিয়? এনে প্ৰশ্নই ললিতীক বিদ্ৰোহী কৰি তুলিছে। তাই পুনৰ লিখিছে "পুৰুষক স্বায়ত্ব শাসন লাগে, স্বৰাজ লাগে, কাৰণ নিজৰ ভাল-বেয়া, আইন-কানুন তেওঁলোকে নিজে কৰি নিজৰ সুখ বঢ়াব, দুখ কমাব, কিয়নো লোকে আইন কৰিলে তেনে নহয়। আমি তিৰোতাবোৰে সেয়ে যুক্তি। আমাকো স্বৰাজ, স্বায়ত্ব শাসন লাগে, আমি আমাৰ আইন নিজে কৰি ল'ম।" ললিতীৰ এনে চিন্তাই তাইক সমাজৰ আন দহজনী তিৰোতাৰ পৰা ব্যতিক্ৰমী কৰি তুলিছে। ঊনবিংশ শতিকাৰ সমাজ ব্যৱস্থাত নাৰীয়ে এনেদৰে যুক্তি দৰ্শাই পুৰুষৰ সমঅধিকাৰ বিচৰাটো এটা দৃঢ় আৰু শক্তিশালী পদক্ষেপ। তাই পুনৰ লিখিছে "আপুনি যেনেকৈ মোক পৰিত্যাগ কৰিলে, মোৰো আপোনাক অযোগ্য বিবেচনা কৰি পৰিত্যাগ কৰিবৰ অধিকাৰ সম্পূৰ্ণ আছে।" প্ৰত্যেক নাৰীয়ে নিজৰ স্বামীৰ লগত প্ৰেম-প্ৰীতিৰে জীৱন অতিবাহিত কৰিবলৈ বিচাৰে। তেনেস্থলত যদি স্বামী অত্যাচাৰী, দুৰ্দান্ত হয় তেন্তে তাক পৰিত্যাগ কৰাই শ্ৰেয়। পুৰুষ শাসিত ৰক্ষণশীল সমাজ ব্যৱস্থাত ললিতীৰ দৰে প্ৰতিবাদী চৰিত্ৰ সৃষ্টিয়ে বেজবৰুৱাৰ প্ৰগতিবাদী চিন্তা আৰু উদাৰনৈতিক দৃষ্টিভংগীৰ পৰিচয় পোৱা যায়। পৰম্পৰাগত নাৰীৰ যি চিন্তা-চেতনা, সেই চিন্তা ললিতীৰ চৰিত্ৰত সুদূৰপৰাহত। তাই এঠাইত লিখিছে "তিৰুতাই অকল বিয়া কৰি স্বামী সেৱা কৰা আৰু সতি-সন্ততি জন্মাই লালন-পালন কৰাৰ বাহিৰে যে তিৰোতাৰ জীৱন ইহ সংসাৰত সফল কৰিবলৈ আন কাম নাই, এইটো 'কুমাৰী' শ্ৰীমতী ললিতী কাকতীয়ে নামানে।" প্ৰত্যেক নাৰীয়ে স্বামী সেৱা কৰি সন্তানৰ মাতৃ হৈ সংসাৰত সুখ আৰু আনন্দ বুটলিবলৈ বিচাৰে; স্বামী দুষ্ট প্ৰকৃতিৰ হ'লেও সহ্য কৰি জীৱন কটোৱা নাৰী আমাৰ সমাজত অলেখ আছে। কিন্তু ললিতী এই ক্ষেত্ৰত ব্যতিক্ৰমী। তাই সম্পূৰ্ণ আধুনিক চিন্তাৰে পুষ্ট। অকল স্বামীসেৱা আৰু সন্তান জন্ম দিয়াই যে তিৰোতাৰ জীৱন নহয় তাক তাই ভালকৈ বুজে। মদগৰ্বী স্বামীৰ লগত সংসাৰ কৰাতকৈ তাই 'কুমাৰী' জীৱন যাপন কৰিব। সেয়ে তাই 'কুমাৰী' শব্দটো তাৎপৰ্যপূৰ্ণভাৱে ব্যৱহাৰ কৰিছে। পত্ৰখনৰ আদিৰ পৰা অন্তলৈকে ললিতীৰ প্ৰতিবাদী আৰু বিদ্ৰোহী মনটোৰে পৰিচয় পোৱা যায় যদিও শেষত লিখা বাক্যষাৰে ললিতীৰ ক্ষমাশীলা আৰু মমতাময়ী স্বৰূপটো উদঙাই দেখুৱাইছে। তাই বিশেষভাৱে লিখিছে "ঈশ্বৰে আপোনাক যেন সুমতি দি আপোনাৰ দোষ মৰিষণ কৰি মংগল কৰে, তেওঁৰ ওচৰত মোৰ এইটোও প্ৰাৰ্থনা।" ললিতীয়ে স্বামীৰ মংগল কামনা কৰি ঈশ্বৰক সুমতি দিবলৈ প্ৰাৰ্থনা জনোৱা কাৰ্যই তাইৰ মহানুভৱতাৰ পৰিচয় দিয়ে। তাই যিমানেই কঠোৰ সিদ্ধান্ত নলওক কিয় নাৰীৰ ক্ষমা, দয়া আৰু মমতাময়ী ৰূপৰ পৰা সম্পূৰ্ণ মুক্ত হ'ব পৰা নাই। নিজে কষ্ট সহ্য কৰিও স্বামীৰ মংগল কামনা কৰাটো ভাৰতীয় নাৰীৰ স্বভাৱজাত বৈশিষ্ট্য। তথাপিও পুৰুষৰ সহায় নোলোৱাকৈ অকলশৰে জীৱন কটাই সমাজৰ কাম কৰি যোৱাৰ যি সিদ্ধান্ত ললিতীয়ে গ্ৰহণ কৰিছে, তাতেই চৰিত্ৰটোৰ সাহস আৰু মহত্ব ফুটি উঠিছে। যিটো সময়ত এগৰাকী নাৰীয়ে স্বামীৰ অবিহনে জীৱন অতিবাহিত কৰাটো অকল্পনীয় আৰু দুৰুহ আছিল, সেই সময়ত পুৰুষৰ অত্যাচাৰৰ বিৰুদ্ধে মাত মতা আৰু এনেদৰে লিখিতভাৱে প্ৰতিবাদ কৰাটো এটা তীব্ৰ পদক্ষেপ।

বেজবৰুৱা আছিল এজন সমাজ সচেতন লেখক। সমাজত চলি থকা কু-সংস্কাৰ, ভণ্ডামী, ভুল-ত্ৰুটি, অবিচাৰ, অনাচাৰ আদি তেওঁ বিভিন্ন ৰচনাৰ মাজত উদঙাই দেখুওৱাৰ লগতে তেওঁ তাৰ সংস্কাৰো বিচাৰিছিল। কেতিয়াবা কবিতাৰ মাজেৰে, কেতিয়াবা নাটকৰ মাজেৰে, কেতিয়াবা ব্যঙ্গ ৰচনাৰ মাজেৰে তেওঁ সামাজিক সমস্যাসমূহ দাঙি ধৰিছিল আৰু তাৰ সমাধান সূত্ৰ উলিয়াইছিল। গল্পসমূহৰ মাজেৰেও বেজবৰুৱাই সমাজৰ বিভিন্ন দিশবোৰ প্ৰতিফলিত কৰিছে আৰু গল্পক সামাজিক সমালোচনাৰ অস্ত্ৰস্বৰূপে তেওঁ ব্যৱহাৰ কৰিছে। কাহিনীতকৈ সমসাময়িক সমাজৰ বিভিন্ন স্তৰৰ সজীৱ আৰু বাস্তৱ চৰিত্ৰসমূহৰ চিত্ৰণে তেওঁৰ গল্পক অধিক আকৰ্ষণীয় কৰি তুলিছে।

**২.০০ উপসংহাৰ ঃ**

আমাৰ আলোচ্য গল্প দুটাৰৈ লক্ষ্য কৰিলে দেখা যায় দুয়োটা গল্পতে বেজবৰুৱাই দুগৰাকী ভিন্নধৰ্মী নাৰীক চিত্ৰিত কৰিছে। এগৰাকী শিক্ষাৰ পোহৰ নোপোৱা হোজা আৰু গ্ৰাম্য পৰিৱেশত জীৱন অতিবাহিত কৰা নাৰী আৰু আনগাৰকী শিক্ষিতা, সুগঢ়ী তথা পিতৃ-মাতৃৰ আদৰত লালিত-পালিত

নাৰী। এগৰাকীৰ স্বামী হালোৱা, যিজনে খেতি-বাতি কৰি জীৱন নিৰ্বাহ কৰে আৰু আনগৰাকীৰ স্বামী উচ্চ শিক্ষিত, চৰকাৰী উচ্চপদস্থ বিষয়া। সেয়ে পৰিৱেশ অনুযায়ী চৰিত্ৰ দুটা গঢ় লৈ উঠিছে।

ভদৰী আৰু শিশুৰামৰ সংসাৰখনত গালি-গালাজ পৰা বা শিশুৰামে ভদৰীক খঙৰ ভমকত চৰটো, ভুকুটো দিয়া আদি কাৰ্যবোৰ সিহঁত দুয়োটাৰ বাবেই অস্বাভাৱিক নাছিল। "আনকে দেখুৱাই কেতেৰা মাৰিবি, ভিতৰি নেৰিবি বেথা"— এই কথাষাৰ সিহঁতৰ ক্ষেত্ৰত প্ৰযোজ্য। স্বামীৰ দ্বাৰা মৈদাৰে আঘাতপ্ৰাপ্ত হোৱা ভদৰীৰ অন্তৰত কিন্তু শিশুৰামৰ প্ৰতি অলপো ক্ৰোধ নাই। তাই নিজে কষ্ট সহ্য কৰিব পাৰে কিন্তু শিশুৰামৰ কষ্ট সহিব নোৱাৰে। সেয়ে পুলিচৰ আগত মিছা মাতি হ'লেও তাই শিশুৰামক কঠোৰ শাস্তিৰ পৰা ৰক্ষা কৰিছে আৰু তাইৰ সৰু সংসাৰখনো ভাঙিবলৈ নিদিয়াকৈ ৰক্ষা কৰিছে। আনহাতে তাইৰ এই মহানুভৱতা দেখি শিশুৰাম হৃৎচকিৎ হৈছে আৰু অনুশোচনাত দগ্ধ হৈছে। সি নিজৰ ভুল উপলব্ধি কৰিছে। অনুশোচনাতকৈ ডাঙৰ শাস্তি একো হ'ব নোৱাৰে। এই গল্পটোৰ মাজত বেজবৰুৱাৰ গভীৰ মানৱিক দৃষ্টিভংগী আৰু সামাজিক চেতনাৰ আভাস পোৱা যায়।

আনহাতে ললিতীৰ ক্ষেত্ৰত আমি ব্যতিক্ৰম দেখা পাওঁ। তাই সৰুৰ পৰা যেনেদৰে মৰম-আদৰত লালিত-পালিত হৈছিল, স্বামীৰ গৃহত তাই সেই সুখ লেখমানো নাপালে। বৰঞ্চ গোৰ, লাথি, চৰ আদি খোৱাটো তাইৰ নিত্য-নৈমিত্যিক কাৰ্য হৈ পৰিল। ইমানেই নহয় সাতপুৰুষ উজাৰি দিনৌ গালি-শপনি খাব লগাত পৰিল। তাইৰ স্বামীয়ে তাইক হকে-বিহকে গালি-গালাজ পৰাতেই ক্ষান্ত নাথাকিল, এটা সময়ত তাইক ঘৰৰ পৰাও বাহিৰ কৰি দিলে আৰু দ্বিতীয়, তৃতীয় বিবাহো কৰালে। এনে ক্ষেত্ৰত শিক্ষিতা ললিতীৰ ধৈর্য্যৰ বান্ধ খুলি গ'ল। তাই পুৰুষ সমাজৰ প্ৰতি বিদ্ৰোহী হৈ উঠিল। পুৰুষ অবিহনেও যে এগৰাকী নাৰীয়ে জীৱন অতিবাহিত কৰিব পাৰে। সেই কথা তাই বুজি উঠিল। এটুকুৰা সোণ জুইত পুৰিলে অধিক উজ্জ্বল হৈ উঠাৰ দৰে জীৱনত পোৱা ঘাত-প্ৰতিঘাতে তাইক উজ্বলাই তুলিলে। আত্মবিশ্বাসে তাইক দৃঢ়তা প্ৰদান কৰিলে। পুৰুষৰ সংগক তাই তুচ্ছ জ্ঞান কৰি সমাজসেৱা কৰিবলৈ সংকল্পৱদ্ধ হ'ল। ললিতীৰ চৰিত্ৰৰ মনস্তাত্ত্বিক বিশ্লেষণ বেজবৰুৱাই সুন্দৰকৈ দাঙি ধৰিছে। চৰিত্ৰটি অধিক মহীয়ান হৈ উঠিছে যেতিয়া তাই পশুতুল্য স্বামীৰো মংগল কামনা কৰি ভগৱানক প্ৰাৰ্থনা জনাইছে। এনে মহান আদৰ্শ সহনশীলতা এগৰাকী নাৰীৰ ক্ষেত্ৰতহে পৰিলক্ষিত হয়। নিজে গৰল পান কৰি আনক অমৃত দিব পৰা শক্তি কেৱল নাৰীৰহে আছে। বেজবৰুৱাৰ নাৰী চৰিত্ৰৰ প্ৰতি এটি অকৃত্ৰিম সমমৰ্মিতা সদায় আছিল। এনেবোৰ চৰিত্ৰ সৃষ্টিৰে বেজবৰুৱাই সমাজলৈ একোটা বাৰ্তা প্ৰেৰণ কৰিছিল আৰু নাৰীসকলৰ মাজত আত্মবিশ্বাস তথা আত্মপ্ৰতিষ্ঠাৰ ভাব জগাই তুলিবলৈ যত্ন কৰিছিল। সেয়ে বেজবৰুৱাৰ এনেবোৰ গল্পৰ প্ৰাসংগিকতা চিৰকাল বৰ্তি থাকিব। ❑


**সহায়ক গ্ৰন্থ ঃ**

১। গোস্বামী, যতীন্দ্ৰ নাথ ঃ সাহিত্যৰথী লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱা, জ্যোতি প্ৰকাশন, ১৯৯২

২। দত্ত, বিনীতা (সম্পা.) ঃ অসমীয়া সাহিত্যত নাৰী প্ৰধান সম্পাদিকা, সদৌ অসম লেখিকা সমাৱেহ সমিতি, ১৯৯৫

৩। বৰুৱা, প্ৰহ্লাদ কুমাৰ ঃ অসমীয়া চুটিগল্পৰ অধ্যয়ন, বনলতা, ১৯৯৫

৪। বৰকটকী অৰিন্দম; ভৰালী অজিত (সম্পা.) ঃ লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱা, ড° ছৰিফউদ্দিন আহমেদ, অধ্যক্ষ আনন্দৰাম ঢেকিয়াল ফুকন মহাবিদ্যালয়, নগাঁও, অসম, ২০১২

৫। ৰাজখোৱা, অৰবিন্দ (সম্পা.) ঃ অসমীয়া চুটিগল্পৰ গতি-প্ৰকৃতি, দত্ত প্ৰকাশন, ২০০৯

৬। শইকীয়া, নগেন (সম্পা.) ঃ বেজবৰুৱা ৰচনাৱলী, তৃতীয় খণ্ড, বনলতা, ২০১০

গৱেষণা পত্র

# ৰানচু সমাজত প্ৰচলিত সাংস্কৃতিক উপাদান ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন

**অসীমা গায়ন**

মাৰফৎ - পবিত্ৰ গায়ন
টিটলাগড় চাৰিআলি (বৰহাট)
ডাক ঃ বৰহাট, পিন ঃ ৭৮৫৬৯৩
জিলা ঃ চৰাইদেউ, অসম
ম'বাইল ঃ ৬০০১৪০০৯৩৭


**বিষয়ৰ পৰিচয় ঃ**

ভাৰতৰ উত্তৰ পূব প্ৰান্তত অৱস্থিত ৰাজ্য হৈছে হৈছে অসম । বিভিন্ন জাতি - জনগোষ্ঠীৰ মিলনক্ষেত্ৰ ।

অসমত বাস কৰা অন্য জনজাতিৰ দৰে অসমৰ ভৌগোলিক পৰিসীমাৰ ভিতৰত বাস কৰা এটা জনজাতি হৈছে নগাসকল । এই নগাসকলৰ অন্যতম দুটা জনজাতি হৈছে - নক্তে আৰু ৰানচুসকল । কিম্বদন্তী অনুসৰি পুৰণি সময়ছোৱাত প্ৰৱল বানপানী হোৱা বাবে আজু আৰু আজং নামে এহাল দম্পতি পাটকাই পাহাৰত থাকিবলৈ লয়। পৰৱৰ্তীসময়ত এই দম্পতিহালৰ সন্তানসকলেই ৰানচু নামেৰে চিনাকি লাভ কৰে।[১] ৰানচুসকলে বৰ্তমান বসবাস কৰি থকা গাঁও হৈছে ক্ৰমে— ডিব্ৰুগড় জিলাৰ গড়িয়াবাম, চৰাইদেউ জিলাৰ সাপেখাতী ৰাজহ চক্ৰৰ অৰ্ন্তগত বাৰেগাঁও, টিয়কীয়া আৰু দেওপানী গাঁও আদি। লিখিত তথ্য অনুসৰি জনা যায় যে ৰানচুসকলৰ আদি বাসস্থান আছিল অৰুণাচল প্ৰদেশৰ টিৰাপ জিলা। টিৰাপ জিলাৰ ছটা ৰাজহ চক্ৰৰ অৰ্ন্তগত চাৰিখন গাঁৱত ৰানচুসকল বাস কৰি আছিল। এই ৰাজহ চক্ৰকেইটা হ'ল ক্ৰমে— লংডি, কানুবাৰী, পংচাও, ৰাকা, লাওনু আৰু পুমাও। ইয়াৰোপৰি টিৰাপ জিলাৰ খুনচা, দেওমালী, লাজন, দাদাম আদিতো তেওঁলোকে বাস কৰি আছিল।

তেওঁলোকৰ প্ৰব্ৰজন সম্পৰ্কীয় কিম্বদন্তীসমূহ প্ৰত্যেকটো অঞ্চলতে বেলেগকৈ প্ৰচলিত হৈ আছে। প্ৰব্ৰজন সম্পৰ্কে সঠিক কৈ লিখিত ৰূপত কোনো তথ্য পোৱা নাযায়। ক্ষেত্ৰভিত্তিক অধ্যয়নৰ জৰিয়তে সাক্ষাৎকাৰ ভিত্তিত তথ্যদাতাৰ পৰা লাভ কৰা কিম্বদন্তী মতে পুৰণিসময়ত অফানু নামৰ ঠাইৰ পৰা পাটকাই পাৰ হৈ অহা এটা ঠাল হৈছে ৰানচু।[১]

জনসংখ্যাৰ ফালৰ পৰা ৰানচুসকলৰ স্থান তৃতীয়। ২০০১ চনৰ লোকপিয়ল অনুসৰি জনসংখ্যা হৈছে ৪৭,৮৮৮ জন। ২০০১ চনত অৰুণাচল প্ৰদেশত ৰানচুসকলৰ শিক্ষিতৰ হাৰ আছিল ১৪.৬ শতাশং। ইয়াৰে পুৰুষ ৰ শিক্ষিতৰ হাৰ ৩৫.৯ শতাংশ আৰু মহিলাৰ ১৪.২ শতাংশ।

অসমত বাস কৰা ৰানচুসকলৰ জনসংখ্যা অতি কম। চৰাইদেও জিলাৰ দেওপানী গাঁৱত বাস কৰা ৰানচুসকলৰ বৰ্তমান জনসংখ্যা হৈছে ৩৫০ জন। গাঁওখনতপুৰুষৰ

তুলনাত মহিলাৰ সংখ্যা অধিক। তদুপৰি, টিয়কীয়া ৰানচু গাঁৱত বৰ্তমান জনসংখ্যাৰ ২০ জন তাৰ পৰিৱৰ্তে সাপেখাটীৰ বাৰেগাঁওত বাস কৰা ৰানচুসকলৰ বৰ্তমান জনসংখ্যা হৈছে ২৫০ জন। তেনেদৰে, ডিব্ৰুগড় জিলাৰ গড়িয়াবাম নগা গাঁৱত বৰ্তমান প্ৰায় ৪৫ জন মান ৰানচু লোক হে বাস কৰি আছে। উল্লেখ্য যে, পূৰ্বৰ সময়ছোৱাত শিক্ষাৰ দিশত ৰানচুসকল পিছপৰা আছিল যদিও, বৰ্তমান অসমৰ চৰাইদেও জিলাৰ অন্তৰ্গত সাপেখাটীৰ বাৰেগাঁও, লিখিত তথ্য মতে ৰানচুসকলৰ কিছুসংখ্যক লোক অৰুণাচল প্ৰদেশৰ টিৰাপ জিলা, লংডিং জিলাত বাস কৰিছিল। তাৰপৰা একাংশ ৰানচু লোক অসমলৈ প্ৰব্ৰজিত হৈ আহে।[২] বৰ্তমান অসমলৈ প্ৰব্ৰজন ঘটা ৰানচুসকল ডিব্ৰুগড় জিলাৰ নাহৰকটীয়া ৰাজহ চক্ৰৰ গড়িয়াবাম, চৰাইদেউ জিলাৰ সাপেখাতী ৰাজহচক্ৰৰ আগৰ সময়ছোৱাত ৰানচুসকল প্ৰকৃতিৰ পূজক আছিল। প্ৰকৃতিৰ অংশস্বৰূপে কিছুমান শক্তিক প্ৰত্যক্ষ কৰি পূজা কৰিছিল। বায়ু, অগ্নি, পৰ্বত-পাহাৰ, গছ-গছনি, নদ-নদীক বিশ্বাস অনুসৰি বিধে বিধে পূজা কৰিছিল। সেয়ে প্ৰথমে প্ৰকৃতি দেৱতাক উৰ্চগা কৰিয়ে নিজা ৰীতি-নীতি বিলাক পালন কৰিছিল। কিন্তু পৰৱৰ্তী সময়ত ভৈয়ামলৈ আহি খ্ৰীষ্টান ধৰ্ম আৰু একাংশই বৈষ্ণৱ ধৰ্ম গ্ৰহণ কৰা হেতু লগতে চুবুৰীয়া অঞ্চলৰ প্ৰভাৱৰ ফলস্বৰূপে প্ৰকৃতিৰ আৰাধানা ত্যাগ কৰি নতুনকৈ গ্ৰহণ কৰা ধৰ্মৰ নীতিনিয়মেৰে জীৱন পৰিচালিত কৰা পৰিলক্ষিত হয়। গতিকে তেওঁলোকৰ সমাজত প্ৰচলিত সাংস্কৃতিক উপাদানসমূহৰ মাজত নতুনত্ব পৰিলক্ষিত হৈছে বুলি ক'ব পাৰি। উল্লেখ্য যে, নিৰ্বাচিত দুখন জিলা (চৰাইদেউ আৰু ডিব্ৰুগড়)ৰ চাৰিখন গাঁও (টিয়কীয়া, দেওপানী, বাৰেগাঁও, গড়িয়াবাম)ৰ ভিতৰত কেৱল গড়িয়াবাম অঞ্চলৰ ৰানচুলোক সকলেহে বৈষ্ণৱ ধৰ্ম গ্ৰহণ কৰি আছে। তাৰ পৰিৱৰ্তে বাকীকেইখন গাঁৱৰ লোকসকলে খ্ৰীষ্টান ধৰ্ম গ্ৰহণ কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে। সেয়ে অন্য জনগোষ্ঠীৰ পৰা গ্ৰহণ কৰা সাংস্কৃতিক বৈশিষ্ট্যৰ দিশত বহুক্ষেত্ৰত পৃথক সাংস্কৃতিক বৈশিষ্ট্য পৰিলক্ষিত হয়। তলত এই সম্পৰ্কত আলোচনা আগবঢ়োৱা হ'ল—

**অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য আৰু গুৰুত্ব ঃ**

নিৰ্বাচিত বিষয়ৰ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য হ'ল-

ক) ৰানচু জনজাতিৰ মাজত প্ৰচলিত সাংস্কৃতিক উপাদানসমূহ বিচাৰ কৰা ।

খ) সংস্কৃতি গ্ৰহণে কঢ়িয়াই অনা পৰিৱৰ্তনসমূহ তুলি ধৰা।

গ) সংস্কৃতি গ্ৰহণৰ বৈশিষ্ট্যসমূহ আলোচনা কৰা ।

**গুৰুত্ব ঃ**

অসমৰ সীমান্তৱৰ্তী এলেকাত বসবাস কৰা ৰানচু জনজাতিৰ সাংস্কৃতিক জীৱনৰ মূল্যায়ন কৰাৰ প্ৰয়োজনীয়তা আছে। এই অধ্যয়নে সমাজ- সংস্কৃতিৰ জীৱনলৈ অহা পৰিৱৰ্তনৰ ছবিখন তুলি ধৰাত সহায় কৰিব ।গতিকে বিষয়টোৰ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব আছে ।

**পদ্ধতি ঃ**

বিষয়টো বিশ্লেষণ কৰিবলৈ যাওঁতে প্ৰধানকৈ ক্ষেত্ৰ অধ্যয়নৰ সহায় লোৱা হৈছে। ইয়াৰে ক্ষেত্ৰঅধ্যয়ন পদ্ধতিৰ অন্তৰ্গত হিচাপে প্ৰশ্নসূচী আৰু সাক্ষৎকাৰ পদ্ধতিৰ গ্ৰহণ কৰা হৈছে। তদুপৰি বিষয়টো বিশ্লেষণ ক্ষেত্ৰত তাত্ত্বিক আধাৰ হিচাপে সংস্কৃতি গ্ৰহণ প্ৰক্ৰিয়াক আধাৰ হিচাপে লোৱা হৈছে।

**তথ্য আহৰণৰ উৎস ঃ**

গৱেষণা কৰ্মটোৰ বাবে মুখ্য আৰু গৌণ দুয়োটা উৎসৰ সহায় লোৱা হৈছে । ক্ষেত্ৰ অধ্যয়নৰ জৰিয়তে মুখ্য উৎসৰ পৰা সমল সংগ্ৰহ কৰা হৈছে । গৌণ উৎস হিচাপে বিষয়ৰ লগত সম্পৰ্ক জড়িত আলোচনী, গৱেষণা গ্ৰন্থ আদিৰ সহায় লোৱা হৈছে ।

**মূল আলোচনা ঃ**

অসমৰ অন্যতম আদিম অধিবাসী হৈছে ৰানচু জনজাতিৰ লোকসকল। অসমৰ অন্য জনজাতিৰ দৰে ৰানচু জনজাতিৰ লোকসকলৰ সংস্কৃতিও বিভিন্ন সময়ত বিভিন্ন কাৰকৰ দ্বাৰা প্ৰভাৱিত হয় আৰু ই জনজীৱন তথা সভ্যতাক নানা ধৰণেৰে প্ৰভাৱিত কৰে । তলত অন্য জনজাতিৰ পৰা গ্ৰহণ কৰা সাংস্কৃতিক উপাদান সম্পৰ্কে আলেচনা দাঙি ধৰা হৈছে-

**জন্ম সম্পৰ্কীয় ঃ**

ৰানচু সমাজত জন্ম সম্পৰ্কীয় বহুধৰণৰ লোকাচাৰ প্ৰচলিত হৈ আছিল। সেয়ে লোকাচাৰসমূহৰ সৈতে বহুতো লোকবিশ্বাস জড়িত হৈ আছিল। জনজাতিটোৰ সম্পৰ্কত ক্ষেত্ৰভিত্তিক অধ্যয়নৰ জৰিয়তে লাভ কৰা তথ্য অনুসৰি ভৈয়ামলৈ আহি খ্ৰীষ্টান ধৰ্ম গ্ৰহণ কৰাৰ পাছত তেওঁলোকে পূৰ্বৰে পৰা প্ৰচলিত লোকাচাৰ আৰু তাৰ সৈতে জড়িত হৈ থকা লোকবিশ্বাসসমূহ ত্যাগ কৰিছে। তেনেদৰে একাংশই বৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ নিয়মেৰে পৰিচালিত হোৱা হেতু জন্ম সম্পৰ্কীয় লোকাচাৰ আৰু তাৰ সৈতে জড়িত

লোকবিশ্বাসসমূহৰ মাজত নতুনত্বৰ সংযোজন হৈছে।

ক) ক্ষেত্রভিত্তিক অধ্যয়নৰ জৰিয়তে লাভ কৰা তথ্য মতে আগৰ সময়ছোৱাত ৰানচু সমাজত সন্তানসম্ভৱা মহিলাগৰাকীক মাকৰ ঘৰলৈ পঠিয়াই দিছিল। কিয়নো পৰম্পৰা অনুসৰি তেওঁলোকৰ সমাজত প্রথম সন্তানৰ জন্ম মাকৰ ঘৰতেই হ'ব লাগে। তেনেদৰে কেঁচুৱা জন্মৰ সময়ছোৱাত প্রসূতি গৰাকীৰ চোৱা-চিতাৰ ক্ষেত্রত গাঁৱৰ ধাইমানুহ গৰাকীয়ে আগভাগ লৈছিল। তেওঁৰ হাততে কেঁচুৱাৰ জন্ম হৈছিল। বর্তমান সময়ত সন্তানসম্ভৱা মহিলাগৰাকীক মাকৰ ঘৰলৈ পঠিয়াই নিদি নিজৰ ঘৰতে ৰাখি চোৱা-চিতা কৰে। অর্থাৎ বর্তমান স্বামীৰ ঘৰতে সন্তান জন্ম হোৱা পৰিলক্ষিত হয়। খ্রীষ্টান ধর্মই তেওঁলোকক নিজৰ স্বাস্থ্য সম্পর্কে সচেতন হ'বলৈ শিকালে। সকলো ক্ষেত্রতে চাফ-চিকুণতা অৱলম্বন কৰি স্বাস্থ্যৰ বাবে ক্ষতিকাৰক বিষয়বোৰৰ পৰা নিজক আঁতৰাই ৰাখিবলৈ ললে। তদুপৰি বর্তমান শিক্ষাৰ বিস্তাৰ আৰু আধুনিকীকৰণৰ প্রভাৱে মানুহক জন্মৰ সৈতে প্রচলিত ৰীতিসমূহ মানি চলাত বাধা আৰোপ কৰা পৰিলক্ষিত হয়।[৩]

খ) আগৰ সময়ছোৱাত কেচুঁৱা জন্মৰ পাছত নামকৰণ পর্বত জাম্পাক নিমন্ত্রণ কৰিছিল। কিন্তু বর্তমান এই ধৰণৰ পৰম্পৰা ত্যাগ কৰিছে। বর্তমান নামকৰণৰ পর্বত জাম্পাক নিমন্ত্রণ নজনায়। তেওঁৰ সলনি পেষ্ট'ৰ মাতে।[৪]

তেনেদৰে ৰানচু সমাজৰ বৈষ্ণৱধর্মালম্বী গড়িয়াবাম গাঁৱৰ ক্ষেত্রভিত্তিক অধ্যয়নৰ জৰিয়তে লাভ কৰা তথ্য মতে-

ক) আগৰ সময়ত তেওঁলোকে কেঁচুৱাৰ জন্মৰ লগে লগে পাত মঙল চাইছিল। ইয়াৰ জৰিয়তে ন-কেঁচুৱাটোৰ ভৱিষ্যত বিচাৰ কৰিছিল। লগতে তেওঁলোকে উপৰিপুৰুষৰ নাম অনুসৰি কেঁচুৱাটোৰ নাম থৈছিল। কিন্তু বৈষ্ণৱ ধর্মৰ নিয়মেৰে পৰিচালিত হোৱা হেতু জন্ম সম্পর্কীয় লোকাচাৰ আৰু তাৰ সৈতে জড়িত লোকবিশ্বাসসমূহৰ মাজত নতুনত্বৰ সংযোজন হৈছে। বর্তমান তেওঁলোকে শিক্ষানুষ্ঠানত নামভর্ত্তি কৰিব লগা হেতু পুৰোহিত, ব্রাহ্মণ আদিৰ জৰিয়তে সন্তানটোৰ ভৱিষ্যতৰ বিচাৰ কৰে তথা মঙল চোৱায়। সেয়ে ৰাশি অনুসৰি নাম থয় বুলি জানিব পৰা গৈছে। অর্থাৎ তেওঁলোকে অসমৰ অন্য জনগোষ্ঠীয় মানুহৰ দৰে জন্ম পত্রিকা চোৱাই নাম থয়।

খ) কেঁচুৱা জন্মৰ পিছত ঘৰৰ দুৱাৰমুখত বাঁহ পাত আঁৰি থৈছিল। তেনেদৰে কেঁচুৱা জন্মৰ পিছত ঘৰৰ দুৱাৰমুখত বাঁহ পাত আঁৰি থোৱাৰ পৰম্পৰা ত্যাগ কৰে। তাৰ পৰিৱর্তে ফটা জাল বা বগৰী কাঁইট আঁৰি দিয়ে। এনেদৰে আঁৰি ৰাখিলে অপদেৱতাই প্রৱেশ কৰিব নোৱাৰে বুলি বিশ্বাস কৰে।

গ) ন-কেঁচুৱাটোৰ হাতত ক'লা ৰঙৰ সূতা বা ৰচী বান্ধি দিয়া কর্মৰ জৰিয়তে অপদেৱতাৰ সহজতে মুখ নালাগে বুলি বিশ্বাস গঢ়ি উঠিছে। এই ক্ষেত্রত চুবৰীয়া অঞ্চলৰ প্রভাৱ পৰিছে বুলি ক'ব পাৰি।

**মৃত্যু সম্পর্কীয় ঃ**

অসমত বাস কৰা ৰানচুসকলেও অতীজতে মৃত্যুৰ সৈতে জড়িত বিভিন্ন ধৰণৰ লোকৰীতি মানি চলিছিল। খ্রীষ্টান ধর্ম গ্রহণৰ পাছত ৰানচুলোক সকলে গ্রহণ কৰা মৃত্যুসম্পর্কীয় লোকাচাৰ আৰু তাৰ সৈতে জড়িত লোকবিশ্বাসসমূহ হৈছে এনেধৰণৰ—

ক) আগৰ সময়ছোৱাত ৰানচু সমাজত মৃত শৰীৰটোক

থোৱাৰ নির্দিষ্ট এডোখৰ ঠাই তথা মৰিশালি নাছিল। সেয়ে তেওঁলোকে কোনো লোকৰ মৃত্যু হ'লে সমজুৱা ভাৱে গৈ মৃত শৰীৰটোক মদাৰ নতুবা শিমলু গছৰ ডালত ওলোমাই থৈ আহিছিল। তেনেদেৰে ৰ'দত শুকাই, বৰষুণত গেলি-পচি শৰীৰটো এদিন শেষ হৈছিল। কিন্তু ভৈয়ামলৈ অহাৰ পাছত পূৰ্বৰ প্রচলিত লোকৰীতিসমূহ ত্যাগ কৰে। খ্রীষ্টান ধর্ম গ্রহণৰ পাছত ৰানচুলোক সকলৰ সমাজত খ্রীষ্টানধর্মৰ নিয়মেৰে কফিনত ভৰাই পুতি থয়। এইক্ষেত্রত পেষ্ট'ৰে আগভাগ লয়।

খ) পূর্বতে ৰানচু সমাজত কোনো ব্যক্তিৰ মৃত্যু হ'লে ৰাংফাট নামৰ এবিধ নিয়ম প্রচলন আছিল। এই প্রচলিত নিয়ম অনুসৰি মৃত ব্যক্তিজনক এখন চাঙ পাতি তাৰ ওপৰত ৰ'দে-বৰষুণে গেলি পচি যোৱাকৈৰখা হৈছিল। এনেদৰে মৃতদেহটো গেলি ৰ'দত শুকাই হাড়বোৰ আৰু লাওখোলাটো ওলাই পৰাৰ পাছত জাম্পাই ভালদৰে চাফা কৰি পূজা কৰিছিল। পূজাৰ অন্তত এই হাড় আৰু লাওখোলাটো শিলৰ ওপৰত থৈ দিছিল। বর্তমান পূর্বৰ এই পৰম্পৰা উঠি গৈছে। বর্তমান তেওঁলোকে কোনো ব্যক্তিক মৃত বুলি ঘোষণা কৰাৰ লগে লগে তেওঁক খ্রীষ্টানধর্মৰ নিয়মেৰে কফিনত ভৰাই পুতি থয়। মৃতদেহটো পোতোঁতে মৃতকৰ ব্যৱহার্য্য সামগ্রীসমূহ— কাঁহী-বাতি, কাপোৰ, টেমা আদিও লগতে দি দিয়ে। তদুপৰি মৃত ব্যক্তিজনৰ আত্মাৰ সদ্গতি লাভৰ কাৰণে দহ-এঘাৰ দিনৰ মূৰত ৰাইজক গোট খুৱাই নিয়ম কৰে। এই দহ-এঘাৰ দিনৰ নিয়মটো তেওঁলোকে সীমান্তৰ এলেকাৰ পৰা লোৱা বা সীমান্তৰ প্রভাৱ পৰিছে বুলি ক'ব পাৰি।

গ) নতুনকৈ কবৰ দিয়া পৰম্পৰা গ্রহণ কৰা হেতু এডোখৰ ঠাইক মৰিশালি বা শ্মশান হিচাপে ঠিক কৰি লয়।

তদুপৰি ৰানচু অধ্যুষিত বৈষ্ণৱধর্ম গ্রহণকাৰী গড়িয়াবাম গাঁৱৰ ক্ষেত্রভিত্তিক অধ্যয়নৰ জৰিয়তে লাভ কৰা তথ্য অনুসৰি -

ক) আগৰ সময়ছোৱাত তেওঁলোকে প্রকৃতি দেৱতাক উর্চগা কৰি গছৰ ডালত ওলোমাই থৈ আহিছিল। মৃত শৰীৰটোক থোৱাৰ নির্দিষ্ট এডোখৰ ঠাই তথা মৰিশালি নাছিল। কিন্তু বৈষ্ণৱ ধর্মত দীক্ষিত হোৱাৰ পাছত ৰানচুলোকসকলে নির্দিষ্ট এডোখৰ ঠাইক মৰিশালি হিচাপে ঠিক কৰি লয়। সেইযে পৰৱর্তীসময়ত কোনো ব্যক্তিক মৃত বুলি ঘোষণা কৰাৰ লগে - লগে এটা গাঁত খান্দি গাঁতৰ ভিতৰত এখন চাঙ পাতি তাৰ ওপৰত মৃত ব্যক্তিজনক থৈ মাটি দি কবৰ দিয়ে।[৫]

খ) আগৰ সময়ছোৱাত মৃত শৰীৰটো কেইবাদিনো থৈ দিছিল।বর্তমান মৃত বুলি ঘোষণা কৰাৰ লগে-লগে সৎকাৰ কৰে। গতিকে এইক্ষেত্রত চুবুৰীয়া এলেকাৰ প্রভাৱ পৰিছে বুলি ক'ব পাৰি।

**বিবাহ সম্পর্কীয় ঃ**

বিবাহ হৈছে এক সামাজিক বান্ধোন। বিবাহৰ ক্ষেত্রত প্রতিটো জাতি-জনগোষ্ঠীৰে সুকীয়া ৰীতি-নীতি আছে। অসমত বাস কৰা ৰানচুসকলে আগৰ সময়ছোৱাত বিবাহৰ সৈতে জড়িত বিভিন্ন ধৰণৰ লোকৰীতি মানি চলিছিল। ক্ষেত্রভিত্তিক অধ্যয়নৰ জৰিয়তে লাভ কৰা তথ্য অনুসৰি খ্রীষ্টান ধর্ম গ্রহণৰ পাছত তেওঁলোকে গ্রহণ কৰা বিবাহ সম্পর্কীয় লোকাচাৰ আৰু তাৰ সৈতে জড়িত লোকবিশ্বাসসমূহ হৈছে এনেধৰণ—

ক) পূর্বতে তেওঁলোকৰ সমাজত প্রাক্-বিবাহ আৰু শাৰীৰিক সম্পর্ক সমাজ স্বীকৃত আছিল। বিবাহৰ উপযুক্ত ছোৱালী থকা পৰিয়ালে নিজা ঘৰৰ পৰা অলপ দূৰৈত এটা কোঠা সাজি দিছিল। ঘৰুৱা মানুহৰ সন্মতি অনুসৰি বিবাহৰ উপযুক্ত প্রার্থীজনে তাত থাকিব পাৰিছিল। যদি এবছৰৰ ভিতৰত ছোৱালীজনী সন্তানসম্ভৱা হয় তেতিয়া তেওঁলোকক সামাজিক নীতি-নিয়মেৰে বিয়া পাতি দিয়ে। অন্যথা তেওঁলোকৰ বিবাহ নহ'বও পাৰে বা ল'ৰাজনে বেলেগ ছোৱালীও বিয়া কৰাব পাৰে। বর্তমান খ্রীষ্টান ধর্মত দীক্ষিত হোৱা হেতু পূর্বৰ পৰম্পৰা বাদ দিয়ে অথার্ৎ ৰাজহুৱাভাৱে ছোৱালী চাই-চিটিহে নতুবা পলুৱাই বিয়া পতা পৰিলক্ষিত হৈছে। তদুপৰি বর্তমান খ্রীষ্টান ধর্ম গ্রহণৰ হেতু বিবাহযোগ্য প্রার্থী দুজনে গীজাত গৈ লিখিত মাধ্যমেৰে আইনগতভাৱে বিবাহ পত্রত স্বাক্ষৰ কৰে। পেষ্ট'ৰে তেওঁলোকক আর্শীবাদ দিয়ে।

খ) ৰানচু সমাজত. ৰাইজক জনাই ৰাজহুৱাকৈ তোলনি বিয়া পতাৰ পৰম্পৰা প্রচলিত নাছিল। কন্যাগৰাকী পুষ্পিতা হোৱাৰ বাতৰি দেউতাকে জনাটো আছিল লাজৰ বিষয়। বর্তমান সময়ত তেওঁলোকে নতুনকৈ তোলনি বিয়া পতাৰ পৰম্পৰা গ্রহণকৰা হেতু বিয়াৰ সৈতে জড়িত লোকবিশ্বাসসমূহ মানি চলা পৰিলক্ষিত হৈছে। যেনে— যুগ অনুসৰি (শুভগা, দুভগা, বেশ্যা, পতিহীনা ইত্যাদি) পাৰ, চাউল, বস্ত্র দান কৰা এই নিয়মসমূহ মানিচলা পৰিলক্ষিত হৈছে। লগতে এই নিয়ম পালন নকৰিলে কন্যা গৰাকীৰ ভৰিষ্যত জীৱনটো ভালদৰে পাৰ নহয় তথা আউল লাগে বুলি প্রচলিত থকা বিশ্বাস সেয়া নতুনকৈ গ্রহণ কৰিছে।

গ) পূর্বতে ৰানচু সমাজত বিবাহৰ ক্ষেত্র কন্যাৰ গা-ধন লোৱাৰ নিয়ম আছিল। কিন্তু খ্রীষ্টান ধর্ম গ্রহণৰ হেতু পূর্বৰ প্রচলিত এই পৰম্পৰা ত্যাগ কৰিছে। তদুপৰি কন্যা আনিবলৈ

যোৱাৰ সময়ত দৰা পক্ষই কন্যাগৰাকীলৈ বুলি পৰম্পৰাগত কাপোৰ এযোৰ আৰু সামৰ্থ্য অনুযায়ী পৰম্পৰাগত অলংকাৰ লৈ গৈছিল। বৰ্তমান কন্যা আনিবলৈ যোৱাৰ সময়ত কন্যাগৰাকীলৈ বুলি পাটৰ কাপোৰ, সোণৰ অলংকাৰ লৈ যায়। গতিকে এইক্ষেত্ৰত সীমান্তৰ প্ৰভাৱ পৰিছে বুলি ক'ব পাৰি।[৬]

তেনেদৰে, গড়িয়াবাম গাঁৱৰ ক্ষেত্ৰভিত্তিক অধ্যয়নৰ জৰিয়তে লাভ কৰা তথ্য অনুসৰি—

ক) আগৰ সময়ছোৱাত তেওঁলোকৰ সমাজতো তোলনি বিয়া পতাৰ পৰম্পৰা প্ৰচলিত নাছিল। ৰাইজক জনাই ৰাজহুৱাকৈ তোলনি বিয়া পতা নাছিল। কিন্তু ভৈয়ামলৈ আহি বৈষ্ণৱ ধৰ্মত দীক্ষিত হোৱাৰ পাছত ৰানচু লোক সকলে তেওঁলোকৰ নীতি-নিয়মেৰে পৰিচালিত হয়। তেওঁলোকে নতুনকৈ তোলনি বিয়া পতাৰ পৰম্পৰা গ্ৰহণ কৰে। সেয়ে তেওঁলোকেও বিয়াৰ সৈতে জড়িত লোকবিশ্বাসসমূহ মানি চলা পৰিলক্ষিত হৈছে। যেনে, যুগ অনুসৰি (শুভগা, দুভগা, বেশ্যা, পতিহীনা ইত্যাদি) পাৰ, চাউল, বস্ত্ৰ দান কৰা আদি নিয়মসমূহ তেওঁলোকে মানি চলা পৰিলক্ষিত হৈছে।[৭]

খ) পূৰ্বতে তেওঁলোকৰ সমাজত ছোৱালী খুজিবলৈ যোৱাৰ সময়ত দৰাঘৰে এটা বটলৰ সন্মুখৰ অংশটোত এযোৰ খাৰু ভৰাই ছোৱালীজনীক উপহাৰ হিচাপে দিছিল। ইয়াৰ উপৰিও বিয়াৰ দিনা কন্যা নিবলৈ অহাৰ সময়ত তেওঁলোকৰ সমাজত মানধৰা পৰম্পৰা প্ৰচলিত আছিল। এই মানধৰা কাৰ্যত কন্যাৰ মোমায়েক, দেউতাক, ককায়েক, ভায়েক, মাক সকলোকে দৰাঘৰে একোখনকৈ দা বা এডাল যাঠি উপহাৰ স্বৰূপে দিছিল। এয়া তেওঁলোকে মৰমৰ চিন বা মিতুৰ চিন বুলি ভাবিছিল। বৰ্তমান কন্যা আনিবলৈ যোৱাৰ সময়ত কন্যাগৰাকীলৈ বুলি পাটৰ কাপোৰ, সোণৰ অলংকাৰ লৈ যোৱাৰ কথাহে জানিবলৈ দিয়ে।[৮] গতিকে এই ক্ষেত্ৰত সীমান্তৰ এলেকাৰ প্ৰভাৱ বুলি ক'ব পাৰি।

**জীৱিকা সম্পৰ্কীয় ঃ**

অসমত বাস কৰা ৰানচু সমাজৰ জীৱিকা মূলতঃ কৃষি নিৰ্ভৰ। পূৰ্বতে তেওঁলোকে কৃষি সম্বন্ধীয় বহুতো লোকৰীতি মানি চলিছিল। বৰ্তমান নিজা পৰম্পৰাগত কৃষি সম্বন্ধীয় লোকৰীতিসমূহ মানি চলিছে বুলি ক'ব নোৱাৰি।বৰ্তমান ৰানচু অধ্যুষিত তিনিখন গাঁৱৰ মানুহে খ্ৰীষ্টান ধৰ্ম গ্ৰহণ কৰাৰ লগতে আন এখন গাঁৱত বৈষ্ণৱ ধৰ্ম গ্ৰহণ কৰি আছে। গতিকে ধৰ্ম অনুসৰি জনজাতিটোৰ কৃষি সম্পৰ্কীয় লোকৰীতিসমূহ সুকীয়া বুলি ক'ব পাৰি।

বৈষ্ণৱ ধৰ্ম গ্ৰহণ কৰা হেতু কৃষিকাৰ্যৰ ক্ষেত্ৰত গ্ৰহণ কৰা লোকৰীতিসমূহত নতুনত্ব পৰিলক্ষিত হয়। ৰানচুসমাজৰ লোকসকলে পাহাৰত বাস কৰি থকা সময়ত ঝুম খেতি কৰি জীৱন পৰিচালিত কৰিছিল। অসমলৈ প্ৰব্ৰজিত হৈ অহাৰ পাছত তেওঁলোকে ঝুমখেতি কৰিবলৈ বাদ দিয়ে। ভৈয়ামলৈ আহি অসমৰ মানুহৰ সৈতে মিলিত হৈ অসমত প্ৰথমে কণী ধানৰ খেতি আৰম্ভ কৰে। পৰৱৰ্তী সময়ছোৱাত তেওঁলোকে জহা, বৰা, লাহী ধানৰ খেতি কৰিবলৈ লয়।

পূৰ্বতে কৃষিকৰ্ম আৰম্ভ কৰাৰ পূৰ্বে ন-গোঁজ লওঁতে কেনোধৰণৰ নিয়ম মানি চলাৰ সম্পৰ্কত তেওঁলোক জ্ঞাত নহয়। কিন্তু অসমলৈ আহি সীমান্তৰ মানুহৰ সৈতে মিলিত হোৱাৰ পাছত ন-গোঁজ লোৱাৰ পৰ্বত নিয়ম মানি চলে। ডিব্ৰুগড় জিলাৰ গড়িয়াবাম গাঁৱৰ বিমলা ৰানচুৰ ভাষ্যৰ পৰা পোৱা তথ্য মতে বৈষ্ণৱ ধৰ্ম গ্ৰহণ কৰাৰপাছত তেওঁলোকে কৃষিকৰ্ম আৰম্ভ কৰাৰ পূৰ্বে পথাৰত গোঁজ লোৱা পৰ্বত এজোপা কচুঁগছ, এজোপা তৰা গছ, এযোৰ তামোল-পান দি সেৱা এভাগ আগবঢ়ায়। বৰ্তমান সময়ত এইকেইপদ বস্তুৰ উপৰিও আৰু কেইপদমান বস্তু যেনে—মধুৰী, গুলনেমু, তৰাগছ, কমলা আদিও আগবঢ়ায়।[৯]

অসমীয়া সমাজত বতৰ সম্পৰ্কে প্ৰচলিত ডাকৰ বচনসমূহ মানি কৃষিকাৰ্য আৰম্ভ কৰাৰ ৰীতিটো ৰানচু সমাজত নতুনকৈ গ্ৰহণ কৰিছে বুলি ক'ব পাৰি। কিয়নো বৰ্তমান তেওঁলোকে জেঠ মাহত শালিখেতি কৰাৰ কথা জানিবলৈ দিয়ে।[১০] পূৰ্বতে তেওঁলোকে ন-গোঁজ লোৱাৰ সময়চোৱাত দিশ নিৰ্ণয় কৰি ৰোপন কাৰ্য আৰম্ভ কৰা নাছিল। সীমান্তৰ মানুহৰ সৈতে মিলিত হোৱাৰ পাছত দিশ সম্পৰ্কে অৱগত হয়। সেয়ে কৃষি কাৰ্যত ন-গোঁজ লওঁতে পূবমুৱাকৈ লৈছিল বুলি সদৰী কৰে।

বৰ্তমান সময়ত ৰানচু সমাজৰ লোকসকলে সীমান্তৱৰ্তী এলেকাৰ সৈতে সম্পৰ্ক স্থাপন কৰিছে। সেয়ে ঘৰুৱা ভাৱে গাহৰি, ছাগলী পোহপালন কৰি আৰ্থিকভাৱে স্বাবলম্বী হোৱা দেখা যায়। লগতে জার্চি গাই পুহি গাখীৰ বিক্ৰী কৰি তেওঁলোক উপকৃত হৈছে বুলি জানিব পৰা গৈছে। বৰ্তমান অসমত বহুলৰূপত প্ৰচলিত আৰু অধিক লাভদায়ক বয়লা কুকুৰাৰ ফাৰ্ম, কয়লা কুকুৰাৰ ফাৰ্ম ব্যৱসায় ভিত্তিত খোলাৰ লগতে বটা-চৰাইকো ঘৰুৱাভাৱে ব্যৱসায় উদ্দেশ্যে পোহপালন কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে। এইবিধ ব্যৱসায়ৰ জৰিয়তে তেওঁলোকৰ সমাজৰ দুই-একে যথেষ্ট লাভদায়ক হৈছে।

খ্ৰীষ্টান ধৰ্ম গ্ৰহণ কৰা হেতু কৃষিকাৰ্যৰ ক্ষেত্ৰত গ্ৰহণ কৰা লোকৰীতিসমূহ পৃথক বুলি ক'ব পাৰি। চৰাইদেউ জিলাৰ ৰানচু অধ্যুষিত গাঁওকেইখনৰ লোকসকলে পাহাৰত বাস কৰি থকা

সময়ছোৱাত ঝুম খেতি কৰি জীৱন পৰিচালিত কৰিছিল। কিন্তু অসমলৈ প্ৰব্ৰজিত হৈ অহাৰ পাছত তেওঁলোকে ঝুম খেতি কৰিবলৈ বাদ দিয়ে। অসমলৈ প্ৰব্ৰজিত হৈ অহাৰ পাছত পোনপ্ৰথমে ন-গোঁজ লোৱা পৰ্বত এজোপা কচুঁগছ, এজোপা তৰা গছ, এযোৰ তামোল, মাহ-প্ৰসাদ দি সেৱা আগবঢ়াইছিল। কিন্তু খ্ৰীষ্টান ধৰ্ম গ্ৰহণৰ পাছত তেওঁলোকে যীশুক মনত পেলাই পথাৰত প্ৰাৰ্থনা কৰে। প্ৰাৰ্থনাৰ জৰিয়তে খেতিডৰা শস্য-শ্যামলা হয় বুলি তেওঁলোকে বিশ্বাস কৰে।[১১]

**লোকঔষধ সম্পৰ্কীয় ঃ**

ৰানচুসকলে আগৰ সময়ছোৱাত লোকঔষধ ব্যৱহাৰ কৰিছিল। ভৈয়ামলৈ অহাৰ পাছত প্ৰথম অৱস্থাত ৰানচু সমাজত গাঁৱৰ বুঢ়া-মেথাসকলে সৰু-সুৰা বেমাৰত লোকঔষধ প্ৰদান কৰি আৰোগ্য কৰিছিল। হাতৰ গাঁঠি বা ভৰিৰ গাঁঠিৰ বিষ হ'লে ক'লা হালধি পিহি সেই ঠাইডোখৰত লগালে ভাল হয় বুলি বিশ্বাস কৰি ছিল। তেনেদৰে হাড়ভগা আৰু জোৰা লৰা ৰোগত ভেদাইলতা লতা মেৰিয়াই বান্ধিলে জোৰা লাগে বুলি বিশ্বাস কৰে। তদুপৰি গাত বিচাই ডাকিলে ডকা স্থানত চুলি লগালে নতুবা কেঁচুমাটি লগাবলৈ দিছিল। বৰ্তমান সেই বুঢ়া-মেথাসকলৰ মৃত্যু হোৱা বাবে লোকঔষধৰ ব্যৱহাৰ কমি আহিছে। ইয়াৰ উপৰিও বৰ্তমান সময়ত তেওঁলোকৰ একাংশই খ্ৰীষ্টান ধৰ্ম গ্ৰহণৰ হেতু ৰোগীজনক গীজাঁলৈ লৈ যায়। গীৰ্জাত তেওঁলোকৰ গুৰু পেষ্ট'ৰে প্ৰাৰ্থনা কৰি দিয়ে। প্ৰাৰ্থনাৰ জৰিয়তে ৰোগীজন আৰোগ্য হয় বুলি বিশ্বাস কৰে।[১২]

কিন্তু বৈষ্ণৱ ধৰ্ম গ্ৰহণৰ হেতু ৰানচু সমাজৰ লোকসকলে সীমান্তৰ এলেকাৰ পৰা নতুনকৈ কিছুমান লোকঔষধ গ্ৰহণ কৰিছে। নতুনকৈ গ্ৰহণ কৰা এই লোকঔষধসমূহ নক্তেসমাজৰ সৈতে যথেষ্ট সাদৃশ্য আছে। বৰ্তমান তেওঁলোকেও লাজুকি বন(নিলাজী পাত) ব্যৱহাৰে ফোঁহাজাতীয় ৰোগ ভাল কৰে বুলি নতুনকৈ বিশ্বাস কৰিছে। তেনেদৰে হাড়ভগা আৰু জোৰা লগা ৰোগত ভেদাইলতা মেৰিয়াই বান্ধিব লাগে বুলি বিশ্বাস কৰে। তদুপৰি অতিমাত্ৰা কাঁহ হ'লে আমলখি খালে ভাল হয় বুলি বিশ্বাস কৰে। জণ্ডিচ ৰোগত কুঁহিয়াৰ ৰস খাব লাগে বুলি কয়। পেটত কৃমি হ'লে ৰবাব টেঙাৰ ৰস খুৱালে ভাল বুলি কয়। গাত বিচাই ডাকিলে ডকা স্থানত চুলি লগালে ভাল হয় বুলি বিশ্বাস কৰে।

**সাজপাৰ আৰু অলংকাৰ সম্পৰ্কীয় ঃ**

ৰানচু সমাজৰ লোকসকলে আগৰ সময়চোৱাত পৰম্পৰাগত নিজা সাজপাৰ আৰু অলংকাৰ পৰিধান কৰিছিল। বৰ্তমান সময়ত খ্ৰীষ্টান ধৰ্মই আনি দিয়া আধুনিকতাৰ ফলস্বৰূপে তেওঁলোকৰ সাজপাৰ আৰু অলংকাৰৰ ক্ষেত্ৰত পৰিৱৰ্তনে দেখা দিছে। উল্লেখ্য যে, খ্ৰীষ্টান আৰু বৈষ্ণৱ দুটা পৃথক ধৰ্ম গ্ৰহণ কৰিলেও জনজাতিটোৰ সাজপাৰ আৰু অলংকাৰৰ ক্ষেত্ৰত দেখা পোৱা পৰিৱৰ্তনৰ ছবিখন একে।

ৰানচুসমাজৰ পুৰুষসকলে পৰিধান কৰা পৰম্পৰাগত সাজযোৰক ৰাঁপা আৰু মহিলাই পৰিহিত সাজযোৰক গেঠনি বোলে। সেইদৰে পৰিহিত অলংকাৰৰ ভিতৰত লিকচাপ (ডিঙিৰ অলংকাৰ), খাংচাপ (ক'পালি বা কপালত পিন্ধা অলংকাৰ), নাট (কাণৰ অলংকাৰ) আদি উল্লেখযোগ্য। তদুপৰি তেওঁলোকে মূৰত লিক্কা গুজি লয়।[১৩] বৰ্তমান আধুনিক সাজপাৰে ঠাই অধিকাৰ কৰিছে। কেৱল উৎসৱ অনুষ্ঠানত দুই-এগৰাকী মহিলা বা দুই-এজন পুৰুষে পৰিধান কৰা বাদে নিজা সাজপাৰ পৰিধান কৰা লোকৰ সংখ্যা ৰানচু সমাজত তেনেই নগন্য। আগৰ সময়ছোৱাত ৰানচুসকলৰ নিজা তাঁতশালৰ ব্যৱস্থা আছিল। প্ৰয়োজন সাপেক্ষে ব'ৰৰ সময়ত শালখন শিপিনী গৰাকীয়ে কঁকাল টানকৈ বান্ধি লৈছিল। বৰ্তমান এই তাঁতশালৰ ব্যৱহাৰও নাইকীয়া হৈছে। তেনেদৰে অলংকাৰৰ ক্ষেত্ৰতো আধুনিক সময়ছোৱাত বজাৰত সহজে উপলব্ধ বিভিন্ন ৰঙী অলংকাৰ যেনে— খাৰু ,মণি, আদি পৰিধান কৰে।

**খাদ্যাভ্যাস সম্পৰ্কীয় ঃ**

ৰানচুসকলৰ মূখ্য আহাৰ হৈছে ভাত। আদিম অৱস্থাত বনৰ পশু-পক্ষী, মাছ-কাছ আদি চিকাৰ কৰি খাদ্য হিচাপে গ্ৰহণ কৰিছিল। পৰৱৰ্তী সময়ত জুইৰ আ�ৰিস্কাৰ হোৱাত জুইত পুৰি, সিজাই আহাৰ খোৱাৰ পৰম্পৰা গঢ়ি উঠে। নদীৰ পৰা ধৰি অনা মাছ বিলাক তেওঁলোকে শুকুৰাই ৰাখিছিল। অথাৰ্ৎ আগৰ সময়ছোৱাত ৰানচু সমাজৰ প্ৰতি ঘৰতে একোখনকৈ ধোঁৱা চাং আছিল। এই ধোঁৱা চাঙতে বনৰীয়া পশু, গাহৰি, ম'হ আৰু কুকুৰ আদিৰ মাংস শুকুৰাই ৰখাৰ লগতে অন্যান্য খাদ্য দ্ৰব্য আদিও সংৰক্ষণ কৰিছিল।

তদুপৰি ৰানচুসমাজত ওহোৰাই (বইল) খাদ্যহে অধিক ৰূপত প্ৰচলন আছিল। সেয়ে গাহৰি মাংস ৰান্ধোঁতে পচলা, পিঠাগুৰি, আদা, নহৰু, নিমখ একেলগে দি সিদ্ধ কৰি আনচাই (এবিধ পৰম্পৰাগত খাদ্য) প্ৰস্তুত কৰিছিল। তেনেদৰে পৰম্পৰাগতভাৱে 'জু' তথা পানীয়ৰ প্ৰচলন আছিল। এই পানীয় তেওঁলোকে উৎসৱ-অনুষ্ঠান, পূজা-পাতল আদিত পবিত্ৰ পানীয় হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰিছিল।[১৪]

কিন্তু ভৈয়ামলৈ আহি খ্ৰীষ্টান ধৰ্ম গ্ৰহণ কৰাৰ পাছত

ৰানচুসকলৰ খাদ্যাভাসৰ ক্ষেত্ৰত পৰিৱৰ্তন আহে। লগতে সীমান্তৰ এলেকাৰ প্ৰভাৱত আৰু বিশ্বায়নৰ ফলস্বৰূপে তেওঁলোকৰ খাদ্যৰ তালিকাখনৰ পৰা বহুবিধ খাদ্য বাদ পৰে। তাৰ পৰিৱৰ্তে নতুন খাদ্য কিছুমান তালিকাত সন্নিবিষ্ট হয়। খ্ৰীষ্টান ধৰ্ম গ্ৰহণ কৰা হেতু তেওঁলোকে পৰম্পৰাগতভাৱে গ্ৰহণ কৰি অহা পানীয় 'জু' ত্যাগ কৰে।পূৰ্বতে তেওঁলোকৰ খাদ্যৰ তালিকাত ম'হ মাংসই মুখ্য স্থান লাভ কৰিছিল। বৰ্তমান বজাৰত এইবিধ জন্তু সহজে উপলবদ্ধ নহয়। সেয়ে গৰু আৰু গাহৰি মাংসৰ প্ৰচলন অধিক দেখা যায়। তেনেদৰে আগতে তেওঁলোকে ছাগলীৰ মাংস খোৱা নাছিল। বৰ্তমান তেওঁলোকৰ সমাজৰ প্ৰায়সংখ্যক লোকে ছাগলীৰ মাংস খাদ্য হিচাপে গ্ৰহণ কৰে।

খ্ৰীষ্টান ধৰ্ম গ্ৰহণৰ আগলৈকে ৰানচু সমাজৰ লোকসকলে আহাৰ গ্ৰহণৰ পূৰ্বে অপদেৱতাক উৰ্চগা কৰাৰ কথা ক্ষেত্ৰভিত্তিক অধ্যয়নৰ জৰিয়তে জানিবলৈ দিয়ে। বৰ্তমান সময়ত ধৰ্মৰ গুৰু যীশুক প্ৰথম প্ৰাৰ্থনা কৰাৰ পাছতহে আহাৰ ভাগ গ্ৰহণ কৰে। তদুপৰি ৰানচুসকলে নতুনকৈ গ্ৰহণ কৰা অসমীয়া সমাজৰ বিহুকেইটাত পিঠা-পনা, লাৱু, জলপান, আদি নিজৰ ঘৰলৈ বুলি যোগাৰ কৰাৰ লগতে আলহী-অতিথিকো আপ্যায়ন কৰে।

বৰ্তমান ডিব্ৰুগড় জিলাৰ গড়িয়াবাম গাঁৱৰ বৈষ্ণৱধৰ্মালম্বী ৰানচুসকলৰ খাদ্যাভাসলৈ লক্ষ্য কৰিলে দেখা যায় যে, তেওঁলোকৰ সমাজত বৰ্তমান সময়তো পানীয়ৰ প্ৰচলন আছে। গতিকে এইক্ষেত্ৰত সীমান্তৰ এলেকাৰ প্ৰভাৱ পৰিছে বুলি ক'ব পাৰি। উল্লেখ্য যে- বৰ্তমান তেওঁলোকে অসমীয়া জনসমাজত প্ৰচলিত পানীয় (সাঁজ) গ্ৰহণ কৰিছে। উৎসৱ-অনুষ্ঠান আদিত তেওঁলোকে এই বিধ পানীয় গ্ৰহণ কৰাৰ কথা স্বীকাৰ কৰে। তেনেদৰে তেওঁলোকৰ সমাজত বনৰীয়া পশু, গাহৰি, ম'হ মাংস আদিৰ লগতে অন্যান্য খাদ্য দ্ৰব্য আদি শুকুৱাই সংৰক্ষণ কৰি ৰখাৰ ব্যৱস্থাও একেদৰে আছে। কিন্তু বৰ্তমান তেওঁলোকে কুকুৰ মাংস খোৱাতো ত্যাগ কৰে বুলি অৱগত কৰে। তেনেদৰে অসমত বাস কৰাৰ পাছৰ পৰা তেওঁলোকে অসমীয়া সমাজত প্ৰচলিত বিভিন্নধৰণৰ খাদ্য গ্ৰহণ কৰিবলৈ লয়। তেওঁলোকৰ পৰা জানিব পৰা তথ্য মতে- আগৰ সময়ছোৱাত চাউলৰ পৰা বনোৱা পিঠা, লাৱু আদি খাবলৈ শিকা নাছিল। বৰ্তমান পিঠা-পনা আদি খাবলৈ শিকাৰ লগতে তেওঁলোকৰ খাদ্যৰ তালিকাত জলপান নতুনকৈ সংযোগ হৈছে।

**উৎসৱ-অনুষ্ঠান সম্পৰ্কীয় ঃ**

খ্ৰীষ্টান ধৰ্মত দীক্ষিত হোৱা হেতু বৰ্তমান অসমত বাস কৰা ৰানচুসকলে খ্ৰীষ্টানসকলৰ ধৰ্মীয় উৎসৱ খ্ৰীষ্টমাছ নতুনকৈ গ্ৰহণ কৰি নিজা ঘৰত পালন কৰিবলৈ লয়। সেয়ে প্ৰতিবছৰে পচ্ছিশ ডিচেম্বৰ তাৰিখে যীশুখ্ৰীষ্টৰ জন্মতিথি উপলক্ষ্যে বৰদিন উৎসৱ পালন কৰে। সেয়ে এই দিনটোত তেওঁলোকে ৰাতিপুৱা সময়ছোৱাত প্ৰাৰ্থনা আৰু যীশুৰ নাম-কীৰ্ত্তন কৰে। কিছুলোকে আকৌ দেৱদাৰু গছৰ ডাল এটা কাটি সজাই-পৰাই বৰদিনৰ গছ হিচাপে ৰাখে। সেইদিনা সকলোৱে মিলিজুলি ভোজ-ভাত খায়। সৰুৱে ডাঙৰক সেৱা কৰে আৰু ডাঙৰে সৰুক আশীৰ্বাদ দিয়ে। সন্ধিয়া প্ৰত্যেকে ঘৰত এগচি বন্তি জ্বলায়। লগতে উক্ত দিনটোত সকলোৱে যীশুৰ মহান ত্যাগৰ কথা সোঁৱৰণ কৰে।

তেনেদৰে ৰানচুসকলে নতুনকৈ পালন কৰা আন এক ধৰ্মীয় উৎসৱ হৈছে গুড ফ্ৰাইডে।এই উৎসৱ তেওঁলোকে শুকুৰবাৰ দিনটোত উদ্‌যাপন কৰে। সেয়ে গুড ফ্ৰাইডেক পবিত্ৰ শুকুৰবাৰ বুলিও কোৱা হয়।পৰম্পৰাগত বিশ্বাস অনুসৰি এইদিনা প্ৰভু যীশুক ক্ৰুছবদ্ধ কৰা হৈছিল আৰু সেই অৱস্থাত তেওঁৰ মৃত্যু হৈছিল। কোৱা হয়— এই উৎসৱ তিনিটা মূল ঘটনাৰ অংশ। সেয়া হৈছে— যীশুৰ ক্ৰুছবদ্ধ কৰা, কবৰ দিয়া আৰু পুনৰ জীৱিত হোৱা আদি। গতিকে ভাৰতৰ লগতে অসমতো এই দিনটো ৰাষ্ট্ৰীয় ছুটিৰ দিন হিচাপে ধাৰ্য কৰা হৈছে। বৰ্তমান সময়ত ৰানচু সমাজৰ লোকসকলে এই পবিত্ৰ দিনটোৰ নীতি-নিয়মসমূহ নতুনকৈ আহৰণ কৰিছে বুলি ক'ব পাৰি।

আগৰ সময়ছোৱাত তেওঁলোকৰ সমাজৰ যিকোনো উৎসৱ-অনুষ্ঠান আদিতজাম্পা ই মুখ্য ভুমিকা লৈছিল। জাম্পা হৈছে ৰানচু সমাজৰ এজন পণ্ডিত। বৰ্তমান তেখেতৰ গুৰুত্ব নাইকীয়া হ'ল। এতিয়া জাম্পাৰ ঠাইত মুখ্য কাম-কাজসমূহৰ দায়িত্ব গীৰ্জাৰ আদিয়ে গ্ৰহণ কৰে।

**উপসংহাৰ ঃ**

সমাজ আৰু সংস্কৃতি ওতঃপ্ৰোতভাৱে জড়িত ।সংস্কৃতি সমাজত বাস কৰা লোকসকলৰ জৰিয়তে প্ৰবাহিত হয় । তদুপৰি সংস্কৃতিয়ে মানুহৰ জীৱনৰ চৰ্যাক সামৰি লয় ।সময়ৰ পৰিৱৰ্তনৰ সোঁত অন্য জনগোষ্ঠীয় সমাজত অহাৰ দৰে নগা জনজাতিৰ সমাজলৈ বিয়পি পৰে । ভৈয়ামলৈ আহি ৰানচু

সকলে খ্রীষ্টান ধর্ম গ্রহণ কৰা হেতু তেওঁলোকৰ সংস্কৃতিৰ মাজত অন্য জনজাতিৰ সাংস্কৃতিক উপাদান সোমাই পৰা পৰিলক্ষিত হৈছে। একপ্রকাৰে ক'বলৈ গ'লে তেওঁলোকে অন্য জনজাতিৰ সাংস্কৃতিক উপাদানসমূহ গ্রহণ কৰিছে ।

**সামগ্রিক সিদ্ধান্ত ঃ**

গৱেষণা বিষয়টোৰ আলোচনাৰ অন্তত কেইটামান সিদ্ধান্তত উপনীত হ'ব পৰা গ'ল-

ক) ৰানচু জনজাতিৰ লোকসকৰ সমাজ সংস্কৃতিত অন্য জনগোষ্ঠীৰ প্রভাৱ পৰাৰ ক্ষেত্রত বহুবোৰ কাৰকে ক্রিয়া কৰিছে। ইয়াৰ ভিতৰত ঔপনিৱেশিকতা,শিক্ষাৰ বিস্তাৰ,বিশ্বায়ণৰ প্রভাৱৰ কথা ক'ব পাৰি।

খ) ভৈয়ামলৈ আহি খ্রীষ্টান ধর্ম গ্রহণ কৰা হেতু তেওঁলোকে সংস্কৃতিৰ সৈতে জড়িত লোকৰীতিসমূহ নতুনকৈ গ্রহণ কৰিছে বুলি ক'ব পাৰি।

গ) একাংশই ৱৈষ্ণৱধর্ম গ্রহণ কৰা হেতু তেওঁলোকে সংস্কৃতিৰ সৈতে জড়িত লোকৰীতিসমূহ নতুনকৈ গ্রহণ কৰিছে বুলি ক'ব পাৰি। ❑


**গ্রন্থপঞ্জীঃ**

বৰা, মহেন্দ্র. গৱেষণা প্রণালীতত্ত্ব, ডিব্রুগড় বিশ্ববিদ্যালয়, ডিব্রুগড়, প্রথম প্রকাশ, ডিচেম্বৰ ১৯৯২

শর্মা, নবীনচন্দ্র. লোকসংস্কৃতি, গুৱাহাটী, চন্দ্রপ্রকাশ, প্রথম প্রকাশ ১৯৯২

অপ্রকাশিত পি.এইচ.ডি গৱেষণা গ্রন্থ

কোঁৱৰ, জ্যোতিপ্রসাদ. ৰানচু সংস্কৃতিৰ ৰীতিমূলক সংস্কৃতি ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন, ডিব্রুগড় বিশ্ববিদ্যালয়, ১৯৯২

ফুকন, পার্থপ্রতিম. ৰানচু ভাষাৰ ৰূপতত্ত্ব ঃ এক বর্ণনাত্মক অধ্যয়ন,ডিব্রুগড় বিশ্ববিদ্যালয়, ১৯৯২

অপ্রকাশিত এম.ফিল গৱেষণা গ্রন্থ

সন্দিকৈ, দিৱেন্দু. ৰানচু ভাষাৰ বিভাজ্য ধ্বনি ঃ এক সাংবহনিক বিশ্লেষণ,ডিব্রুগড় বিশ্ববিদ্যালয়


পাদটীকা

১। পাৰুল দত্ত, *দ্য ৰানচু,* ১৯৯২ পৃ.৪৮

২। উল্লিখিত

৩। তথ্যদাতা ঃ পাটেক ৰানচু, ডিব্রুগড় জিলা, গড়িয়াবাম, জানুৱাৰী, ২০১৯

৪। তথ্যদাতা ঃ লংচা ৰানচু, চৰাইদেউ জিলাৰ দেওপানী নগা গাঁও, জুলাই ২০১৯

৫। তথ্যদাতা ঃ টাবা আচ্চাহাম ৰানচু, চৰাইদেউ জিলা, বাৰেগাঁও নগা গাঁও, আগষ্ট ২০১৯

৬। উল্লিখিত

৭। উল্লিখিত

৮। উল্লিখিত

৯। তথ্যদাতা ঃ মানচু ৰানচু, চৰাইদেউ জিলা, টিয়কীয়া নগা গাঁও, আগষ্ট ২০১৯

১০। তথ্যদাতা ঃ মানচু ৰানচু, চৰাইদেউ জিলা, টিয়কীয়া নগা গাঁও, আগষ্ট, ২০১৯

১১। তথ্যদাতা ঃ অ'ম কন্যাক, চৰাইদেউ জিলা, দেওপানী নগা গাঁও,আগষ্ট, ২০১৯

১২। তথ্যদাতা ঃ টাবা আচ্চাহাম ৰানচু, চৰাইদেউ জিলা, বাৰেগাঁও নগা গাঁও,আগষ্ট ২০১৯

১৩। উল্লিখিত

১৪। উল্লিখিত

গৱেষণা পত্র

# কবি জীৱনানন্দ দাস আৰু নীলমণি ফুকনৰ কবিতাত চিত্রকল্প ব্যৱহাৰৰ এটি তুলনামূলক অধ্যয়ন

**অজিত কুমাৰ সিংহ**

সহকাৰী অধ্যাপক, বাংলা বিভাগ
এ.ডি.পি. ক'লেজ নগাঁও
অসম, পিন-৭৮২০০২
ম'বাইল - ৯৪৩৫০৬১৫২০
ই-মেইল ঃ ajitkumarsingha1968@gmail.com



**সংক্ষিপ্ত সাৰ:**

ভাৰতীয় সাহিত্যৰ আধুনিক কবিতাত চিত্রকল্পৰ ব্যৱহাৰ এটি নতুন শৈলী বুলি ক'ব পাৰি। বাংলা সাহিত্যৰ আধুনিক কবি জীৱনানন্দ দাসৰ কবিতাত যেনেকৈ এই চিত্রকল্পৰ ব্যৱহাৰ দেখিবলৈ পোৱা যায়, ঠিক সেইদৰে অসমীয়া সাহিত্যৰ কবি নীলমণি ফুকনদেৱৰ আধুনিক কবিতাতো এই চিত্রকল্পৰ ব্যৱহাৰ দেখিবলৈ পোৱা যায়। এই চিত্রকল্পৰ লগত প্রতীকৰ সম্পর্ক লক্ষণীয়। প্রতীক বিধানে যিদৰে কবিতাৰ ভাষাক ব্যঞ্জনাময় কৰি তোলে, সেইদৰে চিত্রকল্প বিধানেও কবিৰ মনৰ অব্যক্ত ভাৱনাক সুন্দৰভাৱে উপস্থাপন কৰে। সাধাৰণতে উপমাত এটি সাদৃশ্য মাত্র কল্পনা কৰা হয়। কিন্তু চিত্রকল্পত সাদৃশ্যৰ উপৰিও কবিৰ মনত এক অতিৰিক্ত কল্পনাৰ চিত্রপট ভাঁহি আহে। দুয়োজন কবিয়ে তেওঁলোকৰ কবিতাৰ মাজেদি সমাজৰ বিভিন্ন স্তৰৰ মানুহৰ মনস্তাত্বিক দিশ যেনে— শূণ্যতা, এক ব্যাখ্যাতীত আবেগ-অনুভূতি তথা নিঃসঙ্গতাৰ ছবি ফুটাই তুলিবলৈ সক্ষম হৈছে। যি কি নহওক, আমাৰ আলোচনাৰ দ্বাৰা কবি জীবনানন্দ দাস আৰু কবি নীলমণি ফুকনদেৱৰ উভয়ৰে কবিতাত চিত্রিত চিত্রকল্পৰ ব্যৱহাৰৰ ওপৰত আলোকপাত কৰাৰ প্রয়াস কৰা হৈছে।



**বীজশব্দ: চিত্রকল্প, প্রতীক, উপমা, বিষণ্ণতাবোধ আদি।**


**প্রস্তাৱনা:**

সাহিত্যত আধুনিকতা সন্দর্ভত বিভিন্ন মুনিৰ বিভিন্ন মত পোৱা যায়। পণ্ডিতসকলে আধুনিকতাৰ সংজ্ঞা বিভিন্ন ধৰণে উপস্থাপন কৰিছে। দৰাচলতে 'আধুনিক' শব্দটি কালজয়ী নহয়। মূলতে পৰম্পৰা নির্মাণৰ জৰিয়তে পুনর্নির্মাণৰ নামেই হৈছে আধুনিকতা। ঔপনিবেশিক চিন্তাধাৰাৰ সৈতে এই আধুনিকতাৰ সম্পর্ক আছে। ঔপনিবেশিক শক্তিৰ সাহিত্য আৰু সংস্কৃতিৰ সৈতে পৰিচয় হোৱাৰ পিছত বাংলা সাহিত্যত আধুনিকতাৰ সূত্রপাত হৈছিল। অৱশ্যে তুলনামূলকভাৱে বহু পিছতহে অসমীয়া সাহিত্য-সংস্কৃতিত ইয়াৰ প্রভাৱ পৰিছিল। ইয়াৰ মূল কাৰণ আছিল ৰাজনৈতিক পৰিবেশ।

সাহিত্য-সংস্কৃতিৰ ওপৰত ঔপনিবেশিক শক্তিৰ প্রত্যক্ষ প্রভাৱৰ ফলস্বৰূপে

বাংলা সাহিত্য ও সংস্কৃতিয়েও এক নতুন গতি লয়। ৰবীন্দ্রনাথৰ লিখনি শৈলীৰ বিৰোধিতাৰে বিশেষকৈ ৰবীন্দ্রনাথৰ ৰোমাণ্টিক আদর্শক উপেক্ষা কৰি এক নতুন বাস্তৱবাদী কবিসমাজে বাংলা সাহিত্য জগতত পদার্পণ কৰে। এই সন্দর্ভত সমালোচক আবু ছয়ীদ আইয়ুৱে কয়— 'সময়ৰ ফালৰপৰা দ্বিতীয় মহাযুদ্ধৰ পিছৰ আৰু ভাবাবোধৰ ফালৰপৰা ৰবীন্দ্রনাথৰ প্রভাৱমুক্ত অথচ মুক্তি প্রত্যাশী কাব্যকেই আমি আধুনিক কাব্য বুলি বিবেচনা কৰিছোঁ।'[১]

এই সময়ছোৱাত ৰবীন্দ্রনাথৰ কাব্যশৈলীৰ বিৰোধিতা কৰি সাহিত্য আলোচনী 'কল্লোল'ৰ জৰিয়তে আত্মপ্রকাশ কৰা কবিসকলৰ ভিতৰত বুদ্ধদেৱ বসু, সুধীন্দ্র নাথ, বিষ্ণু দে, জীৱনানন্দ দাস আৰু সমৰ সেন অন্যতম আছিল। এইসকল কবিৰ কবিতাত আমি (১) চহৰকেন্দ্রিক যান্ত্রিক সভ্যতাৰ অভিশাপ, (২) অৱসাদ, যৌনতা, উদ্বেগ, শূণ্যতা আৰু হতাশা, (৩) পৰম্পৰাগত মূল্যবোধত অবিশ্বাস, সন্দেহ আৰু অনিশ্চয়তা, (৪) নাস্তিকতাবাদী দৃষ্টিভঙ্গী, (৫) প্রাচীন উপমা তথা শব্দৰ অর্থ প্রয়োগত নতুনত্ব প্রদান, (৬) গদ্য ছন্দৰ ব্যৱহাৰ আৰু (৭) চিত্রকল্পৰ প্রয়োগ আদি দেখিবলৈ পোৱা যায়। ইয়াৰোপৰি আধুনিক বাংলা কবিতাৰ আৰু অনেক লক্ষণ দেখিবলৈ পোৱা যায়।

দ্বিতীয় বিশ্বযুদ্ধই ভাৰতৰ অন্যান্য প্রান্তৰ লগতে অসমতো অস্থিৰতাৰ সৃষ্টি কৰিছিল। এই সময়ছোৱাত প্রাচ্যৰ শিক্ষা-সংস্কৃতি, বংগৰ বৌদ্ধিক সমাজ তথা বাংলা সাহিত্যৰ নতুন শৈলীৰ সংস্পর্শৰ ফলত অসমীয়া সাহিত্য সংস্কৃতিয়েও এক নতুন ধাৰাৰ সৃষ্টি কৰিছিল। অৱশ্যে এই সময়ছোৱাত অসমীয়া সাহিত্য জগতত এক নতুন আলোড়নৰ সৃষ্টি হৈছিল।

**লক্ষ্য আৰু উদ্দেশ্য:**

পঞ্চাশ-ষাঠিৰ দশকত অসমীয়া কবিতাত ঔপনিবেশিক আধুনিকতাৰ যাত্রা আৰম্ভ হয়। এই সময়ৰ কবিতাৰ আমি আধুনিকতাৰ নিম্ন লক্ষণসমূহ দেখা পাওঁ—

(১) কবিতা কেৱলমাত্র হৃদয়ৰ অনুভূতি নহয়, তাত্বিকভাৱেও কবিতা ৰচনা কৰা হয়।

(২) কবিতা হৃদয়ঙ্গম কৰিবলৈ পাঠকৰ ইতিহাসজ্ঞান তথা অধ্যয়নলব্ধ জ্ঞানৰ প্রয়োজন।

(৩) কবিতাৰ তাৎপর্য সহজে বুজি পোৱা বিধৰ নহয়।

(৪) প্রতীক, চিত্রকল্পৰ প্রয়োগ তথা ছন্দৰ ব্যৱহাৰ আদি কবিতাৰ নতুন শৈলী হিচাপে পৰিগণিত হৈছে।

আধুনিক কবিতাত উল্লিখিত উপৰিউক্ত বৈশিষ্ট্যসমূহৰ ভিতৰত কেৱল চিত্রকল্পৰ আধাৰত আধুনিক বাংলা সাহিত্যৰ কবি জীৱনানন্দ দাস আৰু অসমীয়া সাহিত্যৰ আধুনিক কবি নীলমণি ফুকনৰ কবিতাৰ তুলনামূলক আলোচনা কৰাই হৈছে এই গৱেষণা পত্রৰ মূল উদ্দেশ্য।

**বিষয়বস্তু:**

আধুনিক কবিতাত চিত্রকল্প হৈছে এক নতুন কাব্যিক শৈলীগত সংযোজন। এই চিত্রকল্পৰ সৈতে প্রতীক বিধানৰ ওতঃপ্রোত সম্পর্ক আছে। প্রতীক বিধানে কবিতাৰ ভাষাক লয়যুক্ত কৰি তোলে। কবিসকলে প্রতীকৰ জৰিয়তে নিজৰ মনৰ ধ্যান-ধাৰণা আৰু আবেগ-অনুভূতিক প্রতিফলিত কৰে। লগতে পাঠকেও নিজৰ বোধগম্যতাৰ আধাৰত অর্থ বিশ্লেষণৰ জৰিয়তে মূল কবিতাৰ তাৎপর্য অনুধাৱন কৰিব পাৰে। সাহিত্যত এই প্রতীক বিধানৰ মূল আধাৰ হৈছে ফৰাছী কবি মালার্মে।

বর্তমান সময়ত চিত্রকল্প হৈছে কাব্যশৈলীৰ এটি পৰিচিত শব্দ। এই চিত্রকল্পৰ প্রয়োগ আধুনিক কবিতাত বেছিকৈ দেখিবলৈ পোৱা যায়। কবিতা সৃষ্টিৰ প্রাক্ক্ষণত কবিয়ে কল্পনাৰ জৰিয়তে যি চিত্রপট তৈয়াৰ কৰে, পাঠকসমাজে তাৰ যোগেদিয়েই কবিতাৰ ৰস আস্বাদন কৰে। উপমা হৈছে এটি সাদৃশ্য কল্পনাৰ সমাহাৰ। কিন্তু চিত্রকল্পই কবিৰ অব্যক্ত বক্তব্য চিত্র আকাৰে পাঠকৰ আগত দাঙি ধৰে।

**মূল আলোচনা:**

বিশ্ব সাহিত্য জগতত চিত্রবাদী আন্দোলন সর্বপ্রথমে আৰম্ভ হৈছিল ১৯০৯ চনত। এই আন্দোলনৰ মূল হুতা আছিল আমেৰিকান কবি এজৰা পাউণ্ড। পাউণ্ডে কৈছিল— 'চিত্রকল্প কবিতাৰ অলংকাৰ নহয়, ই হৈছে কবিতাৰ ৰাণী।'

যি কি নহওক, অতিবাস্তৱবাদী আধুনিক কবি জীৱনানন্দ দাসে পাঠক সমাজৰ বাবে বাংলা কবিতাক নতুন ৰূপত উপস্থাপন কৰিবলৈ চিত্রকল্পৰ ব্যৱহাৰ কৰিছিল তেওঁৰ চিত্রকল্পত অনস্বীকার্য আত্মীয়তা ফুঁটি উঠিছে; অৱচেতনৰ

সূক্ষ্ম কম্পনবোৰে এই চিত্রকল্পবোৰত ইমান শক্তিশালী অন্তর্দীপ্তি সংযোগ কৰিছে যে ব্যক্ত তথা ব্যক্তিসত্বাৰ মাজৰ শূণ্যতা আলোকিত হৈ পৰিছে। ইয়াৰোপৰি আধুনিক জীৱন যাত্রাত মানৱ জীৱনৰ সকলো সমস্যা যে সমাধান সম্ভৱ নহয়, জীৱনানন্দৰ চিত্রকল্পত তাৰেই উপস্থিতি প্রতীয়মান হৈছে।

কবি জীৱনানন্দ দাসৰ প্রথম কবিতাপুথিখনৰ নাম হৈছে 'ঝাৰপালক'। এই কবিতা পুথিখনৰ অন্তিম কবিতা 'সারাটি রাত্রি তারাটির'ত কবিয়ে লিখিছে—

'এসেছে গোধূলি গোলাপী বরণ,
এ তবু গোধূলি নয়—
সারাটি রাত্রি তারাটির সাথে তারাটির কথা কয়।'[২]

সমসাময়িক সমাজৰ শূণ্যতা, বিষণ্ণতা ও অন্তর্দাহৰ বিষয়ে অৱগত হোৱাৰ লগে লগে তেওঁৰ 'বনলতা সেন' কবিতাপুথিখনৰ বিভিন্ন কবিতাত যিদৰে চিত্রকল্পবোৰে আশ্চর্যকৰ এক উজ্জ্বলতা বিকিৰণ কৰে আৰু অৱচেতনৰ সাংকেতিক প্রতিচ্ছবি বাৰে বাৰে প্রতিফলিত হয় তাৰ বাস্তৱিক চিত্র প্রতিস্ফুট হৈ উঠিছে। এই কাব্যগ্রন্থখনিৰ 'হাওয়ার রাত' কবিতাটিত তেওঁ লিখিছে—

'সমস্ত মৃত নক্ষত্রেরা কাল জেগে উঠেছিল;
আকাশে এক তিল ফাঁক ছিল না;
পৃথিবীর সমস্ত ধূসর মৃতদের মুখও
সেই নক্ষত্রের ভিতর দেখেছি আমি।'[৩]

তেওঁ আন এক উল্লেখনীয় কবিতা 'বনলতা সেন'ত চিত্রকল্পৰ নিদর্শন এইদৰে দাঙি ধৰিছে—

'চুল তার কবেকার অন্ধকার বিদিশার নিশা
মুখ তার শ্রাবস্তীর কারুকার্য
সন্ধ্যা আসে; ডানার রৌদ্রের গন্ধে মুছে ফেলে ছিল।'[৪]

এইদৰে চিত্রকল্পৰ মাজেদি তেওঁ জীৱনৰ নানা অভিজ্ঞতাপুষ্ট বাস্তৱ চিত্র অংকন কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। লগতে আমাৰ নিচিনা সাধাৰণ পাঠক সমাজক তত্ত্বগধুৰভাৱে বিষয়বস্তুক দৃষ্টিপাত কৰিবলৈ অনুপ্রেৰণা যোগাইছে।

কবি জীৱনানন্দ দাসৰ এই চিত্রকল্প ব্যৱহাৰে বাংলা কবিতাত এক যুগান্তকাৰী বার্তা বহন কৰিছে। ইয়াৰোপৰি কবিতাত ব্যৱহৃত হোৱা শব্দবোৰে এই চৈতন্যৰ গভীৰতাৰপৰা দৃশ্য ও অদৃশ্য, বর্ণ ও গোন্ধ, ছবি থকা সংগীতৰ এক অতুলনীয় সু-সংগতি গঢ়ি তুলিছে। তেওঁ চিত্রকল্পবোৰৰ মাজেদি নিবিড় ৰহস্যৰে ভৰপূৰ বহুমাত্রিক জীৱনৰ পৰিচয় দাঙি ধৰিছে। বাংলা কবিতাত ইয়েই প্রথমবাৰৰ বাবে এক বিস্ময়কৰ চুম্বকক্ষেত্র তৈয়াৰ কৰিলে।

অন্যহাতেদি অসমীয়া সাহিত্যৰ বিখ্যাত কবি হেম বৰুৱাৰ (১৯১৫-১৯৭৭) সময়ৰপৰা অসমীয়া সাহিত্য জগতত প্রতীক তথা চিত্রকল্পৰ ব্যৱহাৰৰ আৰম্ভণি হয়। হেম বৰুৱাৰ উপৰিও নৱকান্ত বৰুৱা, মহেন্দ্র বৰা, হৰি বৰকাকতি তথা নীলমণি ফুকন আদি কবিসকলে নিজৰ নিজৰ কবিতাত চিত্রকল্পৰ প্রয়োগেৰে অসমীয়া সাহিত্যক এক নতুন গতি দিছে।

আধুনিক অসমীয়া সাহিত্যৰ সেই সময়ৰ কবিসকলৰ ভিতৰত নীলমণি ফুকনৰ কবিতাত চিত্রকল্প ব্যৱহাৰৰ ক্ষেত্রত এক বিশেষ সফলতা বুলি সমালোচকসকলে মত ব্যক্ত কৰিছে। তেওঁৰ কবিতাত বিচিত্র শব্দ প্রয়োগ তথা শব্দ চিত্রৰ যোগেদি পাঠক সমাজক ৰসানুভূতিৰদ্বাৰা আপ্লুত কৰিব পৰা গুণ আছিল।

কবি নীলমণি ফুকনদেৱৰ সাহিত্যিক জীৱনৰ প্রথমছোৱাৰ কবিতাত শব্দ কঠিনতা আৰু জটিলতা দেখা পোৱা যায়। আনকি তেওঁৰ কবিতাত দুর্বোধ্য প্রতীকৰ প্রয়োগ হোৱা দেখা যায়। এইখিনিতে উল্লেখ কৰিব পাৰি যে কবি জীৱনানন্দ দাসৰ লিখনিশৈলীৰ প্রভাৱ হয়তো প্রত্যক্ষ বা পৰোক্ষভাৱে কবি নীলমণি ফুকনৰ কবিতাত প্রতিফলিত দেখিবলৈ পোৱা যায়। কিন্তু পৰৱর্তী সময়ত স্থানীয় লোকজীৱন, ইতিহাস তথা চিত্রভাস্কর্য আদি চিত্রকল্পই তেওঁৰ কবিতাত স্থান লাভ কৰে। তেওঁৰ কবিতাত ব্যৱহৃত চিত্রকল্প হয়তো সাধাৰণ পাঠকৰ চকুত ধৰা নপৰিবও পাৰে, কাৰণ অত্যন্ত গহীনভাৱে বা সূচাৰুৰূপে তেওঁৰ কবিতাৰ পর্যবেক্ষণ অবিহনে তেওঁৰ ব্যৱহৃত চিত্রকল্পবোৰৰ উমান পোৱা নাযায়। তেওঁৰ ৰচিত ছটা বিভিন্ন কবিতাৰ প্রথম কবিতাটিত তেখেতে লিখিছে—

'গোটেই আহিনমহীয়া ৰাতিটো
ইন্দ্রমালতী ফুলবোৰে কান্দি আছিল

--- তমাল জোপাত ওলমি আছে।'[৫]

আহিন মাহত নতুনকৈ কুৱঁলী পৰে। ফুলবোৰৰ সুগন্ধ বতাহত ভাঁহি আহে আৰু কুঁৱলীত তিতি যায়। ফুলবোৰে অহৰহ কান্দি থকা যেন কবিৰ অনুমান হৈছে। কুঁৱলীৰ শব্দত যেন কবিৰ চকুত টোপনি অহা নাই। কবিৰ হৃদয়ৰ অদৃশ্য যন্ত্রণাৰ যেন বহিঃপ্রকাশ ঘটিছে। ইয়াৰ পিছ মুহূর্ততেই চন্দ্রৰ পোহৰ দেখি কবিজনে এটা নিষ্পাপ আৰু সুন্দৰ হাঁহি মনত পেলাইছে, য'ত কবিয়ে এই সুন্দৰ হাঁহিটো দেখিছে, তাতেই শান্তি আৰু বিশ্রামৰ ইঙ্গিত পাইছে। কবিৰ এই অনুভৱৰ পৃষ্ঠভূমি হৈছে আহিন মাহ, কুঁৱলীৰ টোপনি নহয়, আছে মাথো বিশেষ এটি ৰাতিৰ কথা। এই বিশেষ ৰাতিটো কবিতাৰ মাজত আত্মগোপন কৰি আছে।

শব্দ আৰু ধ্বনিৰ ব্যৱহাৰত অত্যন্ত নিপুণ হিচাপে খ্যাত কবি নীলমণি ফুকনৰ কবিতা অতি ৰহস্যময় হ'লেও হৃদয়ৰ সৈতে মানৱজীৱনৰ বিভিন্ন ৰূপ, সমাজ চেতনাৰ তথা জীৱনৰ অশুভ দিশৰ ইঙ্গিত পোৱা যায়। তাৰ সৈতে কবিৰ মনোকষ্ট আৰু বেদনা সংপৃক্ত হৈ আছে। তেওঁ যেতিয়া লিখে—

'মাজ ৰাতিখন কোনে ৰিঙিয়াই
বৰকাহঁত কোবায়
মেটেকা ফুলৰ তলৰ পৰা মইহে
তহতৰ ভোটাই।'[৬]

উপৰোক্ত চিত্রকল্পটিত কবি নীলমণি ফুকনৰ জীৱনৰ প্রতি থকা ঘৃণিত ভাববোৰ সুন্দৰকৈ ফুটি উঠিছে। ইয়াৰোপৰি ইতিহাসৰ গর্ভৰপৰা যেন প্রতিবাদী মানুহৰ কণ্ঠস্বৰ ওলাই আহিছে।

**উপসংহাৰ:**

বাংলা সাহিত্যৰ আধুনিক কবি জীৱনানন্দ দাস আৰু অসমীয়া সাহিত্যৰ বিশিষ্ট কবি নীলমণি ফুকনৰ কবিতাত চিত্রকল্পপ ব্যৱহাৰৰ ওপৰত আলোচনাৰ অন্তত আমি ক'ব পাৰোঁ যে কবিতাত চিত্রকল্প ব্যৱহাৰ সন্দর্ভত দুয়োগৰাকী কবিৰ কবিতাত কিছু মিল দেখা পোৱা যায়। কবি জীৱনানন্দৰ বিষণ্ণতাবোধ, শূণ্যতা আৰু এক বুজাব নোৱাৰা নির্জনতা, অভিব্যক্তিক মোহনীয় প্রকৃতি চেতনা তথা চিত্রকল্পবোধ আধুনিক অসমীয়া কবি নীলমণি ফুকনকে আদি কৰি অন্যান্য সকলে কম-বেছি পৰিমাণে গ্রহণ কৰিছে।

অন্যহাতেদি জীৱনানন্দ দাসসহ অন্যান্য বাংলা সাহিত্যৰ আধুনিক কবিসকলে ৰবীন্দ্রনাথৰ কাব্যশৈলীৰ বিৰোধিতা কৰি কবিতা ৰচনা কৰা দেখা যায়। কিন্তু অন্যান্য আধুনিক কবিসকলৰ অসমীয়া আধুনিক সাহিত্যৰ কবি নীলমণি ফুকনে ৰবীন্দ্রনাথৰ কাব্যশৈলী গাঁথনিৰ ইমান বিৰোধী নাছিল।

ইয়াৰ বিপৰীতে তেওঁ ৰবীন্দ্রনাথৰ কাব্যশৈলীৰ গাঁথনি জ্ঞাত বা অজ্ঞাতসাৰে সমর্থন কৰিছিল। ইয়াৰ ফলস্বৰূপে দুয়োটা সাহিত্যৰ ভাষা, ছন্দ, অলংকাৰ প্রতীক তথা চিত্রকল্প আদিৰ মাজত একৰূপতা পৰিলক্ষিত হৈছে।❑

**পাদটীকা:**

১. ড° বাসন্তীকুমাৰ মুখোপাধ্যায়, ৰবীন্দ্রনাথ ও আধুনিক কবিতা, আধুনিক বাংলা কবিতাৰ ৰূপৰেখা, প্রকাশ ভৱন, কলকাতা, ১৯৯৪, পৃ. ৪১

২. সাৰাটি ৰাত্রি তাৰাটিৰ 'ঝৰাপালক' জীৱনানন্দ দাসৰ কাব্যগ্রন্থ, ২য় খণ্ড, বেঙ্গল পাবলিশার্স, পৃ. ১৪৭

৩. হাওয়াৰ ৰাত; বনলতা সেন, জীৱনানন্দ দাসৰ কাব্যগ্রন্থ, ১ম খণ্ড, পৃ. ১১-১২

৪. বনলতা সেন, ঐ, পৃ. ৯

৫. ছটা বিভিন্ন কবিতা; কুৰি শতিকাৰ অসমীয়া কবিতা; নীলমণি ফুকন, অসম প্রকাশন পৰিষদ, গুৱাহাটী, পৃ. ১৮

৬. মাজ ৰাতিখন কোনে ৰিঙিয়াই, ঐ, পৃ. ২৪

গৱেষণা পত্র

# অসমৰ জনজাতিসমূহৰ মাজত প্ৰচলিত জগন্নাথ পৰম্পৰা ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন

**স্মিতা ডেকা**

ৱার্ড নং. ৩, লেন নং. ১০ (চি)
ডাক + থানা ঃ নলবাৰী
পিন ঃ ৭৮১৩৩৫
জিলা ঃ নলবাৰী (অসম)
ম'বাইল-৯১০১৫৬৬২২৭
ই-মেইল ঃ smitadeka985@gmail.com

**ড° প্ৰফুল্ল কুমাৰ নাথ**

অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়
গুৱাহাটী, অসম-৭৮১০১৪



**সাৰাংশ ঃ**

প্ৰস্তাৱিত ক্ষুদ্ৰ গৱেষণা গ্ৰন্থ পত্ৰখনৰ বিষয়টি হ'ল "অসমৰ জনজাতিসমূহৰ মাজত প্ৰচলিত জগন্নাথ পৰম্পৰা ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন।" পুৰীৰ জগন্নাথ মন্দিৰক কেন্দ্ৰ কৰি গঢ় লোৱা যি বৃহৎ জগন্নাথ সংস্কৃতি সেই পৰম্পৰা এদিনতে গঢ় লোৱা নাই। বহু সমালোচক-পণ্ডিতৰ গৱেষণাৰ অন্তত জগন্নাথ পৰম্পৰাৰ সৈতে জনজাতীয় এক প্ৰত্যক্ষ বা কোনো কোনো ক্ষেত্ৰত পৰোক্ষ সম্পৰ্ক আছে, সেই সম্পৰ্কে স্পষ্ট অভিমত দিছে। ভাৰতবৰ্ষৰ উত্তৰ-পূবত অৱস্থিত অসম হৈছে এনে এখন ৰাজ্য য'ত নানা জাতি-জনজাতিৰ সমন্বয় আৰু সমাহৰণত বৃহত্তৰ অসমীয়া সংস্কৃতি গঢ় লৈ উঠিছে। এনে অসমীয়া সংস্কৃতিৰ এক অংগ হ'ল জগন্নাথ সংস্কৃতি। জগন্নাথ পৰম্পৰাৰ আৰম্ভণি কেতিয়া হৈছিল, সেয়া এক অন্য গৱেষণাৰ বিষয়। উক্ত প্ৰস্তাৱিত ক্ষুদ্ৰ গৱেষণাৰ পৰিসৰত জগন্নাথ সংস্কৃতিৰ আটাইবোৰ দিশৰ বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন সম্ভৱ নহয়। উক্ত গৱেষণা পত্ৰত কেৱল অসমৰ জনজাতিসমূহৰ সৈতে জগন্নাথ কিদৰে সম্পৰ্কিত, তাৰ বিষয়েহে বিশ্লেষণ কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হৈছে। মূলতঃ ক্ষেত্ৰ অধ্যয়ন আৰু নানা গৱেষণা গ্ৰন্থ, আলোচনী আদিৰ সহায়ত এই গৱেষণা পত্ৰ প্ৰস্তুত কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হৈছে। গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰাৰ ক্ষেত্ৰত পূৰ্বকৃত অধ্যয়নৰ সহায় লোৱা হৈছে। জগন্নাথ সংস্কৃতি সম্পৰ্কে অসমত ড° জয়জ্যোতি গোস্বামীয়ে 'অসমৰ ধৰ্মীয় পৰম্পৰা আৰু সাহিত্যত জগন্নাথ' শীৰ্ষক গৱেষণা গ্ৰন্থত সামগ্ৰিক বিশ্লেষণ কৰিছে। অসমৰ বাহিৰতো বিশেষকৈ উৰিষ্যাৰ নানা পণ্ডিত, গৱেষক, পশ্চিমবংগ আদি ঠাইতো জগন্নাথ সংস্কৃতি সম্পৰ্কে ভালেমান গৱেষণা হৈছে। কিন্তু অসমৰ জনজাতিসমূহৰ ক্ষেত্ৰত জগন্নাথ সংস্কৃতিৰ প্ৰভাৱ আৰু সমন্বয়ক উদ্দেশ্য কৰি মূল বিষয় হিচাপে লৈ বৰ্তমানলৈ গৱেষণা হোৱা নাই।

প্ৰস্তাৱিত ক্ষুদ্ৰ গৱেষণা পত্ৰখনত সেয়েহে মূলতঃ অসমৰ জনজাতিসমূহৰ চমু পৰিচয় দি তাৰ সৈতে জগন্নাথ সংস্কৃতি কিদৰে সম্পৰ্কিত হৈ আছে সেই বিষয়ে বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।



**গুৰুত্বপূর্ণ অভিধা ঃ** জনজাতি, জগন্নাথ গছ-পূজা, গীত-মাত, ৰাভা, কার্বি।

**০.০১ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য তথা গুৰুত্ব ঃ**

জগন্নাথ সংস্কৃতিৰ পৰিসৰ বৰ বহল আৰু বিস্তৃত। অসমৰ লোকমানসতো জগন্নাথ তেনেই আপোন। ভাৰতৰ উত্তৰ-পূৱ প্ৰান্তত অৱস্থিত অসম নানা জাতি-উপজাতি, জনজাতিৰ সংমিশ্ৰণ, সমন্বয় আৰু সমাহৰণত গঢ় লৈ উঠা এক ৰাজ্য। অসমৰ লোক-সংস্কৃতিৰ অধ্যয়ন জনজাতীয় সংস্কৃতিৰ অধ্যয়ন অবিহনে অসম্পূৰ্ণ। পুৰীৰ জগন্নাথ মন্দিৰক কেন্দ্ৰ কৰি গঢ় লোৱা জগন্নাথ সংস্কৃতি অসমৰ নানা বৈষ্ণৱ সন্ত-মহন্ত ভকত তথা ভক্তপ্ৰাণ ৰাইজৰ অতীতৰে পৰা পুৰী ভ্ৰমণৰ পৰিপ্ৰেক্ষিতত অসমতো গঢ় লৈ উঠিছে। জগন্নাথ সংস্কৃতিত জনজাতীয় প্ৰভাৱ সম্পৰ্কে অসমৰ বাহিৰত গৱেষণা হৈছে যদিও অসমত তেনে গৱেষণা হোৱা নাই। সেয়েহে অসমৰ কোনো জনজাতিৰ সৈতে জগন্নাথ পৰম্পৰা জড়িত হৈ আছেনে এই সম্পৰ্কে বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়নৰ প্ৰয়োজন আছে।

জনজাতীয় পৰম্পৰাৰ সৈতে জগন্নাথ কিদৰে জড়িত হৈ আছে তাকে বিশ্লেষণ কৰি অসমৰ জনজাতীয় পৰম্পৰাত জগন্নাথ সংস্কৃতিৰ ভূমিকা সম্পৰ্কে আলোচনা কৰি অসমৰ লোক-সংস্কৃতিৰ গৱেষণাৰ ক্ষেত্ৰখনত অধ্যয়ন কৰাই উক্ত ক্ষুদ্ৰ গৱেষণা পত্ৰৰ উদ্দেশ্য তথা গুৰুত্ব।

**০.০২ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ**

"অসমৰ জনজাতিসমূহৰ মাজত প্ৰচলিত জগন্নাথ পৰম্পৰা ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন"ক মূল বিষয় হিচাপে লৈ উক্ত ক্ষুদ্ৰ গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হৈছে। জগন্নাথ সংস্কৃতিৰ পৰিসীমা বহু বহল। গৱেষণা পত্ৰখনত কেৱল জনজাতীয় পৰম্পৰাৰ সৈতে জগন্নাথৰ সম্পৰ্কহে বিশ্লেষণ কৰা হৈছে। অসমত নানা জাতি-জনজাতি আছে। গৱেষণাৰ পৰিসৰে জগন্নাথ সংস্কৃতিয়ে আকোৱালি লোৱা ৰাভা, কাৰ্বি আৰু অসমত থকা মণিপুৰী সম্প্ৰদায়ৰ লোককহে আকোঁৱালি লৈছে। অৱশ্যে জগন্নাথ পৰম্পৰাৰ সৈতে জনজাতীয় সম্পৰ্ক বিশ্লেষণ কৰিবলৈ গৈ জগন্নাথ সংস্কৃতিৰ মূল পুৰীৰ তথা উৰিষ্যাৰ জনজাতিসমূহকো সামগ্ৰিক বিশ্লেষণ কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

ভৌগলিক পৰিসৰত বিশ্লেষণ কৰিলে অসমৰ গোৱালপাৰা জিলা, কামৰূপ, দৰং, নলবাৰী, বাক্সা জিলাৰ ৰাভা, বড়ো, কছাৰীসকল, সোণাপুৰৰ মিটনী অঞ্চলৰ কাৰ্বি জনগোষ্ঠীয় লোকসকল, গুৱাহাটীৰ মণিপুৰী বস্তি, হোজাই আৰু ডিফু অঞ্চলৰ মণিপুৰীসকলক গৱেষণা পত্ৰই সামৰি লৈছে। তাৰোপৰি অসমৰ অন্যান্য জনগোষ্ঠীসমূহৰ বিষয়েও অধ্যয়ন কৰি জগন্নাথৰ সৈতে সম্পৰ্ক বিশ্লেষণ কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হৈছিল যদিও বিষয়বস্তুৰে সামৰি নোলোৱাত ক্ষুদ্ৰ গৱেষণা পত্ৰখনৰ পৰা সেই অংশ বাদ দিয়া হৈছে।

**০.০৩ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ**

"অসমৰ জনজাতিসমূহৰ মাজত প্ৰচলিত জগন্নাথ পৰম্পৰা ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন" শীৰ্ষক ক্ষুদ্ৰ গৱেষণা পত্ৰখনৰ বাবে মূলতঃ ক্ষেত্ৰভিত্তিক অধ্যয়ন কৰা হৈছে। ইয়াৰ বাবে অসমৰ গোৱালপাৰা, দৰং, কামৰূপ, নলবাৰী, বাক্সা, সোণাপুৰ, মিটনী, মাজুলী, ডিফু আদি অসমৰ নিৰ্বাচিত ঠাইসমূহত ক্ষেত্ৰ অধ্যয়ন কৰা হৈছে। তাৰোপৰি উৰিষ্যাৰ পুৰীৰ জগন্নাথ মন্দিৰ, নামনি অসমৰ চমাৰকুছি জগন্নাথ মন্দিৰ, কাৰিপাৰা জগন্নাথ মন্দিৰ, কোটালকুছি জগন্নাথ মন্দিৰ, সন্ধেলি জগন্নাথ মন্দিৰ, বগুৰানৰ শ্ৰীশ্ৰীজগন্নাথ মন্দিৰ, মিটনী জগন্নাথ মন্দিৰ সোণাপুৰ, পাণডোবা জগন্নাথ মন্দিৰ আদিত ক্ষেত্ৰ অধ্যয়ন কৰা হৈছে।

ক্ষেত্ৰ অধ্যয়নৰ উপৰিও গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়ৰ কৃষ্ণকান্ত সন্দিকৈ পুথিভঁৰাল, উৰিষ্যাৰ উৎকল বিশ্ববিদ্যালয়ৰ পুথিভঁৰাল, নেচনেল আৰকাইভ্চ, ভুৱনেশ্বৰ, নলবাৰী জিলা পুথিভঁৰাল আদিৰ নানা গৱেষণা পত্ৰ, নানা জগন্নাথ মন্দিৰৰ আলোচনী, পত্ৰ আৰু তথ্যপাতিৰ সহায় লোৱা হৈছে। তাৰোপৰি মৌখিক সাক্ষাৎকাৰ তথা টেলিফ'নিক ব্যক্তিগত সাক্ষাৎকাৰৰ সহায়তো তথ্যপাতি সংগ্ৰহ কৰা হৈছে।

**০.০৪ পূৰ্বকৃত অধ্যয়নৰ চমু পৰিচয় ঃ**

জগন্নাথ সংস্কৃতিৰ কম-বেছি পৰিমাণে অসমত ইতিমধ্যেই গৱেষণা হৈছে। ড° জয়জ্যোতি গোস্বামীৰ "অসমৰ ধৰ্মীয় পৰম্পৰা আৰু সাহিত্যত জগন্নাথ" শীৰ্ষক গৱেষণা গ্ৰন্থ গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়ৰ পৰা অপ্ৰকাশিত ৰূপত পোৱা যায়। অসমৰ বাহিৰত অৱশ্যে জগন্নাথ সংস্কৃতিৰ বহল পৰিসৰত গৱেষণা বৰ্তমানেও হৈ আছে। চিলভাৰ 'দি কালচাৰ অৱ জগন্নাথ', ৰামচন্দ্ৰ মিশ্ৰৰ 'এচেন্স অৱ জগন্নাথ কালচাৰ', নাৰায়ণ মিশ্ৰৰ সম্পাদনাৰ 'এনালচ্ এণ্ড এণ্টিকুইটিচ অৱ দ্য টেম্পল অৱ জগন্নাথ' শীৰ্ষক গ্ৰন্থত জগন্নাথ সংস্কৃতি সম্পৰ্কে আলোচনা হৈছে। কিন্তু অসমৰ জনজাতিৰ সৈতে জগন্নাথ পৰম্পৰাৰ সম্পৰ্ক বিশ্লেষণ কৰি "অসমৰ জনজাতিসমূহৰ মাজত প্ৰচলিত জগন্নাথ পৰম্পৰা ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন"ক মূল বিষয় হিচাপে বৰ্তমানলৈ এক স্বতন্ত্ৰ অধ্যয়ন হোৱা নাই।

**১.০০ অসমৰ জনজাতিসমূহৰ মাজত প্ৰচলিত জগন্নাথ পৰম্পৰা ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন ঃ**

অসম ভাৰতৰ উত্তৰ-পূবত অৱস্থিত এনে এক ভৌগলিক অৱস্থান য'ত পাৰ্বত্য অঞ্চল, সমভূমি, নদী আটাইবোৰ এক সম্যক অৱস্থানত বিৰাজমান। সেয়েহে অসমভূমি জাতি-জনজাতি তথা নানা জনগোষ্ঠীৰ বাসভূমি হিচাপে এক উপযুক্ত ভৌগলিক অৱস্থান। অসমৰ জনজাতিসমূহৰ সৈতে জগন্নাথ সংস্কৃতিৰ সম্পৰ্ক বিশ্লেষণ কৰিবলৈ হ'লে প্ৰথমতে অধ্যয়নৰ সুবিধাৰ বাবে জনজাতিসমূহৰ চমু পৰিচয় দিয়া হ'ল।

**১.০১ অসমৰ জনজাতিসমূহৰ চমু পৰিচয় ঃ**

অসমৰ জনজাতিসমূহ মূলতঃ ৰাভা, বড়ো, মিচিং, তিৰা, গাৰো, ডিমাচা, ঠেঙ্গাল কছাৰী, হাজং, দেউৰী, কাৰ্বি আদিয়েই প্ৰধান। বৰ্তমান বিশ্বায়নৰ যুগত সৰ্বভাৰতীয় যি হিন্দু পৰম্পৰা তাৰ প্ৰভাৱ এই জনজাতি সমূহৰ মাজতো পৰাটো তেনেই স্বাভাৱিক। সেয়েহে কম-বেছি পৰিমাণে জগন্নাথৰ পূজা, মেলা, সভা আদিত সকলো জনজাতিয়েই অংশগ্ৰহণ কৰে যদিও কেৱল ৰাভা, কাৰ্বি আৰু অসমত বসবাস কৰা মণিপুৰী সম্প্ৰদায়ৰ মাজতহে জগন্নাথ অধিক জনপ্ৰিয়। তলত এই জনগোষ্ঠীসমূহৰ চমু পৰিচয় দিয়া হ'ল—

**ৰাভাসকল ঃ** ৰাভাসকলৰ 'ৰাভা' নামৰ গাৰো ভাষাত অর্থ হ'ল 'লৈ অনা'। অৱশ্যে কোনে কেতিয়া কাক লৈ আহিছে সেই বিষয়ে বৰ্তমানেও গৱেষণা কৰি থকা হৈছে। অসমৰ বহুতো গুৰুত্বপূৰ্ণ নদ-নদী, পৰ্বত-পাহাৰ আৰু ঠাইৰ নাম ৰাভাসকলে দিয়া। ৰাভাসকল 'ৰংদানী', 'মাইতৰী', 'পাতি', 'দাহৰী', 'হানা', 'বিতলীয়া' আদি শাখাত বিভক্ত। "উৎসৱ-পৰ্ব ৰাভাসকলৰ মতে বছৰৰ কোনোটো মাহেই পূজা-উৎসৱৰ বাবে প্ৰতিকূল নহয়। ব'হাগ মাহত 'বায়খো', জেঠ মাহত 'হাসং', আহাৰ মাহত 'মাকাং মাথাং', শাওণ মাহত 'খোক্‌চি', ভাদ মাহত 'নাঙল পূজা', আহিন মাহত ঘৰুৱা 'ধান ডাঙৰী' পূজা, মাঘ মাহত 'দোমাহি', ফাগুন মাহত 'দদান পূজা' আৰু চ'ত মহাত 'হামজাৰ পূজা' পালিত হয়।" (পাটৰ, পদ্ম ২০৮)। ৰাভাসকল যদিও মূলতঃ শিৱৰ উপাসক গোৱালপাৰা অঞ্চলৰ পাণডোবা, বামুণদঙা আদি অঞ্চলৰ ৰাভাসকলৰ মাজত জগন্নাথ পূজাৰ প্ৰচলন আছে।

**কাৰ্বিসকল ঃ** কাৰ্বিসকল অসমৰ দক্ষিণ-পূব অংশত বসবাস কৰে। এওঁলোকৰ বেছিভাগেই কাৰ্বি আংলং জিলাত বসবাস কৰে। তথাপিতো কাৰ্বিসকল কামৰূপ জিলা, সোণাপুৰ আৰু বৰ্তমান সমগ্ৰ অসমতে কম-বেছি পৰিমাণে আছে। গীত-মাত প্ৰধান জনগোষ্ঠী কাৰ্বিসকলৰ ভিতৰত সোণাপুৰ অঞ্চলৰ কাৰ্বিসকলৰ মাজত জগন্নাথ অতিকৈ প্ৰিয়।

**মণিপুৰীসকল ঃ** বৃহত্তৰ অসমৰ সাতভনীৰ বিভাজন নৌহওতে মণিপুৰীসকল অসমৰ অন্তৰ্গত আছিল। বিভাজনৰ পিছত মণিপুৰ স্বতন্ত্ৰ ৰাজ্য হৈ পৰে যদিও আজিও অসমৰ চুকে-কোণে মণিপুৰী সম্প্ৰদায়ৰ লোকসকল কম-বেছি পৰিমাণে আছে। তেওঁলোক মূলতঃ হিন্দু ধৰ্মৰ সৈতে জড়িত। "লক্ষ্মীপূজা, দীপান্বিতা, হৰিউথান, গোৱৰ্ধন পূজা, মেৰা ৰা য়ুংবা (আকাশ বন্তি), বসন্ত পঞ্চমী, সৰস্বতী পূজা ইত্যাদিয়ে প্ৰধান।" (বৰা দেৱজিৎ, পৃ. ১৭৬) তেওঁলোকৰ উৎসৱ।

**১.০২ জনজাতি আৰু জগন্নাথ পৰম্পৰা ঃ**

"জগন্নাথ পূজাৰ সৈতে জনজাতিসমূহৰ মৌলিক সম্পৰ্ক আছে।" (মহাপাত্ৰ, দুৰ্গাপ্ৰসাদ দাস, ১০৪) ওৰাণ, মুণ্ডা, কোৱা, ৰায়গড়, সুন্দেৰগড়, কিষাণ, বনজাৰী আদি উৰিষ্যাৰ জনজাতীয় জনগোষ্ঠী। অভিমন্যু দাসে 'হিষ্টৰি অৱ উৰিষ্যা'ত উল্লেখ কৰে যে জগন্নাথ দৰাচলতে জনজাতীয় দেৱতা আছিল আৰু পৰৱৰ্তী সময়ত সংকৃতায়ণৰ যোগেদি এইজন দেৱতাক হিন্দুকৰণ কৰা হৈছে। অসমৰ জনজাতিসমূহৰ বেছিভাগেই অহিন্দু যদিও হিন্দু ধৰ্মৰ প্ৰভাৱত তেওঁলোকে বৰ্তমান জগন্নাথৰ নিজাববীয়াকৈ উপাসনা কৰা দেখা যায়। গোৱালপাৰাৰ পাণডোবা অঞ্চলৰ ৰাভাসকলে ফাগুন মাহৰ ফল্গু উৎসৱৰ পিছতেই জগন্নাথৰ এক পূজা বা মেলা আয়োজন কৰে। এই মেলা (পোনপ্ৰথমে মালতী ৰাভা নামৰ এগৰাকী ৰাভা সম্প্ৰদায়ৰ মহিলাই পালন কৰে বাবে তেওঁৰ নামেৰেই মালতী মেলা অনুষ্ঠিত হয়। এই উৎসৱত ৰাভাসকলে জগন্নাথক পূজা দিয়ে, তাৰোপৰি তেওঁলোকে ন-বস্ত্ৰ পৰিধান কৰে। ৰাভাসকল সাধাৰণতে শৈৱ পন্থী। তেওঁলোকে (থলাৰাম বলোৰাম মন্দিৰত শিৱক উপাসনা কৰাৰ লগতে কিন্তু একোখন বগা নিচান আগবঢ়াই জগন্নাথকো স্মৰণ কৰে। বিশেষ মন কৰিবলগীয়া কথাটো হ'ল 'পাণডোবা জগন্নাথ মন্দিৰত প্ৰতিষ্ঠিত শ্ৰীশ্ৰীজগন্নাথ মন্দিৰক কেন্দ্ৰ কৰি গঢ় লোৱা জগন্নাথ সংস্কৃতিৰ প্ৰভাৱত জগন্নাথৰ মেলা অনুষ্ঠান চলি থকাৰ সময়ত ৰাভাসকলে মদ-মাংস আৰু আমিষ আহাৰৰ পৰা বিৰত থাকে।" (সংবাদ, ৰাভা, পিংকু, ৪০) পাণডোবা অঞ্চলৰ ওচৰতে থকা বগুৱানৰ নাথ যোগী সম্প্ৰদায়ৰ জগন্নাথ সংস্কৃতিৰ

প্রভাৱ পৰিলক্ষিত হয়।

ৰাভাসকলৰ দ্বাৰা পালিত জগন্নাথকেন্দ্রিক আন এক অনুষ্ঠান হ'ল দৌল উৎসৱ। গোৱালপাৰা জিলাৰ ৰামপুৰ ৰাভাপাৰা অঞ্চলত 'পঞ্চম দৌল' উদযাপন কৰা হয়। ই গ্নৰ প্রথম দিনা সূচী। সেইদিনা শুদ্ধিকৰণ কৰাৰ উদ্দেশ্যে ঘৰ-বাৰী কাপোৰ-কানি চাফা কৰা হয়। দ্বিতীয় দিনা বলি-বিধান হয়। পুৰীৰ জগন্নাথ মন্দিৰত উপাস্য দেৱতা জগন্নাথ, বলোভদ্র আৰু সুভদ্রা। এওঁলোকৰ মাজত উদযাপন হোৱা হোলি বা দৌলৰ সময়ত আমিষ সম্পূর্ণৰূপে পৰিহাৰ কৰা হয়। অথচ শৈৱ পন্থী তথা শাক্ত উপাসক ৰাভাই এই ক্ষেত্রত বৈষ্ণৱ আদর্শ মানি নচলে। সেইদিনা এওঁলোকে দৌলৰ সময়তো মাকালীৰহে আৰধনা কৰা দেখা যায়। ইয়াৰ পৰৱর্তী সময়ত তেওঁলোকে 'মাটি দৌল' বা 'মাটি হোলি' উদযাপন কৰে। এই সময়ত সকলোৰে কপালত ৰাভা দেউৰীয়ে মাটি লেপি পৰৱর্তী সময়ত ফল্গু গুড়িৰে ফাকু খেলে। ইয়াৰ পিছত দিঙা পূজা। অৱশ্যে ই জগন্নাথৰ লগত সম্পর্কিত নহয়। ইয়াত সম্পর্ক কেঁচাইখাইতীৰ লগতহে। ঠাইবিশেষে ৰথযাত্রাও ৰাভাসকলৰ মাজত হয়। বিশেষকৈ গোৱালপাৰা জিলাৰ ছাৰাপাৰা অঞ্চলত দৌলৰ শেষৰ অনুষ্ঠান হিচাপে ছাৰাপাৰী গাঁৱত বিসর্জনৰ কার্যসূচী অনুষ্ঠিত হয়। এই অনুষ্ঠানত দৌল উপলক্ষে ৰাধা-কৃষ্ণৰ প্রতীকাত্মক মূর্তি ৰথৰ ওপৰত ৰখা হয়। বিসর্জনৰ সময়ত ঢোল-তাল বজাই এই ৰথযাত্রা আৰম্ভ কৰে আৰু ওচৰতে পথাৰত এই ৰথ ৰখাই প্রতীকাত্মক ৰূপত জগন্নাথ বা কৃষ্ণ আৰু ৰাধাৰ বিসর্জন দিয়ে। "এই অঞ্চলৰ ৰাভাসকলেও যদি কৃষ্ণ বা জগন্নাথক উদ্দেশ্য কৰিয়েই দৌল যাত্রা কৰে, তথাপিতো মূল পূজাৰ দিনা কালীক উদ্দেশ্য কৰি ছাগলীও বলি দিয়া হয়" (সংবাদ ৰাভা, মদন, ৩৭)।

এনেদৰে ৰাভাসকলে মালতী ৰাভা বা জগন্নাথৰ মেলা উৎসৱ পালন কৰাৰ উপৰিও দৌল উৎসৱ পালন কৰে।

ৰাভাসকলৰ দৰে অসমৰ সোণাপুৰত অৱস্থিত মিটনী জগন্নাথ মন্দিৰত অনুষ্ঠিত ৰথযাত্রা অনুষ্ঠানত কার্বি জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে আগভাগ লয়। আহাৰ মাহত অনুষ্ঠিত এই ৰথ যাত্রাত কার্বিমূলীয় মানুহৰ দ্বাৰাই ৰথ যাত্রা কৰোৱা হয়। তাৰোপৰি ৰথ যাত্রাৰ সময়ছোৱাত ব্যৱহাৰ কৰা নানা কার্বি জনজাতীয়মূলক বাদ্য-যন্ত্রৰ ব্যৱহাৰ মনকৰিবলগীয়া। কার্বিসকলৰ দৰে অসমৰ মণিপুৰীসকলে 'কাং চিংবা' অনুষ্ঠান পালন কৰে। এই অনুষ্ঠানত জগন্নাথ, বলোভদ্র আৰু সুভদ্রাৰ পৃথকে পৃথকে ৰথযাত্রা অনুষ্ঠিত হয়। মূলতঃ ডেকা-গাভৰুৱে নৃত্য-গীতৰ মাজেৰে এই অনুষ্ঠানৰ সামৰণি পেলায়। অসমৰ অন্য এক জনজাতি হৈছে হাজং সকল। ৰাধা-কৃষ্ণৰ ৰাসলীলাৰ কাহিনীক কেন্দ্র কৰিতেওঁলোকে 'ধাপাকীর্তন' পৰিৱেশন কৰে। সাধাৰণতে যিকোনো ধর্মীয় উৎসৱতে ধাপাকীর্তন হাজংসকলে প্রচলন কৰে। এনে এক ধাপাকীর্তন হ'ল—

"আজিকী কি আনন্দ হুছেৰে।
বৃষভানু দুলাৰীয়া কিশোৰী নাগৰী
ৰাইমোৰ কুঞ্জে ধ্বনি আহিলেৰে।।
সবমুখী গায় কোকিল ঘন গায়
নাদেত শ্যাম ৰংগেৰে।।"
(হাজং ৰতন কুমাৰ ৰায়, ৩১৫)

আকৌ অসমৰ দক্ষিণ পাট সত্রৰ যাদৱ গোঁসাই পুৰীৰ পৰা অনা। অসমৰ সত্রসমূহৰ সৈতে পুৰীৰ জগন্নাথ মন্দিৰৰ সাদৃশ্য আছে। বৈষ্ণৱ ধর্মীয় পৰম্পৰাৰ ন্দ্রেভূমি এই সত্রসমূহ কৃষ্ণৰ জন্মাষ্টমী, দৌল যাত্রা আৰু দক্ষিণপাট সত্রকে আদি কৰি কিছুমান সত্রত ৰথযাত্রা অনুষ্ঠিত হৈ আহিছে। মাজুলীৰ দক্ষিণপাট সত্রৰ এই ৰথযাত্রা অনুষ্ঠানত মিচিং জনজাতীয় লোকসকলৰ উপস্থিতি বর্তমান দেখা যায়। সাধাৰণতে জনজাতীয় সমাজৰ ৰীতি-নীতি, সামাজিক পৰম্পৰা তথা আচৰণত ৰক্ষণশীল মনোভাৱ প্রকাশ পায় যদিও বর্তমান বিশ্বায়নৰ যুগত সর্বভাৰতীয় হিন্দু সংস্কৃতিৰ প্রভাৱ তেনেই সুলভ হৈ পৰিছে। নলবাৰী, বাক্সা বা কামৰূপৰ বড়ো জনগোষ্ঠীলৈ মন কৰিলেও দেখা যায় তেওঁলোকে ৰথযাত্রা, দৌলযাত্রা আদি অনুষ্ঠানত ভাগ লয়। "তেনেদৰে বঙাইগাঁও জিলাৰ অদলাগুৰিত অতি উলহ-মালহেৰে জগন্নাথ মন্দিৰত অনুষ্ঠিত দৌল উৎসৱত পানীতোলা পর্ব, জগন্নাথ-ঘুনুচাৰ বিবাহ যাত্রাত বড়ো-কছাৰী কোঁচ-ৰাজবংশীয় লোকসকলেও ভাগ লয়।" (মজুমদাৰ, মলয়া) তদুপৰি 'ইস্কন' আৰু 'হৰেকৃষ্ণ মুভমেণ্টে'ও বর্তমান অসমত গীতা, জগন্নাথ আদিৰ সাৰভাগ নানা জাতি-জনজাতিৰ মাজত প্রচলন কৰি আছে।

এনেদৰে সামগ্রিক বিশ্লেষণ কৰিলে তথ্যভিত্তিক প্রমাণ পোৱা যায় যদিও অসমৰ জনজাতিসমূহ প্রধানতঃ হিন্দু ধর্মাৱলম্বী নহয় তথাপিতো তেওঁলোকৰ মাজতো জগন্নাথ সংস্কৃতি বর্তমান প্রচলন হৈ আছে।

**২.০০ সিদ্ধান্ত ঃ**

নানা ক্ষেত্র অধ্যয়ন আৰু তথ্যভিত্তিক গৱেষণাৰ অন্তত এই সিদ্ধান্তত উপনীত হ'ব পাৰি যে সৰ্বভাৰতীয় পৰ্যায়ত যিদৰে জগন্নাথ সংস্কৃতিৰ বিৰাট সমাদৰ, অসমতো জগন্নাথ সংস্কৃতিৰ সমাদৰ আছে। অসমৰ অহিন্দু জনজাতীয় সমাজতো জগন্নাথৰ উপসনাৰ তথ্য পোৱা গ'ল। অসমৰ জনজাতিসমূহৰ বিশেষকৈ ৰাভা, মণিপুৰী আৰু কাৰ্বিসকলৰ মাজত জগন্নাথ পৰম্পৰা বিৰাজমান। অৱশ্যে কম-বেছি পৰিমাণে হাজং, মিচিং আৰু বড়ো জনগোষ্ঠীয়েও জগন্নাথৰ নিজাবৰীয়াকৈ উপসনা নকৰিলেও জগন্নাথৰ উৎসৱসমূহত অংশগ্রহণ কৰে।

**২.০১ সামৰণি ঃ**

জগন্নাথ সংস্কৃতি সম্পূর্ণ বৈদিক সংস্কৃতি নহয়। নানা জাতি-জনজাতিৰ মাজত প্রচলিত জগন্নাথ সংস্কৃতিৰ সংস্কৃতায়নৰ ফলত বর্তমান জগন্নাথ পৰম্পৰাই এক সুকীয়া স্থান পাইছে। জগন্নাথ সংস্কৃতিৰ প্রভাৱ অসমৰ জনজাতিসমূহৰ মাজত পৰা দেখা। বিশেষকৈ ৰাভা, কার্বি আৰু মণিপুৰী সম্প্রদায়ৰ মাজত জগন্নাথৰ মেলা, গছ-পূজা আদিত এই প্রভাৱ দেখা যায়। স্নানপর্ব, ৰথযাত্রা আদি জগন্নাথৰ পর্বসমূহো অসমৰ জনজাতিসমূহৰ মাজত প্রচলিত জগন্নাথ অসমৰ জনজাতিসমূহৰ মাজত প্রচলিত পৰম্পৰা সম্পর্কে ভৱিষ্যতে অধিক গৱেষণা কৰাৰ থল আছে। ❑

**প্রসংগ টোকা ঃ**

পাটৰ, পদ্ম (সম্পা) *জনজাতি সমাজ-সংস্কৃতি,* ৩য় প্রকাশ, পৃ. ২০৮
বৰা, দেৱজিৎ (সম্পা) *উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ জনগোষ্ঠীয় অনুষ্ঠান,* ১ম প্রকাশ, পৃ. ১৭৬
মজুমদাৰ, মলয়া। (ব্যক্তিগত সাক্ষাৎকাৰ) বঙাইগাঁও, বয়স ৩০
মহাপাত্র, দুর্গাপ্রসাদ দাস। *দাৰু ব্রহ্ম শ্রীজগন্নাথ, হিজ নৱকলৱেৰ,* ১ম প্রকাশ, পৃ. ১০৪
ৰাভা, পিংকু (ব্যক্তিগত সাক্ষাৎকাৰ) পানডোবা, বয়স ৪০
ৰাভা, মদন (ব্যক্তিগত সাক্ষাৎকাৰ) গোৱালপাৰা, বয়স ৩৫
হাজং, ৰতন কুমাৰ ৰায়। *হাজংসকলৰ লৌকিক গীত-মাত,* পৃ. ৩১৫

**নির্বাচিত গ্রন্থপঞ্জী ঃ**

**অসমীয়া গ্রন্থ**


গগৈ, লীলা। *অসমৰ সংস্কৃতি* । ৫ ম প্রকাশ । ডিব্রুগড় ঃ বনলতা প্রকাশন, ১৯৯৪ । মুদ্রিত ।
বৰা, দেৱজিৎ (সম্পা.)। *উত্তৰ- পূৱ ভাৰতৰ জনগোষ্ঠীয় উৎসৱ-অনুষ্ঠান*। ১ম প্রকাশ। গুৱাহাটী ঃ এন. আৰ. পাব্লিকেশ্যন, ২০১৫ । মুদ্রিত ।
বৰুৱা, বিৰিঞ্চি কুমাৰ । *অসমৰ লোক - সংস্কৃতি* । ২য় প্রকাশ । গুৱাহাটী ঃ বীণা লাইব্রেৰী, ১৯৮৫ । মুদ্রিত ।
বর্মন, জগন্নাথ, হিতেন ভট্ট (সম্পা) । *নামনি অসমৰ লোক - সংস্কৃতি*। ১ম প্রকাশ বৰপেটা ঃ অসম সাহিত্য সভা, ৬১ তম সর্থবাৰী অধিবেশন, ১৯৯৫
ভট্টাচার্য্য, প্রমোদ চন্দ্র (সম্পা.)। *অসমৰ জনজাতি*। ৩য় সংস্কৰণ। ধেমাজি ঃ ধেমাজি অফ্চেট প্রিণ্টার্চ, ২০০৮ । মুদ্রিত ।
মহাপাত্র, দুর্গাপ্রসাদ দাস। ১ম প্রকাশ। *দাৰু ব্রহ্ম শ্রীজগন্নাথ, হিজ নৱকলৱেৰ* , পুৰী ঃ মুদ্রিত।
শর্মা , নবীন চন্দ্র । *অসমীয়া লোক - সংস্কৃতিৰ আভাস* । ৪র্থ প্রকাশ । গুৱাহাটী ঃ বাণী প্রকাশ, ২০১১ । মুদ্রিত।
হাকাচাম, উপেন ৰাভা । *ৰৱ অসমৰ বর্ণিল সংস্কৃতি* । ১ম প্রকাশ । গুৱাহাটী ঃ বীণা লাইব্রেৰী, ২০০৮ । মুদ্রিত।


**অপ্রকাশিত গ্রন্থ ঃ**


গোস্বামী, জয়জ্যোতি । *অসমৰ ধর্মীয় পৰম্পৰা আৰু সাহিত্যত জগন্নাথ* । গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়, কৃষ্ণকান্ত সন্দিকৈ গ্রন্থাগাৰ, ২০০০ ।
ভট্টাচার্য্য, মামনি। *নামনি অসমৰ স্ত্রী প্রধান সামাজিক আচাৰ অনুষ্ঠান আৰু গীত - পদ ঃ বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন*। গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়, কৃষ্ণকান্ত সন্দিকৈ গ্রন্থাগাৰ, ২০০৯ ।
Choudhury, Janmejay. *Lord Jagannath His Devotees*. Odishya, 1st Ed. Auroshree Publication, 2017. Print.
Eschmann, Anncharlott, Hermann Kulke, Gaya Charan Tripathi. *The Cult of Jagannath and The Regional Tradition of Orissa.*
Mahapatra, Suman. *Sri Jagannath.* 1st Ed. Aama Odisha, Sept, 2018. Print.

## लेखकों से निवेदन

- द्विभाषी राष्ट्रसेवक में प्रकाशन हेतु पत्रिका की प्रकृति के अनुरूप भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक लेख आमंत्रित हैं।
- अनूदित रचनाओं के संदर्भ में मूल लेखक की अनुमति/स्वीकृति अनिवार्य है।
- लेखक अपनी रचनाएँ केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी यूनिकोड में 13 प्वाइंट में टंकित कर पत्रिका के ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com पर अथवा स्पष्ट अक्षरों में लिखकर समिति कार्यालय के पते (मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रूपनगर, गुवाहाटी-781032, असम) पर भेजें।
- अस्वीकृत रचनाएँ लौटाई नहीं जाएँगी। अत: भेजी गई रचना की प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- लेखक अपनी रचना के साथ अपना नाम, पदनाम, मोबाइल नं., ई-मेल, पूरा पता सहित एक पासपोर्ट साइज फोटो अवश्य भेजें।
- शोधपत्र की न्यूनतम शब्द-सीमा 2000 और अधिकतम 4000 होनी चाहिए और सार 150 से 200 शब्दों के भीतर होना चाहिए।
- असमीया भाषा में लिखे गए लेख को पेजमेकर फारमेट में गीतांजलि फंट, 12 प्वांइट में टाइप कराकर भेज सकते हैं।
- शोधपत्र के लेखन में एमएलए शैली का पालन करना चाहिए।
- शोधपत्र में क्रमश: शीर्षक, सार, प्रस्तावना, उद्देश्य, संसाधन/सामग्री, प्रविधि/पद्धति, क्षेत्र, मूल विषयवस्तु का विश्लेषण, परिणाम/उपलब्धियाँ, निष्कर्ष और उद्धृत कार्य शामिल हो सकते हैं।
- शोधपत्र की मौलिकता हेतु रचना के साथ घोषणा-पत्र संलग्न किया जाना चाहिए।
- लेखक अपनी तथ्यात्मक सटीकता के लिए पूरी तरह जिम्मेदार हैं।

## द्विभाषी राष्ट्रसेवक का सदस्यता प्र-पत्र

यहाँ से काटिए

नाम : .....

पदनाम : .....

पूरा पता : .....

: .....

ई-मेल : ..... मोबाइल : .....

RTGS का विवरण : .....

### सदस्यता शुल्क

| *व्यक्तिगत* | | *संस्थागत* | |
|---|---|---|---|
| प्रति अंक | : रु. 50/- | प्रति अंक | : रु. 100/- |
| वार्षिक | : रु. 550/- | वार्षिक | : रु. 1,000/- |
| दो वर्षों के लिए | : रु. 1,000/- | दो वर्षों के लिए | : रु. 2,000/- |
| पाँच वर्षों के लिए | : रु. 2,500/- | पाँच वर्षों के लिए | : रु. 4,500/- |
| आजीवन सदस्य | : रु. 10,000/- | | |

निर्धारित शुल्क मनीऑडर/डी.डी. के द्वारा असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के नाम से समिति कार्यालय के पते पर भेजा जा सकता है। ऑनलाइन शुल्क निम्न विवरण के अनुसार भेजें :-

Name of Beneficiary : Asom Rastrabhasha Prachar Samiti
A/c No. : 0853010182614
Name of Bank & Branch : Punjab National Bank, G.S. Road
IFS Code : PUNB0085320

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें -

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया, मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, डाक : इंद्रपुर, जिला : कामरूप महानगर, गुवाहाटी-781032 (असम), मो. 9101541380, ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

POSTAL REGISTRATION NO. GHY/127/2022-24 ❖ Date of Publication : 31st July 2022 ❖ RNI No. ASSBIL/2009/31008

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

**संपादकीय कार्यालय :**

प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-781032

मो. 9101541395 / 9101541380, ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com